सुलभ साहित्य-माला　　　　दसवाँ पुष्प

# शरत्-साहित्य

## देवदास, बड़ी बहन



१०

अनुवादकर्त्ता

**रामचन्द्र वर्मा**

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४.

दूसरी बार
जनवरी, १९४१

मूल्य दस आने



मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केळेवाडी, मुंबई नं. ४.

# देवदास

## पहला परिच्छेद

एक दिन वैशाखके दोपहरको धूपका अन्त नहीं था और गरमीकी कोई हद नहीं थी। ठीक उसी समय मुकर्जी-कुलका देवदास पाठशालाके कमरेके कोनेमें एक फटी हुई चटाईके ऊपर बैठकर स्लेट हाथमें लिए हुए कभी आँखें खोलता, कभी मूँदता और कभी पैर फैलाकर जँभाई लेता था। अन्तमें वह बहुत ही चिन्ताशील हो गया। पल-भरमें ही उसने स्थिर कर लिया कि ऐसे परम रमणीय समयमें मैदानमें गुड्डी उड़ाते हुए चारों तरफ घूमने-फिरनेके बदले पाठशालामें बन्द होकर पड़े रहना कुछ कामका नहीं। उसके उर्वर मस्तिष्कमें इसका एक उपाय भी सूझ गया। वह हाथमें स्लेट लिए हुए उठ खड़ा हुआ।

पाठशालामें उसी समय जलपानके लिए छुट्टी हुई थी। बालकोंका दल अनेक प्रकारकी भाव-भंगियाँ और शोर-गुल करता हुआ पासहीके वट-वृक्षके नीचे गुल्ली-डंडा खेल रहा था। देवदासने एक बार उस तरफ देखा। उसे टिफिनकी छुट्टी नहीं मिला करती थी क्योंकि गोविन्द पंडित अनेक बार देख चुके थे कि जब एक बार वह पाठशालाके बाहर निकल जाता है, तब फिर लौटकर आना बहुत ही ना-पसन्द करता है। उसके पिताकी भी इस बारेमें मनाई थी। अनेक कारणोंसे यही निश्चय हुआ था कि इस छुट्टीके समय वह वर्गके प्रमुख छात्र भोलूकी देख-रेखमें रहा करेगा।

इस समय कमरेमें केवल पंडितजी दुपहरियाके आलस्यमें आँखें बन्द किए हुए सो रहे थे और पाठशालाका प्रमुख-छात्र भोलू एक कोनेमें हाथ-पैर टूटी एक

बेंचपर एक छोटा-मोटा पंडित बना हुआ बैठा था। बीच बीचमें नितान्त अवज्ञाके साथ वह कभी तो लड़कोंका खेल देखता था और कभी देवदास तथा पार्वतीपर आलस्यपूर्ण दृष्टि डाल लेता था। पार्वती इधर कोई महीना-भर हुआ पंडितके आश्रय और देख-रेखमें आई है। पंडितजीने सम्भवतः इस थोड़ेसे समयमें ही उसका खूब मनोरंजन किया था, इसीलिए वह खूब मन लगाकर और अत्यन्त धैर्यपूर्वक सोये हुए पंडितजीका चित्र 'बोधोदय' के अन्तिम पृष्ठपर स्याहीसे बना रही थी और एक दक्ष चित्रकारकी भाँति अनेक प्रकारसे यह देख रही थी कि बड़े यत्नसे बनाया हुआ वह चित्र अपने आदर्शके साथ कहाँ तक मिल रहा है। यह बात नहीं है कि वह चित्र अपने आदर्शसे कुछ बहुत अधिक मिल रहा था; लेकिन, पार्वती इतनेसे ही यथेष्ट आनन्द और आत्म-संतोषका उपभोग कर रही थी।

उसी समय देवदास स्लेट हाथमें लेकर उठ खड़ा हुआ और भोलूको उद्देश्य कर ज़ोरसे बोला—हिसाब नहीं हो रहा है?

भोलूने खूब शान्त और गम्भीर मुँह बनाकर कहा—कौन-सा हिसाब?

"मन-सेर-छटाकका।"

"लाओ, जरा स्लेट देखूँ।"

भाव यह कि उसके सामने इस तरहके कामोंके लिए स्लेटके पहुँचने-भरकी ही देर होती है। देवदास उसके हाथमें स्लेट देकर पास ही खड़ा हो गया। भोलू जोर जोरसे बोलकर लिखने लगा—'एक मन तेलका दाम चौदह रुपये नौ आने तीन पाई हो, तो—'

ठीक उसी समय एक घटना हो गई। उस हाथ-पैर-टूटी बेंचपर पाठशालाका यह प्रमुख-छात्र अपने पद और मर्यादाके योग्य आसन निर्वाचित करके यथा-नियम आज तीन बरसोंसे नित्य बैठता आ रहा है। उसके पीछे बहुतसे चूनेका एक ढेर लगा हुआ था। उसे पंडितजीने न जाने कब और किस युगमें सस्ते दामों खरीदा था। उनका इरादा था कि जब कभी अच्छे दिन आवेंगे, तब इससे एक कमरा और दालान बनवावेंगे। यह तो नहीं मालूम कि वे शुभ दिन कब आवेंगे; परन्तु, इस सफेद चूनेके प्रति उनकी सतर्कता और यत्नमें कभी कोई कमी नहीं होती थी। संसारसे अनभिज्ञ और अपरिणामदर्शी कोई आश्रित बालक इस चूनेका कण-मात्र भी नष्ट न करने पावे, इसके लिए उनके प्रिय पात्र तथा अपेक्षाकृत वयस्क भोलानाथको इस सयत्न-संचित वस्तुकी सावधानतापूर्वक

रक्षा करनेका भार मिला था; और इसकी वह इस बेंचके ऊपर बैठकर रखवाली करता था।

भोलानाथ लिख रहा था—'एक मन तेलका दाम अगर चौदह रुपये नौ आने तीन पाई हो तो,'—अरे बाप रे! इसके बाद खूब गुल-गपाड़ा हुआ और पार्वती खूब ज़ोरसे चिल्लाकर और तालियाँ बजा बजाकर ज़मीनपर लोटने लगी। तुरन्त ही जागे हुए गोविन्दलाल लाल आँखें किये हुए एक दमसे उठकर खड़े हो गये। उन्होंने देखा कि पेड़के नीचे लड़कोंका दल कतार बाँधकर खूब हीही करता हुआ दौड़ रहा है। उसी समय उन्हें यह भी दिखाई दिया कि टूटी हुई बेंचके ऊपर एक जोड़ी पैर नाच कूद रहे हैं और चूनेमें ज्वालामुखी पर्वतका अग्न्युत्पात हो रहा है। वे चिल्ला उठे—क्या हुआ? क्या हुआ? क्या हुआ रे?

वहाँ कहनेके लिए केवल पार्वती ही थी। लेकिन वह उस समय ज़मीनपर लोट रही थी और तालियाँ बजा रही थी। पंडितजीका विफल प्रश्न क्रोधके रूपमें लौट पड़ा, क्या हुआ? क्या हुआ रे? क्या हुआ?

इसके बाद श्वेत-मूर्ति भोलानाथ चूना हटा कर खड़ा हो गया। पंडितजीने फिर चिल्लाकर कहा—बदमाश कहींका! तू उसके अन्दर था?

"आँ—आँ—आँ।"

"फिर वही!"

"देवा साला ढकेलकर—आँ—आँ—मन-सेर-छटाक—"

"फिर वही, बदमाश!"

परन्तु दूसरे ही क्षण सारी बातें पंडितजीकी समझमें आ गईं और उन्होंने चटाईपर बैठकर पूछा—देवा तुझे धक्केसे गिराकर भाग गया है?

भोलू और भी जोरसे रोने लगा—आँ—आँ—आँ—।

इसके बाद कुछ देरतक चूनेकी झाड़-पोंछ हुई। लेकिन सफेद और काले रंगमें वह प्रमुख छात्र बहुत-कुछ भूतकी तरह दिखाई देने लगा और उसका रोना भी बन्द नहीं हुआ।

पंडितजीने कहा—मालूम होता है कि देवा तुझे धक्का देकर और गिराकर भाग गया है?

भोलूने कहा—आँ—आं—

पंडितजीने कहा—इसका बदला लूँगा।

भोलूने कहा—आँ—आँ—आँ—

पंडितजीने पूछा—सब लड़के कहाँ हैं ?

इसके बाद लड़कोंका दल लाल मुँह किये और हाँफता हुआ लौट आया और बोला—देवा पकड़ा नहीं गया। ऊः, ईंटें फेंक कर मारता है !

" पकड़ा नहीं गया ?"

एक और लड़का पहली ही बात दोहराने लगा—ऊः—ईंटें—

" चुप रह ! "

वह थूक लीलकर एक ओर खिसक गया। निष्फल क्रोधमें पंडितजीने सबसे पहले पार्वतीको खूब फटकारा और तब भोलानाथका हाथ पकड़कर कहा—चल, जरा कचहरीमें चलकर मालिकसे कह आवें।

इसका मतलब यह कि जमींदार नारायण मुकर्जीके पास चलकर उनके पुत्रकी इस करतूतकी फरियाद की जाय।

उस समय प्रायः तीन बजे थे। नारायण मुकर्जी बाहर बैठकर हुक्का पी रहे थे और एक नौकर हाथमें पंखा लिये हवा कर रहा था। छात्र-सहित पंडितजीके इस असमय-आगमनसे उन्होंने कुछ विस्मित होकर कहा—अरे यह तो गोविन्द पंडित हैं !

लेकिन गोविन्द जातिके कायस्थ थे, इसलिए उन्होंने पहले तो भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया और भोलूको दिखलाकर विस्तारपूर्वक सब बातें कह सुनाईं। मुकर्जी महाशय बहुत ही नाराज़ हुए, बोले—यही तो मैं देखता हूँ कि देवदास हाथसे बाहर हुआ जा रहा है।

" अब आप ही हुक्म दें कि मैं क्या करूँ ? "

जमींदार साहबने हुक्केकी निगाली रखकर कहा—कहाँ गया है वह ?

" मैं क्या जानूँ ! जो लड़के पकड़ने गये थे, उन्हें ईंटें मार-मारकर भगा दिया है। "

दोनों ही आदमी कुछ देर तक चुप रहे। फिर नारायण बाबूने कहा—अच्छा, घर आने दो, तब जो कुछ होगा करूँगा।

गोविन्द अपने विद्यार्थीका हाथ पकड़कर जब लौटकर पाठशालामें पहुँचे तब उन्होंने अपने मुख और नेत्रोंकी भाव-भंगियोंसे सारी पाठशालाको संत्रस्त कर डाला और प्रतिज्ञा की कि यद्यपि देवदासके पिता यहाँके जमींदार हैं, लेकिन फिर भी मैं उसे पाठशालामें नहीं घुसने दूँगा। उस दिन पाठशालाकी छुट्टी कुछ पहले ही हो गई। चलते समय बालक आपसमें तरह तरहकी बातें करने लगे।

एक लड़केने कहा—ओफ् ! देवा कितना मज़बूत है !

एक दूसरे लड़केने कहा—भोलूको खूब छकाया।

" ओफ् ! कैसा ढेला फेंकता है ! "

एक और लड़केने भोलूका पक्ष लेकर कहा—देख लेना, भोलू भी इसका बदला लेगा !

" हूँ। वह तो अब पाठशालामें आवेगा ही नहीं जो उससे कोई बदला ले। "

इस छोटेसे दलके साथ एक ओर पार्वती भी स्लेट और किताब हाथमें लिये हुए घर लौट रही थी। उसने पासके एक लड़केका हाथ पकड़कर पूछा—मणि, क्या अब वे देव-भइयाको सचमुच ही पाठशालामें न आने देंगे ?

मणिने कहा—नहीं, किसी तरह नहीं।

पार्वती खिसक गई। यह बात उसे बिलकुल अच्छी नहीं लगी। पार्वतीके पिताका नाम था नीलकंठ चक्रवर्ती। चक्रवर्ती महाशय जमींदार साहबके पड़ोसी थे। अर्थात् मुकर्जी महाशयका जो बहुत बड़ा मकान था, उसीके पास चक्रवर्ती महाशयका भी छोटा-सा पुराने ढंगका ईंटोंका मकान था। उनके पास दस-पाँच बीघे जमीन-जायदाद भी थी और दो-चार घर यजमान भी थे। जमींदार साहबके घरसे भी उन्हें कुछ मिल जाता था। उनका परिवार अच्छी तरहसे रहता था और उसके दिन मज़ेमें कटते थे।

पहले धर्मदासके साथ पार्वतीकी भेंट हुई। वह देवदासके यहाँका नौकर था। एक बरसकी उम्रसे आज बारह बरसकी उम्र तक वह देवदासको ही लेकर है। वही उसे पाठशालामें पहुँचा जाता है और फिर छुट्टीके समय आकर घर ले जाया करता है। यह काम उसने नियमपूर्वक नित्य ही किया है और आज भी वह इसी कामके लिए पाठशालाकी ओर जा रहा था। पार्वतीको देखकर उसने पूछा—क्यों पारो, तुम्हारे देव भइया कहाँ हैं ?

" भाग गये हैं। "

धर्मदासने बहुत ही चकित होकर पूछा—' भाग गये 'का क्या मतलब ?

उस समय पार्वती भोलानाथकी दुर्दशाकी बात याद करके फिर नये सिरेसे हँसने लगी—देखो धर्म, देव भइया,—ही ही ही ! एक दम चूनेके ढेर पर,—ही ही ही ! हो हो हो ! एक दमसे धर्म, उसे चित पटककर—!

यद्यपि धर्मदासने सारी बातें अच्छी तरह नहीं समझीं, लेकिन फिर भी पार्वतीको हँसते देखकर वह भी हँस पड़ा। फिर हँसी रोककर उसने कुछ आग्रहपूर्वक पूछा—बताओ पारो, क्या हुआ है ?

" देव भइयाने भोलूको धक्का देकर गिरा दिया चूनेके ढेरपर,—ही ही ही ! "

अब धर्मदासने बाकी बात भी समझ ली और बहुत ही चिन्तित होकर पूछा—क्यों पारो, जानती हो कि इस समय वह कहाँ है ?

" मैं क्या जानूँ ! "

" नहीं, तुम जानती हो। बतला दो। जान पड़ता है कि उसे बहुत भूख लगी होगी। "

" हाँ, भूख तो खूब लगी होगी। लेकिन मैं बतलाऊँगी नहीं। "

" बतलाओगी क्यों नहीं ? "

" बतला दूँगी तो वह मुझे बहुत मारेंगे। मैं जाकर उन्हें खाना दे आऊँगी। "

धर्मदास बहुत कुछ सन्तुष्ट हो गया। बोला—अच्छा, दे आना और सन्ध्यासे पहले ही उसे बातोंमें भुलाकर घर ले आना।

" अच्छा ले आऊँगी। "

घर पहुँचकर पार्वतीने देखा कि उसकी माँने और देवदासकी माँने भी सब बातें सुन ली हैं। उससे भी पूछा गया। हँसकर और गम्भीर होकर जो कुछ उससे बना, कह सुनाया। इसके बाद उसने अपने आँचलमें थोड़ी मुड़ी बाँधकर जमींदारके एक आमके बागमें प्रवेश किया। वह बाग उन लोगोंके मकानके पास ही था और उसीके एक ओर एक बाँसका भिड़ा था। वह जानती थी कि छिपकर तमाखू पीनेके लिए देवदासने इसी बाँस-भिड़ेके भीतर थोड़ी-सी जगह साफ कर रक्खी है। जब वह भागकर कहीं छिपना चाहता था तब इसी गुप्त स्थानमें। भीतर पहुँचकर पार्वतीने देखा कि बाँस-भिड़ेके बीचमें देवदास हाथमें एक छोटा हुक्का लिये हुए बैठा है और सयानोंकी तरह धूम्र-पान कर रहा है। मुख बहुत गम्भीर हो रहा है और उसपर दुश्चिन्ताओंका चिह्न यथेष्ट प्रकट हो रहा है। पार्वतीको देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ, परन्तु, उसे बाहर प्रकट न होने दिया। तमाखू पीते हुए उसने गम्भीर भावसे कहा—आओ।

पार्वती पास आकर बैठ गई। उसने अपने आँचलमें जो कुछ बाँध रक्खा था, उसपर तुरन्त ही देवदासकी दृष्टि पड़ गई। उसने बिना कुछ पूछे ही आँचलसे वह पदार्थ खोल लिया और खाना शुरू करके कहा—क्यों पारो, पण्डितजी क्या कहते थे ?

" उन्होंने सब बातें जाकर तायाजीसे कह दी हैं। "

देवदासने हुक्का जमीनपर रखकर आँखें फाड़कर पूछा—बाबूजीसे सब बातें कह दीं ?

" हाँ। "

" फिर क्या हुआ ? "

" अब वे तुम्हें पाठशालामें नहीं आने देंगे। "

" मैं पढ़ना ही नहीं चाहता। "

इस बीचमें उसका खाद्य पदार्थ भी प्रायः समाप्त हो चुका था। उसने पार्वतीकी ओर देखकर कहा—लाओ, सन्देश दो।

" सन्देश तो मैं नहीं लाई। "

" अच्छा तो लाओ पानी दो। "

" पानी यहाँ कहाँ मिलेगा ? "

देवदासने कुछ बिगड़कर कहा—अगर कुछ भी नहीं, तो फिर आई क्यों ? जाओ, पानी ले आओ।

उसका वह स्वर पार्वतीको अच्छा नहीं लगा। उसने कहा—अब मैं नहीं जा सकती। चलो, तुम्हीं चलकर पी आओ।

" भला, अभी क्या मैं जा सकता हूँ ? "

" तो क्या यहीं रहोगे ? "

" अभी तो यहीं रहूँगा, फिर चला जाऊँगा। "

पार्वतीका मन दुःखी हो गया। देवदासका वैराग्य देखकर और बातें सुनकर उसकी आँखोंमें जल भरा आ रहा था। उसने कहा—देव भइया, मैं भी चलूँगी।

" कहाँ ? मेरे साथ ! दुत् ! ऐसा कहीं होता है ! "

पार्वतीने सिर हिलाकर कहा—मैं तो चलूँगी ही।

" नहीं, तुम्हारे जानेकी जरूरत नहीं। जाओ, पहले पानी ले आओ। "

पार्वतीने फिर सिर हिलाकर कहा—मैं तो चलूँगी ही।

" जाओ, पहले पानी ले आओ। "

" नहीं, मैं नहीं जाऊँगी। तुम पीछेसे भाग जाओगे। "

" नहीं, मैं नहीं भागूँगा। "

लेकिन पार्वती उसकी इस बातपर विश्वास नहीं कर सकी, इसलिए वहीं बैठी रही। देवदासने फिर हुक्म दिया—जाओ, कह रहा हूँ न !

पार्वती चुप रही। इसके बाद उसकी पीठपर एक घूँसा पड़ा—जायगी नहीं ?

पार्वती रो पड़ी। उसने कहा—मैं किसी तरह नहीं जाऊँगी।

देवदास एक तरफ चला गया। पार्वती भी वहाँसे रोती हुई उठकर चल पड़ी और देवदासके पिताके पास आ पहुँची। मुकर्जी महाशय पार्वतीको बहुत चाहते थे। बोले—क्यों बेटी पारो, तुम रोती क्यों हो ?

"देव भइयाने मुझे मारा है।"

"कहाँ है वह ?"

"वहीं बगीचेमें बाँसकी झाड़ीमें बैठे हुए तमाखू पी रहे थे।"

एक तो पंडितजीके आनेसे वह यों ही चिढ़े बैठे थे, तिसपर इस समाचारने उन्हें बिलकुल आग-बबूला कर दिया। उन्होंने पूछा—देवा शायद फिर तमाखू पीने लगा है ?

"हाँ, पीते हैं, रोज पीते हैं। बाँस-भिड़ेमें उनका हुक्का छिपाया हुआ है।"

"तो फिर इतने दिनोंसे क्यों नहीं कहा ?"

"मैं डरती थी कि देव भइया मुझे मारेंगे।"

लेकिन असलमें ठीक यही बात न थी। उसे डर था कि अगर यह बात कह दूँगी तो देवदासको सजा भुगतनी पड़ेगी; और, इसीलिए उसने पहले कोई बात नहीं कही थी। लेकिन आज केवल गुस्सेमें आकर यह बात कह डाली है। अभी उसकी उमर सिर्फ आठ बरसकी थी। अभी उसे गुस्सा बहुत था, लेकिन, फिर भी उसमें समझ-बूझ कम न थी। वह घर जाकर बिछौनेपर पड़ गई और रोती रोती सो गई। उस रातको उसने भोजन नहीं किया।

---

## दूसरा परिच्छेद

दूसरे दिन देवदासपर खूब मार पड़ी, दिन-भर उसे घरमें बंद करके रखा गया। इसके बाद जब उसकी माँ बहुत रोने-धोने लगी, तब कहीं जाकर देवदास छोड़ा गया। दूसरे दिन सवेरे ही वह घरसे भागा हुआ आया और पार्वतीके मकानकी खिड़कीके पास खड़ा हो गया। उसने पुकारा—पारो, ओ पारो।

पार्वतीने खिड़की खोलकर कहा—देव भइया।

देवदासने इशारा करके कहा—जल्दी आ।

जब दोनों इकट्ठे हुए, तब देवदासने पूछा—तूने तमाखू पीनेकी बात क्यों कह दी ?

"तुमने मुझे मारा क्यों ?"

"तू पानी लाने क्यों नहीं गई ?"

पार्वती चुप रही। देवदासने कहा—तू बहुत बेवकूफ है। अच्छा देख, फिर कभी मत कहना।

पार्वतीने सिर हिलाकर कहा—नहीं।

"अच्छा चल, बाँस-बाड़ीमेंसे बाँस काट लावें। आज तालपर चलकर मछली पकड़नी होगी।"

बाँस-भिड़ेके पास ही नोनाका एक पेड़ था। देवदास उसीपर चढ़ गया। बहुत कठिनतासे उसने एक बाँसका सिरा खींचकर उसे नीचे झुकाया और पार्वतीको उसे पकड़नेके लिए देते हुए कहा—देख, इसे छोड़ मत देना, नहीं तो मैं गिर पड़ूँगा।

पार्वती अपनी सारी शक्ति लगाकर उसे नीचेकी ओर खींचे रही। देवदास उसे पकड़कर और नोनाकी एक डालपर पैर रखकर उसमेंसे बंसी काटने लगा। पार्वतीने नीचेसे कहा—देव भइया, तुम पाठशाला नहीं चलोगे ?

"नहीं।"

"तायाजी तुम्हें भेज देंगे।"

"बाबूजीने खुद ही कह दिया है अब मैं वहाँ नहीं पढ़ूँगा। पंडितजी घरपर ही आवेंगे।"

पार्वती कुछ चिन्तित हुई। कुछ देर बाद बोली—गरमीके कारण कलसे हम लोगोंकी पाठशाला सवेरेकी हो गई है। अब मैं जाऊँगी।

देवदासने ऊपरसे आँखें तरेरकर कहा—नहीं, जाना नहीं होगा।

उस समय पार्वती कुछ अन्यमनस्क-सी हो गई थी। इसी बीचमें बाँसकी डाली कुछ ऊपर उठ गई और साथ ही साथ देवदास भी नोनाकी डालसे नीचे आ पड़ा। डाल कुछ ज्यादा ऊँची नहीं थी, इसलिए कुछ ज्यादा चोट नहीं आई; लेकिन फिर भी, शरीर कई जगहसे छिल गया। नीचे आते ही क्रुद्ध देवदासने एक सूखी डाली उठाकर पार्वतीकी पीठपर, गालोंपर और जहाँ जीमें आया वहाँ, जोर जोरसे कई हाथ जमाकर कहा—जा दूर हो यहाँसे !

पहले तो पार्वती स्वयं ही लज्जित हो गई थी, लेकिन, जब उसपर लगातार

छड़ीपर छड़ी पड़ने लगी तब उसने मारे क्रोध और अभिमानके अपनी दोनों आँखें अंगारोंकी तरह लाल करके रोते हुए कहा—मैं अभी तायाजीके पास जाती हूँ।

देवदासने क्रोधमें आकर एक और हाथ जमाते हुए कहा—जा, अभी जा कर सब कह दे। मुझे परवाह नहीं है।

पार्वती चली गई। कुछ दूर बढ़ जानेपर देवदासने पुकारा—पारो!

पार्वतीने सुनकर भी नहीं सुना और वह और भी जल्दी जल्दी आगे बढ़ने लगी। देवदासने फिर पुकारा—ओ पारो, जरा सुन जा।

पार्वतीने कोई उत्तर नहीं दिया। देवदासने नाराज़ होकर कुछ तो ऊँचे स्वरसे और कुछ मन ही मन कहा—जा, मर जा!

पार्वती चली गई। देवदासने ज्यों त्यों करके एक-दो बंसियाँ काट लीं। उसका मन खिन्न हो गया था। पार्वती रोती रोती घर लौट गई। उसके गालोंपर छड़ीका जो दाग पड़ा था, वह नीला होकर फूल उठा था। उसपर पहले दादीकी ही निगाह पड़ी। उसने चिल्लाकर कहा—अरे बाप रे, पारो, किसने तुझे इस तरह मारा?

आँखें पोंछते हुए पार्वतीने कहा—पंडितजीने।

दादीने उसे गोदमें लेकर बहुत ही क्रुद्ध होकर कहा—चल तो जरा नारायणके पास चल। देखूँ तो सही वह कैसा पंडित है! हाय हाय! लड़कीको मार ही डाला था!

पार्वतीने दादीके गलेसे लिपटकर कहा—चलो।

मुकर्जी महाशयके पास पहुँचकर दादीने पंडितजीके अनेक पुरखोंका उल्लेख करके उनके पारलौकिक अशुभकी कामना प्रकट की और उनके खाद्य पदार्थोंकी भी कोई वैसी अच्छी व्यवस्था नहीं की। अन्तमें स्वयं गोविन्दको भी अनेक प्रकारसे गालियाँ देकर कहा—नारायण, जरा देखो तो उसकी हिम्मत! शूद्र होकर ब्राह्मणकी लड़कीपर हाथ चलाता है! जरा देखो तो उसने कैसा मारा है!

इतना कहकर पार्वतीके गालपरका नीला दाग वृद्धा बहुत ही वेदनाके साथ दिखलाने लगी।

नारायण बाबूने पार्वतीसे पूछा—पारो, किसने मारा है?

पार्वती चुप हो रही। उस समय उसकी दादी ही फिर चिल्लाकर बोली—और कौन मारेगा? उसी गँवार पंडितने मारा है।

" क्यों मारा ? "

पार्वतीने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। मुकर्जीने समझा कि इसने कोई अपराध किया है इसीलिए मार खाई है। लेकिन इस तरह मारना उचित नहीं हुआ। यही बात उन्होंने प्रकट रूपमें भी कही। तब पार्वतीने अपनी पीठ भी खोलकर दिखलाई और कहा—यहाँ भी मारा है।

पीठपरके दाग और भी स्पष्ट, और भी बड़े थे। इसलिए दोनो ही बहुत क्रुद्ध हो गये। मुकर्जीने अपनी यह राय भी जाहिर की कि पंडितजीको यहाँ बुलाकर उनसे कैफियत तलब की जानी चाहिए। यह भी स्थिर हुआ कि ऐसे पंडितके पास लड़के-लड़कियोंको भेजना ठीक नहीं।

यह राय सुनकर पार्वती बहुत प्रसन्न हुई और अपनी दादीकी गोदमें चढ़कर घर लौट आई। घर पहुँचकर पार्वती अपनी माँकी जिरहकी फेरमें पड़ी। वे ले बैठीं—क्यों मारा है ?

पार्वतीने कहा—यों ही झूठमूठ मारा है। माताने अच्छी तरह लड़कीके कान मलकर कहा—यों ही झूठमूठ भी कभी कोई मारता है ?

उसी समय दालानमेंसे होकर सास जा रही थीं। उन्होंने कमरेकी चौखटके पास आकर कहा—क्यों बहू, माँ होकर तुम तो इसे झूठमूठ मार सकती हो और वह मुँह-जला नहीं मार सकता ?

बहूने कहा—उसने झूठ-मूठ और अकारण कभी नहीं मारा है। यह बड़ी सीधी है न ! इसने जरूर कुछ किया है, तभी मार खाई है।

सासने विरक्त होकर कहा—अच्छा, मान लिया, यही सही। लेकिन अब मैं इसे पाठशाला नहीं जाने दूँगी।

" कुछ लिखना-पढ़ना नहीं सीखेगी ? "

" लिखना-पढ़ना सीखकर क्या होगा ? एकाध चिट्ठी-पत्री लिखना आ जाय, दो-चार पंक्तियाँ रामायण-महाभारतकी पढ़ने लग जाय, बस, यही बहुत है। तुम्हारी पारो क्या जजी करेगी या वकील बनेगी ? "

बहू लाचार होकर चुप हो रही। उस दिन देवदासने बहुत ही डरते डरते घरमें प्रवेश किया। उसे जरा भी सन्देह नहीं था कि इस बीचमें पार्वतीने घर पहुँचनेपर सारा हाल कह दिया होगा। लेकिन जब उसे अपने अनुमानके सत्य होनेका कहीं कुछ भी आभास नहीं मिला, बल्कि उलटे उसने अपनी माँके मुँहसे सुना कि आज गोविन्द पंडितने पार्वतीको बहुत बुरी तरहसे मारा है और इसलिए

अब वह पाठशाला नहीं जायगी, तब उसे इतना अधिक आनन्द हुआ कि उससे अच्छी तरह भोजन भी नहीं किया गया। जैसे-तैसे जल्दी जल्दी कुछ खा-पीकर और पार्वतीके पास पहुँचकर हाँफते हाँफते बोला—तू अब पाठशाला नहीं जायेगी ?

"नहीं।"

"यह कैसे हुआ ?"

"मैंने कह दिया कि पंडितजीने मारा है।"

देवदास खूब हँसा और उसकी पीठ ठोंककर उसने अपनी यह राय जाहिर की कि उसके समान बुद्धिमती इस पृथिवीपर और कोई नहीं है। इसके बाद उसने धीरे धीरे पार्वतीके गाल परके नीले दागोंको वहुत ही ध्यानपूर्वक देखकर और ठंढी साँस लेकर कहा—हाय हाय !

पार्वतीने कुछ हँसकर और देवदासके मुँहकी ओर देखकर पूछा—क्या हुआ ?

"क्यों पारो, तुझे बहुत चोट लगी है न ?"

पार्वतीने सिर हिलाकर कहा—हूँ।

"आहा, तू क्यों ऐसा करती है ! इसीसे तो मुझे गुस्सा आ जाता है। तभी तो मार बैठता हूँ।"

पार्वतीकी आँखोंमें जल भर आया। उसने सोचा पूछूँ, कि क्या करूँ; लेकिन वह पूछ नहीं सकी।

देवदासने उसके सिरपर हाथ रखकर कहा—देखो, अब ऐसा न करना। अच्छा।

पार्वतीने सिर हिलाकर कहा—नहीं करूँगी।

देवदासने फिर एक बार उसकी पीठ ठोंककर कहा—अच्छा, अब मैं तुझे कभी न मारूँगा।

---

## तीसरा परिच्छेद

दिनपर दिन बीतते चले जाते थे, इन दोनों बालक-बालिकाके आमोदकी सीमा नहीं थी। दिनभर धूपमें घूमते-फिरते, सन्ध्याको घर लौटकर मार खाते। दूसरे दिन सवेरा होते ही भाग जाते और फिर सन्ध्याको तिरस्कार-प्रहार भोग करते। रातको निश्चिन्त निरुद्वेग सो जाते, और फिर सवेरा होता और तब घरसे भागकर

खेलते फिरते। इनका और कोई संगी-साथी नहीं था और न उसकी कोई ज़रूरत ही थी। गाँव-भरमें उपद्रव करते फिरनेके लिए दोनों ही यथेष्ट थे। उस दिन सूर्योदय होनेके कुछ ही देर बाद दोनों तालपर जा पहुँचे थे। दोपहरको लाल लाल आँखें करके, सारा जल गँदला करके, पन्द्रह मछलियाँ पकड़कर और योग्यताके अनुसार आपसमें बँटवारा करके दोनों अपने अपने घर लौट आये। पार्वतीकी माँने अपनी लड़कीको बाकायदा ठोंक-पीटकर घरमें बन्द कर दिया। लेकिन यह नहीं मालूम कि देवदासका क्या हाल हुआ, क्योंकि इस तरहकी बातें वह कभी किसी तरह जाहिर नहीं होने देता था। लेकिन हाँ, जब पार्वती कमरेके अन्दर बैठी हुई खूब रो रही थी, तब उसने दोपहरको दो-ढाई बजेके लगभग एक बार उसकी खिड़कीके नीचे आकर बहुत ही कोमल स्वरसे पुकारा था—"पारो, ओ पारो!" जान पड़ता है कि पार्वतीने उसकी आवाज़ सुन ली थी, लेकिन रूठकर उत्तर नहीं दिया था। इसके बाद उसने वह बाकी सारा दिन चम्पेके एक पेड़पर बैठकर ही बिता दिया और सन्ध्याके बाद बहुत प्रयत्न करके धर्मदास उसे उस पेड़से नीचे उतारकर घर ले गया।

लेकिन यह बात केवल उसी दिन हुई। दूसरे दिन पार्वती सवेरेसे ही उत्सुकतापूर्वक देव भइयाकी प्रतीक्षा करती रही; किन्तु देवदास नहीं आया। वह अपने पिताके साथ पासके गाँवमें एक निमन्त्रणमें चला गया था। जब देवदास नहीं आया तब पार्वती क्षुण्ण मनसे अकेली ही घरसे बाहर निकल पड़ी। कल तालमें पैठनेके समय देवदासने पार्वतीको तीन रुपये रखनेके लिए दिये थे, इस डरसे कि कहीं खो न जायँ। उसके आँचलमें वही तीन रुपये बँधे हुए थे। उसने आँचल घुमाते हुए और खुद भी घूमते हुए बहुत-सा समय अकेले ही बिता दिया। संगी साथी कोई मिला नहीं। क्योंकि उन दिनों सवेरेके समय ही पाठशाला खुलती थी। अब पार्वती दूसरे मुहल्लेकी ओर चली। वहीं मनोरमाका मकान था। मनोरमा भी पाठशालामें पढ़ती थी। वह अवस्थामें कुछ बड़ी थी, लेकिन पार्वतीकी सहेली थी। इधर कई दिनोंसे उससे भेंट नहीं हुई थी। आज समय पाकर पार्वतीने उस मुहल्लेमें उसके घरमें प्रवेश करके पुकारा—मानो, घरमें हो?

मनोरमाकी मौसी बाहर निकल आई।

"पारो?"

"हाँ मौसी, मनोरमा कहाँ है?"

" वह तो पाठशाला गई है । तुम नहीं गई ? "

" मैं पाठशाला नहीं जाती । देव भइया भी नहीं जाते । "

मनोरमाकी मौसीने हँसते हुए कहा—तब तो बहुत अच्छी बात है । तुम भी नहीं जातीं और देव भइया भी नहीं जाते ?

" नहीं, हम लोगोंमेंसे कोई नहीं जाता । "

" अच्छी बात है । लेकिन मनोरमा पाठशाला गई है । "

मौसीने उससे बैठनेके लिए कहा, लेकिन वह लौट आई । रास्तेमें उसने देखा कि रसिक पालकी दूकानके पास तीन वैष्णवी स्त्रियाँ तिलक-मुद्रा लगाये और हाथमें खँजड़ी लिये भिक्षा माँगने चली जा रही हैं । पुकारकर कहा—वैष्णवी, तुम गाना जानती हो ?

उनमेंसे एकने उलटकर देखते हुए कहा—जानती क्यों नहीं बेटी ।

" तब गाओ न । "

इसपर वे तीनों ही घूमकर खड़ी हो गईं । उनमेंसे एकने कहा—बेटी, गाना क्या यों ही होता है, भिक्षा देनी होती है ! तुम्हारे घरपर चलकर गावेंगीं ।

" नहीं, यहीं गाओ । "

" पैसे देने होंगे बेटी । "

पार्वतीने आँचल दिखाकर कहा—पैसे नहीं, रुपये हैं ।

पार्वतीके आँचलमें रुपये बँधे हुए देखकर वे दूकानसे कुछ दूर जाकर बैठ गईं । इसके उपरान्त खंजड़ी बजाकर और सुर मिलाकर तीनों गाने लगीं । पार्वतीके समझमें कुछ भी नहीं आया कि क्या गाना हुआ और उसका क्या अर्थ हुआ । यदि वह जानना चाहती तो भी शायद न जान सकती । लेकिन उसका मन उसी समय देव भइयाके पास दौड़ गया था ।

गाना समाप्त करके उन्होंने कहा—लाओ बेटी, दो, क्या भिक्षा देती हो ।

पार्वतीने आँचलकी गाँठ खोलकर तीनों रुपये उनके हाथमें दे दिये । तीनों वैष्णवियाँ अवाक् होकर कुछ देर तक उसके मुँहकी ओर देखती रहीं ।

उनमेंसे एकने पूछा—बेटी, ये किसके रुपये हैं ?

" देव भइयाके । "

" वे तुम्हें मारेंगे नहीं ? "

पार्वतीने कुछ सोचकर कहा—नहीं ।

उनमेंसे एकने कहा—जीती रहो बेटी !

पार्वतीने हँसकर कहा—तुम तीनोंको ठीक ठीक हिस्सा मिल गया न ?

तीनोंने सिर हिलाकर कहा—हाँ, मिल गया है। राधा रानी तुम्हारा भला करें। यह कहकर उन तीनोंने हृदयसे उसे आशीर्वाद किया कि इस दानशील छोटी लड़कीको कोई सजा न मिले। पार्वती उस दिन जल्दी ही घर लौट आई। दूसरे दिन सवेरे ही देवदासके साथ उसकी भेंट हुई। उसके हाथमें एक परेता तो था, लेकिन गुड्डी नहीं थी। गुड्डी उसे खरीदनी थी। पार्वतीको अपने पास देखकर उसने कहा—पारो, लाओ रुपये दो।

पार्वतीका मुँह सूख गया—रुपये तो नहीं हैं।

"क्या हुए ?"

"वैष्णवियोंको दे दिये। उन्होंने गाना गाया था।"

"सब रुपये दे दिये ?"

"हाँ सब। तीन ही तो रुपये थे।"

"दुत गधी, क्या सब रुपये दे देने होते हैं ?"

"वाह ! तीन वैष्णवियाँ जो थीं। अगर तीन रुपये न देती तो उन तीनोंका हिस्सा किस तरह लगता ?"

देवदासने गम्भीर होकर कहा—अगर मैं होता तो दो ही रुपये देता।

यह कहकर देवदासने परेतेकी डंडीकी नोकसे जमीनपर कुछ अंकोंके चिह्न बनाते हुए कहा—उस अवस्थामें उन तीनोंमें हर एकको दस आना आठ पाई हिस्सा मिलता।

पार्वतीने कहा—वे लोग क्या तुम्हारी तरह हिसाब लगाना जानती हैं ?

देवदासने त्रैराशिक तक हिसाब सीखा था। पार्वतीकी बातसे प्रसन्न होकर कहा—हाँ, ठीक है, वे न जानती होंगीं।

पार्वतीने देवदासका हाथ पकड़कर कहा—देव भइया, मैंने समझा था कि तुम मुझे मारोगे।

देवदासने चकित होकर पूछा—मारता क्यों ?

"वैष्णवियोंने कहा था कि तुम मुझे मारोगे।"

यह सुनकर देवदासने बहुत प्रसन्न होकर पार्वतीके कन्धेपर भार रखते हुए कहा—दुत्, बिना कोई कसूर किये क्या मैं मारता हूँ ?

जान पड़ता है कि देवदासने समझा था कि पार्वतीका यह कार्य मेरे पिनल कोडके अन्दर नहीं आता क्योंकि तीन रुपये उन तीनों वैष्णवियोंमें ठीक तरहसे

बँट गये थे। विशेषतः जिन वैष्णवियोंने पाठशालामें यहाँ तक हिसाब नहीं सीखा था, उन्हें यदि तीन रुपयोंके बदले केवल दो ही रुपये दिये जाते तो यह उनके प्रति मानो एक प्रकारका अत्याचार होता। उसके बाद वह पार्वतीका हाथ पकड़कर गुड्डी खरीदनेके लिए छोटे बाज़ारकी तरफ चल पड़ा। चलते समय परेता उसने वहीं एक झाड़ीमें छिपा दिया।

---

## चौथा परिच्छेद

इस प्रकार एक बरस तो बीत गया, परन्तु, अब और नहीं बीतना चाहता। देवदासकी माँ बहुत आफत मचाने लगीं। उन्होंने पतिको बुलाकर कहा—देवदास बिलकुल मूर्ख हरवाहा हो गया है। चाहे जो हो, इसका कुछ न कुछ उपाय करो।

उन्होंने सोचकर कहा—वह कलकत्ते चला जाय, नगेन्द्रके यहाँ रहकर अच्छी तरह लिख-पढ़ सकेगा।

नगेन्द्र बाबू रिश्तेमें देवदासके मामा होते थे। यह बात सभी लोगोंने सुनी। पार्वती सुनकर बहुत ही भयभीत हुई। देवदासको अकेला पाकर वह उसका हाथ पकड़कर झूलते हुए बोली—देव भइया, मैं समझती हूँ कि तुम कलकत्ते जाओगे।

"किसने कहा?"

"तायाजीने कहा है।"

"दुत्,—मैं हरगिज़ नहीं जाऊँगा।"

"और यदि वे लोग ज़बरदस्ती भेज दें तो?"

"ज़बरदस्ती?"

इस समय देवदासने ऐसा मुँह बनाया जिससे पार्वतीसे अच्छी तरह समझ लिया कि इस पृथ्वीपर ऐसा कोई नहीं है जो उससे कोई काम ज़ोर-जबरदस्तीसे करा सके। वह भी यही चाहती थी। अतएव, अतिशय आनन्दसे और एक बार उसका हाथ पकड़कर और उसपर इधर-उधर झूलकर मुँहकी ओर देखकर हँसती हुई बोली—देखो, देव भइया, जाना नहीं।

"कभी नहीं।"

लेकिन देवदासकी यह प्रतिज्ञा रह न सकी। उसके पिताने उसपर बहुत

बक-झककर, और यहाँ तक कि तिरस्कार और प्रहार करके भी, धर्मदासके साथ उसे कलकत्ते भेज दिया। जानेके दिन देवदासने अपने मनमें बहुत अधिक कष्टका अनुभव किया। नये स्थानमें जानेके विचारसे उसे कुछ भी कुतूहल या आनन्द नहीं हुआ। पार्वती उस दिन उसे किसी तरह छोड़ना ही नहीं चाहती थी। वह बहुत कुछ रोई-धोई, लेकिन उसकी बात कौन सुनता ? पहले तो उसने रूठकर कुछ देर देवदासके साथ बात ही नहीं की। किन्तु अन्तमें देवदासने जब उससे कहा—पारो, मैं जल्दी ही लौट आऊँगा; यदि न भेजेंगे, तो भाग आऊँगा, तब पार्वतीका मन कुछ ठिकाने हुआ और उसने अपने क्षुद्र हृदयकी बहुत-सी बातें कह सुनाईं। इसके बाद घोड़ा-गाड़ीपर सवार होकर पोर्टमण्टो हाथमें लेकर अपनी माताका आशीर्वाद और उसके नेत्रोंके जलका अन्तिम बिन्दु अपने मस्तकपर तिलकके रूपमें धारण करके देवदास चला गया।

उस समय पार्वतीको न जाने कितना कष्ट हुआ, नेत्रोंसे न जाने कितनी जलधारा गालोंपरसे नीचेकी ओर गिरी और अभिमानसे उसकी छाती न जाने किस तरह फटने लगी। पहले उसके कई दिन इसी तरह बीते। इसके बाद एक दिन अचानक उसने प्रातःकाल उठकर देखा कि आज दिन-भर करनेके लिए मेरे पास कोई काम ही नहीं है। जबसे उसने पाठशाला छोड़ी थी तबसे अब तक सवेरेसे सन्ध्या तकका सारा समय केवल उत्पात और खेल-कूदमें ही बीत जाता था। वह समझती थी कि न जाने मुझे कितने काम करने हैं और उन सब कामोंके लिए समय ही पूरा नहीं पड़ता। परन्तु अब प्रायः ऐसा होने लगा कि उसे ढूँढ़नेपर भी कोई काम नहीं मिलता। किसी दिन सवेरे उठकर चिट्ठी लिखने बैठ जाती। इसीमें दस बज जाते और उसकी माँ नाराज़ होने लगती। पर दादी कहती—अरे उसे लिखने दो न। सवेरे उठकर इधर-उधर दौड़ते फिरनेसे तो कुछ लिखना-पढ़ना अच्छा है।

जिस दिन देवदासका पत्र आता था, वह पार्वतीके लिए बहुत ही सुखका दिन होता था। सीढ़ीवाले दरवाज़ेकी चौखटपर बैठकर और हाथमें पत्र लेकर दिन-भर वही पढ़ा करती थी। इस प्रकार प्रायः दो मास बीत गये। अब न तो उधरसे उतनी जल्दी जल्दी पत्र आता था और न इधरसे ही लिखा जाता था। उत्साह मानों धीरे धीरे कुछ कम होता जा रहा था।

एक दिन सवेरेके समय पार्वतीने अपनी मातासे कहा—माँ, मैं अब फिर पाठशाला जाया करूँगी।

"क्यों ?"

माँको इस बातपर कुछ आश्चर्य हुआ। पार्वतीने सिर हिलाकर कहा—मैं जरूर जाऊँगी।

"अच्छा जाइयो। भला, बेटी, मैंने तुझे कभी पाठशाला जानेसे मना किया है?"

उसी दिन दोपहरको पार्वती बहुत दिनकी छोड़ी हुई स्लेट और किताब ढूँढ़कर और दासीका हाथ पकड़कर फिर अपने उसी पुराने स्थानपर शान्त और धीर भावसे जा बैठी।

दासीने कहा—गुरूजी, अब पार्वतीको मारना-पीटना मत। अपनी ही इच्छासे पढ़ने आई है। जब इसकी इच्छा होगी तब यह पढ़ेगी और जब इच्छा नहीं होगी तब घर चली जायगी।

पंडितजीने मन ही मन कहा—तथास्तु; और ऊपरसे कहा—अच्छा, ऐसा ही होगा।

एक बार उनकी यह पूछनेकी इच्छा हुई कि पार्वतीको भी क्यों नहीं कलकत्ते भेज दिया गया? लेकिन पूछा नहीं।

पार्वतीने देखा कि ठीक उसी स्थानपर बेंचके ऊपर प्रमुख छात्र भोलू बैठा हुआ है। उसे देखकर पहले एक बार पार्वतीको कुछ हँसी-सी आई। लेकिन इसके बाद ही उसके नेत्रोंमें जल भर आया। उसे यह ध्यान हुआ कि बस इसीने देवदासको घरसे बाहर निकलवाया है।

इस प्रकार भी अनेक दिन बीत गये। बहुत दिनोंके बाद देवदास लौटकर घर आया। पार्वती दौड़ी हुई उसके पास पहुँची। बहुत-सी बातें हुईं। कोई ऐसी बहुत ज्यादा बातें नहीं थीं जो पार्वती कहती और यदि ऐसी कुछ बातें रही भी हों, तो वह कह नहीं सकी। लेकिन देवदासने बहुत-सी बातें कहीं। वे सभी प्रायः कलकत्तेकी थीं। इसके बाद एक दिन गरमियोंकी छुट्टी खतम हो गई। देवदास फिर कलकत्ते चला गया। इस बार भी रोना-धोना हुआ, लेकिन उसमें उस बारकी तरह गम्भीरता नहीं रही। इसी प्रकार चार बरस बीत गये। इन कुछ वर्षोंमें देवदासके स्वभावमें इतना अधिक परिवर्तन हो गया था कि उसे देखकर पार्वतीने अनेक बार चुपचाप एकान्तमें रोकर अपनी आँखें पोंछ लीं। इससे पहले देवदासमें ग्राम्यताके जो जो दोष थे, नगरमें निवास करनेके कारण वे सब अब नामको भी नहीं रह गये थे। अब तो विलायती जूता, बढ़िया कोट-कमीज़, बढ़िया धोती, छड़ी, सोनेकी घड़ी, चेन और बटन आदि सब चीजोंके न रहनेपर उसे लज्जा

होती थी। अब ग्राम्य नदीके किनारे टहलनेको उसका जी नहीं चाहता था, बल्कि उसके बदले अब उसे हाथमें बन्दूक लेकर शिकारके लिए निकल जानेमें ही आनन्द आता था। अब छोटी छोटी मछलियोंके बदले बड़े बड़े मच्छ फँसानेकी इच्छा होती थी। केवल यही क्यों, समाजकी चर्चा, राजनीतिकी चर्चा, सभा-समिति, क्रिकेट और फुट-बालकी आलोचना ही उसे अच्छी लगती थी। हाय रे, अब कहाँ वह पार्वती और कहाँ उन लोगोंका वह तालसोनापुर गाँव! बाल्य-स्मृतिसे युक्त जो दो-एक सुखकी बातें थीं, यह नहीं कि वे याद न आती हों, लेकिन दूसरी ओर बहुत-सी बातोंके प्रति उत्साह होनेके कारण अब वे अधिक समय तक मनमें नहीं ठहरतीं थीं। फिर भी गरमियोंकी छुट्टी आई। पिछले साल गरमियोंकी छुट्टीमें देवदास घूमनेके लिए विदेश चला गया था, घर नहीं आया था। इस बार उसकी माता और पिता दोनोंने ही बहुत आग्रहपूर्वक उसे पत्र लिखा था; इसीलिए इच्छा न होनेपर भी देवदास अपना बोरिया-बिस्तर बाँधकर तालसोनापुर गाँव आनेके लिए हवड़ा स्टेशनपर आ पहुँचा। जिस दिन घर पहुँचा उस दिन उसका शरीर कुछ ठीक नहीं था, इसीलिए वह घरसे बाहर नहीं निकल सका। दूसरे दिन उसने पार्वतीके घर पहुँचकर पुकारा—चाची।

पार्वतीकी माँने उसे बहुत आदरपूर्वक बुलाते हुए कहा—आओ बेटा, बैठो। चाचीके साथ थोड़ी देर तक बातचीत करनेके बाद देवदासने पूछा—चाची, पार्वती कहाँ है?

"ऊपरवाली कोठरीमें होगी।"

देवदासने ऊपर पहुँचकर देखा कि पार्वती सन्ध्या-दीप जला रही है। पुकारा—पार्वती!

पहले तो पार्वती चौंक उठी, पर फिर प्रणाम करके कुछ अलग खिसककर खड़ी हो गई।

"क्या हो रहा है पार्वती?"

इस बातका उत्तर देनेकी कोई आवश्यकता नहीं थी, इसलिए पार्वती चुप रही। इसके बाद देवदासको लज्जा होने लगी। उसने कहा—अच्छा, जाता हूँ। सन्ध्या हो गई है। शरीर ठीक नहीं है।

देवदास चला गया।

---

# पाँचवाँ परिच्छेद

दादी कहती है—पार्वतीने अब तेरहवें वर्षमें पैर रक्खा है। इस अवस्थामें शारीरिक सौन्दर्य न जाने कहाँसे दौड़ा आ पहुँचता है और किशोरीके सर्वांगमें छा जाता है। आत्मीय-स्वजन सहसा एक दिन चौंककर देखते हैं कि हमारी छोटी लड़की अब बड़ी हो गई है। उस समय उसके वास्ते पात्र ठीक करनेकी छटपटी पड़ जाती है। चक्रवर्तीके यहाँ आज कई दिनोंसे इसी बातकी आलोचना हो रही है। पार्वतीकी माता बहुत ही चिन्तित है। बातों बातोंमें अपने पतिको सुनाकर कहती है कि अब पार्वतीको रक्खा नहीं जा सकता। चक्रवर्ती बड़े आदमी तो नहीं थे, लेकिन सन्तोषकी बात यह थी कि कन्या बहुत ही सुन्दरी थी। वे समझते थे कि यदि संसारमें रूपकी कोई मर्यादा या क़दर है, तो फिर पार्वतीके लिए अधिक चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं होगी। एक बात और भी है, वह भी यहाँ बतला दी जाय। चक्रवर्ती परिवारमें इससे पहले कन्याके विवाहके समय इतनी चिन्ता नहीं करनी पड़ती थी; हाँ पुत्रके विवाहमें करनी पड़ती थी। ये लोग कन्याके विवाहके समय धन लेते थे और पुत्रके विवाहमें वही धन देकर बहूको घर ले आते थे। नीलकंठके पिताने भी अपनी कन्याके समय धन लिया था; लेकिन, स्वयं नीलकंठ इस प्रथासे बहुत ही घृणा करते थे। उनकी बिलकुल इच्छा नहीं थी कि पार्वतीको बेचकर धन प्राप्त करें। पार्वतीकी माँ भी यह बात जानती थी, इसीलिए वह अपने स्वामीसे पार्वतीके लिए तगादा करती थी। इससे पहले पार्वतीकी माँने अपने मनमें एक दुराशाको स्थान दे रक्खा था। उसने सोचा था कि किसी तरकीबसे देवदासके साथ पार्वतीका विवाह किया जा सकेगा। वह यह नहीं समझती थी कि इस आशाका पूर्ण होना नितान्त असम्भव है। वह सोचती थी कि यदि देवदाससे अनुरोध किया जायगा तो शायद इसके लिए कोई अच्छा रास्ता निकल आवेगा। इसीलिए जान पड़ता है कि नीलकंठकी माँने बातों-बातोंमें देवदासकी माँसे इस तरह जिक्र छेड़ दिया—बहू, देवदासमें और हमारी पार्वतीमें भला कैसा स्नेह है! ऐसा स्नेह और कहीं दिखाई नहीं देता।

देवदासकी माँने कहा—चाची, भला उन दोनोंमें स्नेह क्यों न होगा? दोनों ही भाई-बहनकी तरह एक साथ पलकर सयाने हुए हैं।

"हाँ बेटी, इसी लिए तो खयाल होता है कि यदि दोनोंका—देखो न बहू,

जब देवदास कलकत्ते गया था, तब हमारी बच्ची केवल आठ वर्षकी थी। लेकिन उसी उमरमें वह सोच करती करती मानों सूखकर काठ हो गई थी। जब कोई चिट्ठी आती थी तब मानों उसके लिए जप-माला हो जाती थी। हम सभी जानते हैं।”

देवदासकी माँने मन ही मन सब बातें समझ लीं। वह कुछ हँसी। यह तो नहीं मालूम कि उस हँसीमें उपहास कितना छिपा हुआ था, किन्तु वेदना अवश्य ही बहुत थी। वह भी सब बातें जानती थी और पार्वतीको प्यार भी करती थी। लेकिन वह थी तो खरीद-बिक्रीवाले घरकी ही लड़की! तिसपर घरके पास ही समधियाना! छीः छीः। बोलीं—चाची, घरके मालिककी जरा भी इच्छा नहीं है कि इस छोटी उमरमें, जो कि अधिकतर लिखने-पढ़नेका समय है, देवदासका विवाह करें। इसीलिए वे अब भी मुझसे कहा करते हैं कि बड़े लड़के द्विजदासका छोटी अवस्थामें ही विवाह करके कितना बड़ा अनर्थ किया गया! उसकी लिखाई-पढ़ाई कुछ भी न हो सकी।

पार्वतीकी दादी बिलकुल अप्रतिभ हो गई। फिर भी उसने कहा—बहू, यह सब तो मैं भी जानती हूँ। लेकिन तुम्हें मालूम है कि पारोपर षष्ठी देवीकी कृपा है। एक तो यों ही वह कुछ बढ़ गई है और तिसपर उसकी गठन भी कुछ ऐसी है कि वह अधिक सयानी जान पड़ती है। इसीलिए,—इसीलिए यदि नारायणकी इच्छा न हो—

देवदासकी माँने उसे बीचमें ही रोककर कहा—नहीं चाची, यह बात मैं उनसे नहीं कह सकूँगी। अगर इस समय मैं देवदासके ब्याहकी बात चलाऊँगी तो क्या वे मेरा मुँह देखेंगे?

बात यहीं तक होकर दब गई। लेकिन स्त्रियोंके पेटमें बात नहीं पचती। जब देवदासके पिता भोजन करने बैठे, तब देवदासकी माताने उनके सामने यह बात चलाकर कहा—पार्वतीकी दादीने आज उसके ब्याहकी बात छेड़ी थी।

देवदासके पिताने सिर ऊपर उठाकर कहा—हाँ, अब पार्वती सयानी हो गई है। जल्दी ही उसका ब्याह कर डालना उचित है।

“तभी तो आज बात चलाई थी। कहा कि अगर देवदासके साथ—”

स्वामीने भौंहें सिकोड़कर पूछा—तुमने क्या कहा?

“मैं और क्या कहती? दोनोंमें बहुत ही स्नेह है। लेकिन क्या इसीलिए खरीद-बिक्रीवाले चक्रवर्तीके घरकी लड़की अपने घरमें ला सकती हूँ? और फिर घरके पास ही समधियाना! छीः छीः।”

स्वामी सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने कहा—ठीक ही तो है। क्या हम अपने कुलकी हँसी करावेंगे? तुम इन सब बातोंपर कान मत देना।

गृहिणीने सूखी हँसी हँसकर कहा—नहीं, मैं कान नहीं देती। लेकिन देखो, तुम भी कहीं भूल न जाना।

स्वामीने भातका कौर उठाकर गम्भीर मुखसे कहा—अगर ऐसा होता तो इतनी बड़ी जमींदारी न जाने कबकी उड़ गई होती!

उनकी जमींदारी सदा बनी रहे, इसमें किसीको आपत्ति नहीं। लेकिन हम पार्वतीके दुःखकी बात कहते हैं। जब यह प्रस्ताव नितान्त अग्राह्य होकर नीलकंठके कानोंतक पहुँचा, तब उन्होंने माँको बुलाकर तिरस्कारके साथ कहा—माँ, भला तुम क्यों ऐसी बात कहने गई थीं?

माँ चुप हो रही। नीलकंठ कहने लगे—लड़कीका ब्याह करनेके लिए हमें लोगोंके पैर पड़नेकी ज़रूरत न होगी। बल्कि बहुतसे लोग हमारे ही पैर आकर पड़ेंगे। हमारी लड़की कुरूप नहीं है। देखो, मैं तुम लोगोंसे कहे रखता हूँ, एक हफ्तेके अन्दर ही मैं उसका सम्बन्ध ठीक कर डालूँगा। भला ब्याहकी चिन्ता ही क्या है?

लेकिन जिसके लिए पिताने इतनी बड़ी बात कही थी, उसके सिरपर तो मानो बिजली टूट पड़ी। लड़कपनसे ही उसकी यह धारणा थी कि देव भइयापर मेरा कुछ अधिकार है! यह बात नहीं थी कि वह अधिकार किसी दूसरेने उसके हाथमें दे दिया हो। पहले तो वह स्वयं भी ठीक तरहसे कुछ समझ नहीं सकी थी। अज्ञात रूपसे अशान्त मनने दिनपर दिन यह अधिकार इस प्रकार चुपचाप और दृढ़तासे प्रतिष्ठित कर लिया था कि बाहर यद्यपि उसकी कोई बाह्य आकृति अबतक आँखोंके सामने नहीं आई थी, लेकिन आज उस अधिकारके छिननेकी बात उठते ही उसके समस्त हृदयमें मानों एक भयंकर तूफान उठने लगा।

लेकिन देवदासके सम्बन्धमें यह बात ठीक तरहसे नहीं कही जा सकती। बाल्यावस्थामें जब उसने पार्वतीके ऊपर अधिकार प्राप्त किया था, उस समय उसने परिपूर्ण रूपसे उसका उपभोग किया था। लेकिन कलकत्ते जानेपर कर्मके उत्साहमें और अन्यान्य आमोद-आह्लादमें पड़कर उसने पार्वतीको बहुत कुछ छोड़ दिया था। लेकिन वह यह नहीं जानता था कि पार्वती अपने उस सदा एक-रस चलनेवाले ग्राम्य जीवनमें दिन-रात केवल मेरा ही ध्यान करती आ रही है। केवल यही नहीं, वह सोचता था कि लड़कपनसे ही जिसे मैं नितान्त अपना

समझता चला आ रहा हूँ और न्याय्य-अन्याय्य सब तरहकी जिदें जिसके ऊपर इतने दिनोंसे चलाता रहा हूँ, यौवनकी पहली सीढ़ीपर पैर रखते ही उसकी ओरसे इस प्रकार अकस्मात् पीछे फिसल पड़नेसे काम नहीं चलेगा। लेकिन उस समय ब्याहकी बात कौन सोचता? कौन जानता था कि यह किशोर-बन्धन विवाहके अतिरिक्त और किसी तरहसे चिरस्थायी करके नहीं रक्खा जा सकता?

इसीलिए यह संवाद कि 'विवाह नहीं हो सकता' पार्वतीके हृदयकी समस्त आशाओं और आकांक्षाओंको उसके कलेजेके अन्दरसे मानों उखाड़ फेंकनेके लिए खींचातानी करने लगा, लेकिन, देवदासका सवेरेके समय लिखना-पढ़ना होता था, दोपहरको बहुत गरमी पड़ती थी, घरसे बाहर निकलना नहीं हो सकता, केवल तीसरे पहर ही यदि वह चाहता तो कुछ देरके लिए घरसे बाहर निकल सकता था। इसी समय वह किसी किसी दिन बढ़िया कपड़े और बढ़िया जूते पहनकर, हाथमें छड़ी ले, बाहर निकलता था। जानेके समय चक्रवर्ती-परिवारके मकानके पाससे ही होकर जाता था और पार्वती ऊपर खिड़कीमेंसे अपनी आँखोंके आँसू पोंछती हुई उसे देखा करती थी। न जाने कितनी ही बातें उसे याद आती थीं। उसे ध्यान होता था कि अब हम दोनों ही बड़े हो गये हैं। दीर्घ प्रवासके उपरान्त अब परायोंकी तरह परस्पर बहुत लज्जा होती थी। देवदास उस दिन इसी तरह चला गया था। यह बात पार्वतीकी समझमें आनेसे बाकी न रही थी कि वह लज्जा करता था, इसीलिए अच्छी तरहसे बात भी न कर सका था।

देवदास भी प्रायः इसी तरह सोचता था। बीच-बीचमें वह उसके साथ बातें भी कर लिया करता था। उसे अच्छी तरह देखनेकी भी इच्छा होती थी। लेकिन फिर उसे ध्यान आता था कि क्या यह अच्छा दिखेगा?

यहाँ कलकत्तेकी-सी धूमधाम नहीं थी। आमोद-प्रमोद, थिएटर, गाना-बजाना आदि कुछ भी नहीं था; इसीलिए, अक्सर उसे अपने लड़कपनकी बातें याद आ जाया करती थीं। सोचता कि वही पारो अब यह पार्वती हो गई है। पार्वती सोचती कि वही देवदास अब बाबू देवदास हो गया है। देवदास अब प्रायः चक्रवर्ती-परिवारके घर नहीं जाता। किसी किसी दिन सन्ध्या समय उनके आँगनमें खड़ा होकर आवाज़ दे देता है—चाची, क्या हो रहा है?

चाची कहती—आओ बेटा, बैठो।

देवदास यों ही कह देता—नहीं चाची, रहने दो, जाऊँ, जरा घूम आऊँ।

तब पार्वती किसी दिन ऊपर रहती और किसी दिन सामने पड़ जाती थी। देवदास चाचीके साथ बातें करता था और पार्वती धीरे धीरे वहाँसे हट जाती थी। रातको देवदासके कमरेमें प्रकाश होता था। ग्रीष्म कालकी खुली हुई खिड़कीमेंसे पार्वती उस ओर प्रायः देर तक देखा करती थी—परन्तु, वहाँ उसे दिखाई कुछ भी नहीं देता था। पार्वती सदासे आत्माभिमानिनी थी और इसीलिए वह प्राण-पणसे इस बातकी चेष्टा करती थी कि मैं जो इतना कष्ट सहती हूँ, सो इसका किसीको तिल-भर भी पता न चलने पावे। और फिर किसीको यह बात जतलानेसे लाभ ही क्या है? यदि कोई सहानुभूति दिखलावेगा तो वह सह्य न हो सकेगी; और तिरस्कार तथा लांछना? सो उससे तो मर जाना ही अच्छा है। मनोरमाका अभी पिछले साल ब्याह हुआ है, लेकिन वह अभी तक ससुराल नहीं गई है, इसीलिए बीच-बीचमें घूमती फिरती आ जाया करती है। पहले दोनों सखियाँ बीच-बीचमें मिलकर इस विषयकी बातचीत किया करतीं थीं। अब भी उस तरहकी बातें होती हैं; लेकिन, पार्वती अब उन बातोंमें योग नहीं देती। या तो चुप रह जाती है और या बात ही उलट देती है।

पार्वतीके पिता कल रातको लौटकर घर आये हैं। कई दिनसे वे पात्र ठीक करनेके लिए बाहर गये हुए थे। अब विवाहकी सब बातें निश्चित करके घर लौटे हैं। प्रायः बीस-पचीस कोस दूर बर्दवान जिलेके हाथीपोता गाँवके जमींदार पात्र चुने गये हैं। उनकी आर्थिक अवस्था अच्छी है और उम्र भी चालीससे नीचे ही है। अभी पिछले साल उनकी पहली स्त्रीका देहान्त हुआ है, इसीलिए अब वे फिर विवाह करेंगे। यह बात नहीं है कि इस समाचारने घरके सभी लोगोंको प्रसन्न ही किया हो, बल्कि वह दुःखका कारण भी हुआ है। तो भी, यह बात जरूर है कि भुवन चौधरीके यहाँसे सब मिलाकर प्रायः दो-तीन हज़ार रुपये आ जायेंगे। इसीलिए घरकी औरतें चुप हो रही थीं।

एक दिन दोपहरके समय देवदास भोजन करने बैठा था। उसकी माँने पास बैठकर कहा—पार्वतीका ब्याह हो रहा है।

देवदासने सिर उठाकर पूछा—कब?

" इसी महीनेमें। कल लड़कीको देख गये हैं। वर स्वयं ही देखने आया था। "

देवदासने कुछ विस्मित होकर कहा—मुझे तो यह सब कुछ भी नहीं मालूम।

" तुम भला कैसे जानोगे? वर दूज-वर है। अवस्था भी अधिक है। लेकिन हाँ, रुपया-पैसा काफी है। पार्वती सुख-चैनसे रह सकेगी। "

देवदास सिर नीचा करके भोजन करने लगा। उसकी माँ फिर कहने लगी— उन लोगोंकी इच्छा थी कि हमारे ही यहाँ ब्याह करें।

देवदासने सिर उठाकर पूछा—फिर क्या हुआ ?

माँने हँसते हुए कहा—छीः, भला ऐसा कहीं हो सकता है ! एक तो खरीद-बिक्रीवाला छोटा घर; तिसपर घरके पास ही ब्याह। छीः छी,—यह कहकर माँने होंठ सिकोड़े। देवदासने यह देख लिया।

कुछ देर तक चुप रहनेके बाद माँने फिर कहा—मैंने उनसे भी कहा था।

देवदासने सिर उठाकर पूछा—तो फिर बाबूजीने क्या कहा ?

" वे और क्या कहेंगे ! अपने इतने बड़े वंशकी हँसी तो करा नहीं सकते ! और यही मुझे सुना दिया। "

देवदासने फिर कुछ न कहा। उसी दिन दोपहरको मनोरमा और पार्वतीमें बातचीत हो रही थी। पार्वतीकी आँखोंका जल, मालूम होता है, मनोरमाने तुरंत ही पोंछा है। मनोरमाने कहा—तो फिर बहन, और उपाय ही क्या है ?

पार्वतीने आँखें पोंछते हुए कहा—उपाय और क्या है ? तुमने क्या अपने वरको पसन्द करके ब्याह किया था ?

" मेरी बात और है। मुझे तो वे पसन्द भी नहीं थे और ना-पसन्द भी नहीं। इसीलिए मुझे कोई कष्ट नहीं भोगना पड़ा। लेकिन तुमने तो बहन अपने पैरोंमें आप ही कुल्हाड़ी मारी है। "

पार्वतीने कोई उत्तर नहीं दिया; वह कुछ सोचने लगी।

मनोरमाने न जाने क्या समझकर कुछ हँसते हुए कहा—पारो, वरकी अवस्था कितनी होगी ?

" किसके वरकी ? "

" तुम्हारे। "

पार्वतीने कुछ हिसाब लगाकर कहा—उन्नीस।

मनोरमाको बहुत ही आश्चर्य हुआ। बोली—यह क्या ? मैंने तो अभी सुना है कि चालीसके करीब है।

अबकी पार्वतीने कुछ हँसते हुए कहा—मनो बहन, न जाने कितने लोगोंकी उमर चालीस बरस हुआ करती है, मैं क्या उन सबका हिसाब रखती हूँ ? मैं तो केवल यही जानती हूँ कि मेरे वरकी अवस्था उन्नीस-बीस बरसकी होगी।

पार्वतीके मुँहकी ओर देखकर मनोरमाने पूछा—और नाम क्या है ?

पार्वतीने फिर हँसते हुए कहा—मालूम होता है, इतने दिनोंमें तुमने यह भी न जाना !

" भला मैं कैसे जानूँगी ? "

" नहीं जानतीं ? अच्छा तो, बतलाये देती हूँ । " पहले तो कुछ हँसकर और फिर कुछ गम्भीर होकर पार्वतीने मनोरमाके कानके पास मुँह ले जाकर कहा—तुम नहीं जानतीं, श्रीदेवदास—

मनोरमा पहले तो कुछ चौंक पड़ी, लेकिन फिर उसने उसे ढकेलते हुए कहा—बहुत हँसीकी ज़रूरत नहीं । अभी बतला कि उनका नाम क्या है,—फिर कभी तो बतला नहीं सकोगी ।

" अभी बतलाया तो । "

मनोरमाने कुछ बिगड़कर कहा —अगर देवदास ही उनका नाम है, तो फिर रो-रोकर मरी क्यों जाती हो ?

सहसा पार्वती उदास हो गई । न जाने क्या सोचकर उसने कहा—तो फिर ठीक है, अब मैं नहीं रोऊँगी ।

" पारो । "

" क्या ? "

" बहन, तुम सब बातें खुलकर कहो न । मैं तो कुछ भी न समझ सकी । "

पार्वतीने कहा—जो कुछ कहना था, सभी तो कह दिया ।

" लेकिन मेरी समझमें तो कुछ भी नहीं आया । "

" तुम समझ भी नहीं सकोगी । "

इतना कहकर पार्वतीने दूसरी ओर मुँह फेर लिया । मनोरमाने सोचा कि पार्वती मुझसे बात छिपा रही है; वह अपने मनकी बात नहीं कहना चाहती । वह नाराज़ हुई और उसने दुःखी होकर कहा—पार्वती, तुम्हें जिस बातमें दुःख होता है बहन, मुझे भी तो उसमें दुःख होता है । मेरी आन्तरिक प्रार्थना यही है कि तुम सुखी रहो । अगर तुम कोई बात मुझसे छिपाना चाहती हो, मुझसे न कहना चाहती हो, तो मत कहो । लेकिन इस तरह मुझे बनाओ मत ।

पार्वती दुःखी हुई । उसने कहा—नहीं बहन, मैं हँसी नहीं करती । जो कुछ मैं जानती हूँ, वही तुम्हें बतला रही हूँ । मैं यही जानती हूँ कि मेरे स्वामीका नाम देवदास है । अवस्था उनकी उन्नीस-बीस बरसकी है और यही बात मैंने तुमसे भी कही है ।

"लेकिन मैंने तो अभी सुना है कि तुम्हारा ब्याह और कहीं पक्का हो गया है।"

"पक्का और क्या होगा? दादीके साथ तो ब्याह होगा ही नहीं, होगा तो मेरे ही साथ होगा। मैंने तो कहीं यह बात नहीं सुनी।"

मनोरमाने जो कुछ सुना था, वही वह सब कह देना चाहती थी। लेकिन पार्वतीने उसे बीचमें ही रोककर कहा—वह सब मैं सुन चुकी हूँ।

"तब? देवदास तुम्हें—"

"मुझे क्या?"

मनोरमाने हँसी रोककर कहा—तो फिर शायद तुम स्वयंवर करोगी। चोरीसे सब बातें पक्की हो गई हैं?

"कच्चा पक्का अभी कुछ भी नहीं हुआ है।"

मनोरमाने व्यथित स्वरसे कहा—पारो, तुम क्या कह रही हो, मेरी समझमें तो कुछ भी नहीं आता।

पार्वतीने कहा—तो फिर मैं देवदाससे पूछकर तुम्हें बतला दूँगी।

"क्या पूछोगी? वे ब्याह करेंगे या नहीं, यही न?"

पार्वतीने सिर हिलाकर कहा—हाँ, यही।

मनोरमाने बहुत ही चकित होकर कहा—पारो, यह तुम क्या कह रही हो? क्या तुम स्वयं ही यह बात पूछोगी?

"बहन, इसमें दोष ही क्या है?"

मनोरमा बिलकुल अवाक् हो गई—कहती क्या हो? स्वयं ही पूछोगी?

"हाँ, स्वयं ही पूछूँगी। और नहीं तो बहन, मेरी तरफसे और कौन पूछेगा?"

"तुम्हें लाज न लगेगी?"

"इसमें लाज काहेकी? तुमसे कहनेमें क्या मुझे लाज आई?"

"मैं औरत ठहरी, तुम्हारी सहेली। लेकिन पारो, वे तो पुरुष हैं।"

अबकी पार्वती हँस पड़ी। उसने कहा—तुम सहेली हो और अपनी हो। लेकिन वे क्या पराये हैं? जो बात मैं तुमसे कह सकती हूँ, वह क्या उनसे नहीं कही जा सकती?

मनोरमा अवाक् होकर उसके मुँहकी ओर देखती रही।

पार्वतीने हँसते हुए कहा—मनोरमा बहन, तुम झूठ-मूठ ही सिरमें सिन्दूर लगाती हो। तुम यह नहीं जानतीं कि स्वामी किसे कहते हैं। यदि वे मेरे स्वामी न होते और मेरी सारी लज्जा-शरमसे अतीत न होते, तो मैं इस तरह मरने

न बैठती। इसके सिवा बहन, मनुष्य जब मरनेपर उतारू हो जाता है तब वह क्या इस बातका विचार करने बैठता है कि विष कड़ुआ है या मीठा ? उनके सामने मुझे किसी बातकी लज्जा नहीं है।

मनोरमा उसके मुँहकी ओर देखती रही। फिर कुछ देर बाद बोली—क्या तुम उनसे यह कहोगी कि मुझे अपने चरणोंमें स्थान दो ?

पार्वतीने सिर हिलाकर कहा—हाँ बहन, ठीक यही बात कहूँगी।

" और यदि उन्होंने स्थान न दिया तो ? "

इसपर पार्वती बहुत देर तक चुप रही। इसके बाद उसने कहा—बहन, यह मैं नहीं जानती कि तब फिर क्या होगा।

घर लौटते समय मनोरमाने सोचा—धन्य है इसका साहस और धन्य है इसका कलेजा ! मैं अगर मर जाऊँ तो भी ऐसी बात ज़बान पर नहीं ला सकती।

बात भी ठीक ही थी। इसीलिए तो पार्वतीने कहा था कि ये सब व्यर्थ ही सिन्दूर लगाती हैं और हाथमें चूड़ियाँ पहनती हैं।

* * * *

## छठा परिच्छेद

मालूम होता है कि रातका एक बज गया है। अभी तक आकाशके शरीरमें म्लान ज्योत्स्ना लगी हुई है। पार्वती सिरसे पैर तक बिछानेकी चादर लपेटकर धीरे धीरे सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आई। उसने चारों ओर देखा, कहीं कोई जाग नहीं रहा है। इसके बाद वह दरवाजा खोलकर चुपचाप रास्तेपर आ गई। गाँवका रास्ता बिलकुल निस्तब्ध और नितान्त निर्जन था। किसीके साथ साक्षात् होनेकी आशंका नहीं थी। वह बिना किसी बाधाके जमींदारके मकानके सामने आ खड़ी हुई। ड्योढ़ीपर वृद्ध दरबान किशुनसिंह खटिया बिछाकर तब भी तुलसी-कृत रामायण पढ़ रहा था। पार्वतीको प्रवेश करते देखकर उसने बिना सिर उठाये ही पूछा—कौन ?

पार्वतीने कहा—मैं।

दरबानने कंठ-स्वरसे समझ लिया कि कोई स्त्री है। उसने समझा कि कोई दासी होगी, इसलिए, उसने बिना और कुछ पूछे ही फिर लय-सुरसे रामायण पढ़ना आरम्भ कर दिया। पार्वती अन्दर चली गई। गरमीके दिन थे। बाहर आँगनमें कई नौकर सो रहे थे। उनमेंसे कुछ तो निद्रित थे और कुछ अर्द्ध-

जागरित। नींदके झोंकमें अगर किसीने पार्वतीको देखा भी, तो दासी समझकर उससे कुछ भी नहीं कहा। पार्वती निर्विघ्न अन्दर पहुँचकर सीढ़ियोंसे होती हुई ऊपर जा पहुँची। इस घरके कोने-कोनेसे वह भली भाँति परिचित थी। देवदासका कमरा पहचाननेमें उसे देर नहीं लगी। दरवाजा खुला हुआ था और अन्दर दीया जल रहा था। पार्वतीने अन्दर पहुँचकर देखा कि देवदास शय्यापर सोया हुआ है। सिरहानेकी तरफ उस समय भी कोई किताब खुली हुई पड़ी थी। भावसे मालूम हुआ कि मानो अभी अभी नींद आ गई है। दीया और तेज करके वह चुपचाप आकर देवदासके पैरोंके पास बैठ गई। दीवारपर टँगी हुई घड़ी सिर्फ टक टक शब्द कर रही है। इसके सिवा और सब कुछ सुप्त था।

पैरोंपर हाथ रखकर पार्वतीने धीरेसे पुकारा—देव भइया—

देवदासने नींदकी झोंकमें समझा कि कोई बुला रहा है। उसने बिना आँखें खोले ही कहा—हूँ।

"ओ देव भइया!"

अबकी देवदास आँखें मलता हुआ उठ बैठा। पार्वतीके मुखपर घूँघट नहीं है। घरमें दीया भी खूब तेज जल रहा है। देवदासने सहजमें ही उसे पहचान लिया। लेकिन पहले मानों उसे विश्वास नहीं हुआ। इसके बाद उसने कहा—यह क्या? कौन, पारो?

"हाँ, मैं हूँ।"

देवदासने घड़ीकी ओर देखा। उसका आश्चर्य और भी बढ़ गया। उसने कहा—इतनी रातको?

पार्वतीने कोई उत्तर नहीं दिया; वह सिर नीचा किये चुपचाप बैठी रही। देवदासने फिर पूछा—इतनी रातको क्या अकेली आई हो?

पार्वतीने कहा—हाँ।

मारे उद्वेग और आशंकाके देवदासके रोएँ खड़े हो गये। उसने कहा—तुम क्या कह रही हो, रास्तेमें डर नहीं लगा?

पार्वतीने कुछ मुस्कराते हुए कहा—मुझे भूतोंसे उतना डर नहीं लगता।

"भूतका भय नहीं, लेकिन आदमीसे तो डर लगता है? क्यों आई हो?"

पार्वतीने कोई उत्तर नहीं दिया, लेकिन मन ही मन कहा—इस समय तो वह भी शायद मुझे नहीं लगता।

"तुम मकानके अन्दर किस तरह आई? किसीने देखा तो नहीं?"

" दरबानने देखा था।"

देवदासने आँखें फाड़कर कहा—दरबानने देखा है ? और किसीने ?

" आँगनमें नौकर सोये हुए हैं। हो सकता है कि उनमेंसे भी किसीने देखा हो।"

देवदास बिछौनेपरसे कूदकर खड़ा हो गया और झपटकर उसने दरवाजा बन्द कर लिया। फिर कहा—किसीने तुम्हें पहचाना था ?

पार्वतीने कुछ भी उत्कंठा प्रकट किये विना अत्यन्त सहज भावसे कहा—वे सभी मुझको जानते हैं। हो सकता है कि किसीने पहचान भी लिया हो।

" कह क्या रही हो ? पारो, तुमने ऐसा काम क्यों किया ?"

पार्वतीने मन ही मन कहा—तुम कैसे समझ सकोगे !

लेकिन उसने देवदासकी बातका कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप सिर नीचा किये बैठी रही।

" इतनी रातको ! छीः छीः। कल अपना मुँह कैसे दिखलाओगी ?"

सिर नीचा किये हुए ही पार्वतीने कहा—मुझमें वह साहस है।

यह सुनकर देवदासने क्रोध नहीं किया, किन्तु बहुत ही उत्कंठित होकर कहा—छीः छीः। क्या अब भी तुम बच्ची हो ? इस तरह यहाँ आनेमें क्या तुम्हें तनिक भी लज्जा नहीं हुई ?

पार्वतीने सिर हिलाकर कहा—कुछ भी नहीं।

" कल क्या लज्जासे तुम्हारा सिर नीचा न होगा ?"

प्रश्न सुनकर पार्वतीने तीव्र किन्तु करुण दृष्टिसे कुछ देरतक देवदासकी ओर देखकर निस्संकोच भावसे कहा—यदि मैं निश्चयपूर्वक यह न जानती कि तुम मेरी सारी लज्जा ढँक लोगे, तो अवश्य ही सिर नीचा होता।

देवदासने मारे आश्चर्यके हत-बुद्धि होकर कहा—मैं ? लेकिन मैं क्या मुँह दिखला सकूँगा ?

पार्वतीने फिर उसी प्रकार अविचलित कंठसे उत्तर दिया—तुम ? लेकिन देव भइया, तुम्हारा क्या ?

कुछ देरतक चुप रहकर उसने फिर कहा—तुम पुरुष ठहरे। आज नहीं तो कल तुम्हारे कलंककी बात सब लोग भूल जायँगे। दो दिन बाद किसीको इस बातका ध्यान भी न रह जायगा कि कब किस रातको हतभागिनी पार्वती तुम्हारे पैरोंपर अपना सिर रखनेके लिए अपना सब कुछ तुच्छ समझकर यहाँ आई थी।

" पारो, यह क्या कह रही हो ?"

" और मैं—"

मन्त्र-मुग्धकी तरह देवदासने कहा—और तुम ?

" मेरे कलंककी बात कहते हो ? नहीं, मुझपर कोई कलंक नहीं है। यदि इस बातके लिए मेरी निन्दा हो कि मैं तुम्हारे पास छिपकर आई थी, तो वह निन्दा मुझे नहीं लगेगी।"

" हैं पारो, तुम क्या रो रही हो ?"

" देव भइया, नदीमें कितना जल है ! क्या उतने जलसे भी मेरा कलंक न धुलेगा ?"

सहसा देवदासने पार्वतीके दोनों हाथ पकड़ लिये और कहा—पार्वती !

पार्वतीने देवदासके पैरोंपर सिर रखकर अवरुद्ध स्वरसे कहा—देव भइया, बस, यहीं मुझे थोड़ा-सा स्थान दे दो।

इसके बाद दोनों ही चुप हो रहे। देवदासके पैरोंपरसे बहते हुए आँसुओंकी कई बूँदें शुभ्र शय्यापर जा पड़ीं।

बहुत देरके बाद देवदासने पार्वतीका सिर ऊपर उठाकर कहा—पारो, क्या मेरे सिवा तुम्हारे लिए और कोई उपाय नहीं है ?

पार्वती कुछ भी न बोली। वह उसी प्रकार देवदासके पैरोंपर सिर रक्खे हुए पड़ी रही। उस निस्तब्ध कमरेमें केवल उसका अश्रु-व्याकुल सघन दीर्घ श्वास ही लहरा-लहराकर फूल रहा था। टन टन करके घड़ीमें दो बजे। देवदासने पुकारा—पारो !

पार्वतीने रुँधे हुए गलेसे कहा—क्या ?

" तुमने सुना है कि माता-पिता इससे बिल्कुल सहमत नहीं हैं ?"

पार्वतीने सिर हिलाकर उत्तर दिया कि हाँ, सुना है। इसके बाद फिर दोनों चुप हो रहे। बहुत देर बीत जाने पर देवदासने दीर्घ श्वास लेकर कहा—तो फिर ऐसी बातें क्यों करती हो ?

जिस प्रकार जलमें डूबनेपर मनुष्य अन्ध भावसे मिट्टीको भी खूब कसकर पकड़ लेता है, उसे किसी तरह छोड़ना नहीं चाहता, ठीक उसी प्रकार पार्वतीने भी अज्ञानकी तरह देवदासके दोनों पैर कसकर पकड़ रक्खे। उसने देवदासके मुखकी ओर देखकर कहा—देव भइया, यह बात मैं किसी तरह नहीं जानना चाहती।

" पार्वती, क्या मैं माता-पिताकी आज्ञाके बाहर हो जाऊँ ?"

" इसमें दोष ही क्या है ? हो जाओ।"

" तो फिर तुम कहाँ रहोगी ?"

पार्वतीने रोते हुए कहा—तुम्हारे चरणोंमें—

फिर दोनों कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे। घड़ीमें चार बज गये। गरमियोंकी रात थी। अब थोड़ी ही देरमें सबेरा होना चाहता है, यह देखकर देवदासने पार्वतीका हाथ पकड़कर कहा—चलो, तुम्हें घर पहुँचा आऊँ।

" मेरे साथ चलोगे ?"

" इसमें हानि ही क्या है ? यदि बदनामी होगी, तो कुछ उपाय भी हो सकेगा।"

" तो फिर चलो।"

दोनों निःशब्द पैर रखते हुए बाहर निकल आये।

---

## सातवाँ परिच्छेद

दूसरे दिन अपने पिताके साथ देवदासकी थोड़ी देर तक कुछ बातचीत हुई।

पिताने कहा—तुम सदासे मुझे बहुत दिक करते आये हो। जितने दिन जीता रहूँगा उतने दिन तुम इसी तरह मुझे दिक करते रहोगे। तुम्होर मुँहसे ऐसी बात निकले, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं।

देवदास चुपचाप सिर झुकाये बैठा रहा।

पिताने कहा—मैं इन सब बातोंमें नहीं पड़ता। जो कुछ करना हो, वह तुम और तुम्हारी माँ दोनों मिलकर कर लो।

देवदासकी माँने यह बात सुनकर रोते हुए कहा—बेटा, यह भी मेरे भाग्यमें बदा था !

उसी दिन देवदास बोरिया-बँधना बाँधकर कलकत्ते चला गया।

पार्वती यह बात सुनकर कठोर मुखसे और भी अधिक कठोर हँसी हँसकर चुप हो रही। पिछली रातकी बात कोई जानता नहीं और उसने भी किसीसे नहीं कही। हाँ, मनोरमा आई और बोली—पार्वती, सुना है कि देवदास कलकत्ते चले गये।

" हाँ—"

" तो फिर तेरा क्या उपाय किया ?"

उपायकी बात वह स्वयं ही नहीं जानती थी, दूसरेको क्या बतलाती ? आज

कई दिनोंसे वह बराबर यही सोचती आ रही है, लेकिन, फिर किसी तरह निश्चित नहीं कर सकती कि उसे आशा कितनी है और निराशा कितनी। लेकिन यह बात जरूर है कि ऐसे दुःसमयमें जब मनुष्यको आशा और निराशाका कोई कूल-किनारा नहीं दिखाई देता तब दुर्बल मन डरके मारे आशाकी दिशाको ही खूब कसकर पकड़े रहता है। जिस बातके होनेमें उसका मंगल है उसी बातकी वह आशा करता है। चाहे इच्छासे हो या अनिच्छासे, वह उसी ओर नितान्त उत्सुक नेत्रोंसे देखना चाहता है। इस अवस्थामें पार्वती भी बहुत कुछ ज़ोर लगाकर आशा कर रही थी कि कल रातवाली बात अवश्य ही विफल न होगी। विफल होनेपर उसकी क्या दशा होगी, इसका विचार उसकी चिन्ताकी सीमाके बाहर जा पड़ा था। इसीलिए वह सोच रही थी कि देव भइया फिर आवेंगे और फिर मुझे पुकारकर कहेंगे, 'पारो, जहाँ तक मेरा बस चलेगा मैं तुम्हें दूसरेके हाथ न दे सकूँगा।'

लेकिन दो ही दिन बाद पार्वतीको इस प्रकारका पत्र मिला—

"पार्वती, आज दो दिनसे मैं केवल तुम्हारी ही बात सोच रहा हूँ। पिता और मातामेंसे किसीकी इच्छा नहीं है कि हम लोगोंका विवाह हो। तुम्हें सुखी करनेके लिए उन लोगोंको जो बड़ा भारी आघात पहुँचाना होगा, वह मेरे लिए असाध्य है। इसके सिवा उन लोगोंके विरुद्ध होकर यह काम मैं कर ही कैसे सकूँगा? तुम्हें फिर कभी पत्र लिख सकूँगा, इसकी सम्भावना नहीं। इसीलिए इस पत्रमें ही सब कुछ खोलकर लिख रहा हूँ। तुम्हारा घर नीचा है। खरीद-बिक्रीवाले घरकी लड़की माँ किसी तरह अपने घरमें नहीं लावेंगी; और, घरके पास ही समधियाना करना भी उन्हें नितान्त दूषित जान पड़ता है। बाबूजीकी बात तो तुम सब जानती ही हो। उस रातकी बात याद करके मुझे बहुत ही क्लेश हो रहा है। कारण, यह बात मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि तुम्हारे जैसी स्वाभिमानी लड़कीने कितनी बड़ी व्यथाके कारण वह सब काम किया है।

"और एक बात है। यह बात कभी मेरे ध्यानमें नहीं आई कि मैं तुम्हें बहुत अधिक चाहता हूँ। आज भी मैं अपने हृदयमें तुम्हारे लिए कुछ बहुत अधिक कष्टका अनुभव नहीं कर रहा हूँ। मुझे केवल इसी बातका बहुत दुःख है कि तुम मेरे लिए कष्ट पाओगी। चेष्टा करके मुझे भूल जाना और मैं हृदयसे आशीर्वाद देता हूँ कि तुम इसमें सफल होओ।

—देवदास।"

यह पत्र जब तक देवदासने डाकखानेमें नहीं छोड़ा था तब तक वह एक बात सोच रहा था; लेकिन रवाना करनेके बाद तुरन्त ही वह दूसरी बात सोचने लगा। अपने हाथका ढेला फेंकनेके बाद वह टक लगाकर उसी तरफ देखता रहा। उसके मनमें एक अनिर्दिष्ट शंका धीरे धीरे जड़ पकड़ रही थी। वह सोचता था कि यह ढेला उसके सिरपर किस तरह पड़ेगा। क्या उसे बहुत तेज चोट लगेगी ? वह बच तो जायगी ? पोस्ट आफिससे घर लौटते समय रास्तेमें पग पगपर देवदासको यही ध्यान होता था कि उस रोज रातको मेरे पैरोंपर सिर रखकर पार्वती कितना रोई थी। क्या यह अच्छा काम हुआ ? और सबसे बढ़कर देवदास यह सोच रहा था कि जब स्वयं पार्वतीका कोई दोष नहीं है, तो फिर पिता-माता क्यों निषेध करते हैं ? कुछ तो वयस्क होनेके कारण और कुछ कलकत्तेमें रहनेके कारण अब यह बात उसकी समझमें आने लग गई थी कि केवल लोक-दिखाऊ कुल-मर्यादा और एक हीन विचारके ऊपर निर्भर करके निरर्थक एक प्राण-नाश नहीं करना चाहिए। यदि पार्वती न जीना चाहे, यदि वह अपने हृदयकी ज्वाला शान्त करनेके लिए दौड़कर नदीके जलमें जा पड़े, तो क्या विश्व-पिताके चरणोंमें एक महा-पातकका दाग न लगेगा ?

घर आकर देवदास अपने कमरेमें लेट गया। आज-कल वह एक मेसमें रहा करता है। अपने मामाके यहाँ रहना उसने बहुत दिनोंसे छोड़ दिया है। वहाँ उसका किसी तरहसे सुभीता नहीं बैठता। जिस कमरेमें देवदास रहा करता है उससे सटे हुए कमरेमें चुन्नीलाल नामक एक नवयुवक कोई नौ वर्षोंसे रहता आ रहा है। उसका यह दीर्घ कलकत्ता-निवास केवल बी० ए० पास करनेके लिए अतिवाहित हुआ है। लेकिन वह अभीतक बी० ए० पास नहीं हो सका, इसीलिए उसे अब भी वहीं रहना पड़ता है। चुन्नीलाल अपने नित्य कर्म सान्ध्य-भ्रमणके लिए घरसे निकला है और प्रभातके समय लौटेगा। बासेमें अब भी और कोई नहीं आया है। मजदूरनी आकर दीपक जला गई और देवदास अपने कमरेका दरवाजा बन्द करके लेट रहा।

इसके बाद एक एक करके सभी लोग लौटकर आ गये। भोजनके समय लोगोंने देवदासको पुकारा, लेकिन वह उठा नहीं। चुन्नीलाल कभी रातको बासेमें नहीं आता; आज भी नहीं आया।

उस समय रातका एक बज गया है। बासेमें देवदासके सिवा और कोई जाग नहीं रहा है। चुन्नीलाल लौटकर आया तब वह देवदासके कमरेके सामने खड़ा हो

गया। दरवाजा बन्द है, लेकिन अन्दर रोशनी जल रही है। उसने पुकारा—देवदास, जाग रहे हो ?

देवदासने अन्दरसे उत्तर दिया—हाँ। आज इतनी जल्दी आ गये ?

चुन्नीलाल कुछ हँसकर बोला, "हाँ, आज शरीर कुछ ठीक नहीं है," और चला गया। कुछ देर बाद वह फिर लौट आया और बोला—देवदास, जरा दरवाजा खोल सकते हो ?

"हाँ हाँ, खोल सकता हूँ। क्यों ?"

"तमाखूका इन्तज़ाम है ?"

"हाँ, है।"

यह कहकर देवदासने दरवाजा खोल दिया। चुन्नीलाल तमाखू भरने बैठ गया और बोला—देवदास, तुम अभी तक जाग क्यों रहे हो ?

"अरे नींद क्या रोज रोज आया करती है ?"

"नहीं आती ?"

चुन्नीलालने कुछ मज़ाक़ उड़ाते हुए कहा—मैं समझता था कि तुम्हारे जैसे अच्छे लड़के कभी आधी रातका मुँह नहीं देखते होंगे। लेकिन आज मुझे एक नई शिक्षा मिली।

देवदासने कोई उत्तर नहीं दिया। चुन्नीलालने मजेमें तमाखू पीते हुए कहा—देवदास, जबसे तुम मकानसे लौटकर आये हो तबसे मालूम होता है कि तुम्हारा चित्त ठिकाने नहीं है, कोई क्लेश है।

देवदास उस समय अन्यमनस्क हो गया था, उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

"तुम्हारा मन ठिकाने नहीं है। क्यों यही बात है न ?"

देवदास अचानक उठकर बिछौनेपर बैठ गया और व्यग्र भावसे उसके मुँहकी ओर देखकर बोला—अच्छा चुन्नी बाबू, तुम्हारे मनमें क्या कोई क्लेश नहीं है ?

चुन्नीलाल हँस पड़ा बोला—बिलकुल नहीं।

"इस जीवनमें कभी कोई क्लेश नहीं पाया ?"

"आखिर यह क्यों पूछ रहे हो ?"

"मुझे सुननेका शौक है !"

"अच्छा तो फिर किसी दिन सुनना।"

देवदासने पूछा—अच्छा चुन्नीलाल, तुम रात-रातभर कहाँ रहते हो ?

चुन्नीलालने कुछ मुस्कराते हुए कहा—सो क्या तुम जानते नहीं ?

" जानता तो हूँ, मगर ठीक तरहसे नहीं जानता। "

चुन्नीलालका मुख मारे उत्साहके उज्ज्वल हो गया। इस प्रकारकी आलोचनाओंमें चाहे और कुछ भी न हो, फिर भी आँखों देखेकी एक लज्जा होती है। परन्तु दीर्घ अभ्यासके दोषके कारण वह उसे भी विस्मृत कर चुका है। उसने कौतुकके साथ आँखें बन्द करके कहा—देवदास, अच्छी तरह जाननेके लिए ठीक मेरी ही तरहका होनेकी जरूरत है। कल हमारे साथ चलोगे ?

देवदासने पहले तो कुछ देर तक सोचा और तब उत्तर दिया—सुना है कि वहाँ खूब मजा भी आता है और कोई कष्ट नहीं रह जाता; क्या यह ठीक है ?

" बिलकुल सोलहों आने ठीक है। "

" अगर यही हो तो फिर मुझे भी ले चलना,—मैं चलूँगा। "

दूसरे दिन सन्ध्यासे कुछ पहले ही चुन्नीलालने देवदासके कमरेमें पहुँचकर देखा कि वह बहुत जल्दी जल्दी अपना सब सामान बाँधकर दुरुस्त कर रहा है। चकित होकर पूछा—यह क्या ? चलोगे नहीं ?

देवदासने बिना किसी ओर देखे कहा—हाँ, चलूँगा क्यों नहीं।

" तब यह सब क्या कर रहे हो ? "

" जानेका इन्तजाम कर रहा हूँ। "

चुन्नीलालने कुछ मुस्कराते हुए सोचा कि तैयारी कुछ बुरी नहीं है। और पूछा—क्या सारा घर-बार भी साथ ही ले चलोगे ?

" नहीं तो किसके पास छोड़ जाऊँगा ? "

चुन्नीलाल समझ नहीं पाया। उसने कहा—आखिर मैं अपना सारा सामान किसके पास रख जाता हूँ ? सब तो यहीं बासेमें पड़ा रहता है।

देवदासने मानों हठात् होशमें आकर आँखें खोलकर कुछ लज्जित भावसे कहा—चुन्नी बाबू, आज मैं घर जा रहा हूँ।

" यह क्यों ? और लौटोगे कब ? "

देवदासने सिर हिलाकर कहा—अब मैं नहीं आऊँगा।

चुन्नीलाल चकित होकर उसके मुँहकी ओर देखने लगा। देवदास कहने लगा—ये रुपये लो। लोगोंका मेरे जिम्मे जो कुछ बाकी है, वह सब इसमेंसे चुका देना। अगर कुछ बच रहे तो बासेकी मजदूरनी और नौकरको बाँट देना। जितना देना हो वह सब इसीमेंसे चुका देना। अब मैं कभी कलकत्ते नहीं आऊँगा।

फिर उसने मन ही मन कहा—कलकत्ते आनेसे बहुत कुछ चला गया है।

आज यौवनके कुहासेसे भरे हुए अन्धकारको भेदकर मानों उसे दिखाई दे रहा था कि उस दुर्दान्त दुर्विनीत किशोर वयसका वह अयाचित पद-दलित रत्न इस कलकत्तेकी तुलनामें भी कहीं अधिक बड़ा और कहीं अधिक मूल्यवान् है। फिर चुन्नीलालके मुँहकी ओर देखकर उसने कहा—चुन्नीबाबू, शिक्षा, विद्या, बुद्धि, ज्ञान, उन्नति जो कुछ हैं, सब सुखके लिएं हैं। चाहे जिस तरहसे देखो, अपना सुख बढ़ानेके सिवा यह सब और कुछ भी नहीं है।

चुन्नीलालने उसे बीचमें ही रोककर कहा—तो क्या अब तुम लिखना-पढ़ना सब कुछ छोड़ दोगे?

"अवश्य। यदि मुझे पहले यह मालूम होता कि मेरी इतनी अधिक हानिके बदले मेरा केवल इतना ही लिखना-पढ़ना हो सकेगा तो मैं इस जन्ममें कभी कलकत्तेका मुँह भी न देखता।"

"आखिर तुम्हें हो क्या गया है?"

देवदास सोचने लगा। फिर कुछ देर बाद बोला—अगर फिर कभी भेंट होगी तो सब बातें बतलाऊँगा।

उस समय रातके प्रायः नौ बजे थे। बासेके सब लोगोंने और चुन्नीलालने अतिशय विस्मित होकर देखा कि देवदास गाड़ीपर अपना सारा असबाब रखकर और बासा छोड़कर मानों सदाके लिए अपने घर चला गया। उसके चले जानेपर चुन्नीलालने नाराज़ होकर बासेके और सब लोगोंसे कहा—इस तरहके रँगे सियारोंको कोई जल्दी नहीं पहचान सकता!

## आठवाँ परिच्छेद

सतर्क और अभिज्ञ लोगोंका स्वभाव होता है कि वे सिर्फ एक बार जरा-सा देखकर ही किसी वस्तुके दोष या गुणके सम्बन्धमें अपनी सम्मति या असम्मति प्रकट नहीं करते,—सब ओरसे पूरा विचार न करके पूरी धारणा नहीं बना लेते, दो ओरसे देखकर चारों ओरकी बात नहीं कहते। लेकिन एक और प्रकारके लोग भी होते हैं जो इससे बिलकुल उलटे होते हैं। ऐसे लोगोंमें किसी बातपर अधिक देर तक विचार करनेका धैर्य नहीं होता। जहाँ उनके हाथमें कोई चीज़ आई कि वे तुरन्त ही निश्चय कर लेते हैं कि यह भली है अथवा बुरी। किसी

बातकी तह तक पहुँचकर उसे देखनेके लिए जितने परिश्रमकी आवश्यकता होती है उसका काम ये लोग अपने विश्वासके ज़ोरपर ही चला लेते हैं। यह बात नहीं है कि इस तरहके लोग संसारमें कुछ अधिक काम न कर सकते हों बल्कि अनेक अवसरोंपर तो ये लोग अक्सर अधिक काम भी कर जाते हैं। यदि भाग्य प्रसन्न हो तो ऐसे लोग उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर भी दिखाई पड़ते हैं और नहीं तो फिर अवनतिके गहरे गड्ढेमें सदाके लिए सो जाते हैं,—फिर उठ सहीं सकते, बैठ नहीं सकते, प्रकाशकी ओर नहीं देखते, निश्चल और मृत होकर जड पिंडकी तरह पड़े रहते हैं। देवदास भी इसी श्रेणीका मनुष्य था।

दूसरे दिन प्रातःकाल वह घर जा पहुँचा। माँने चकित होकर पूछा—देवदास, क्या कालिजमें फिर छुट्टियाँ हो गईं?

देवदास केवल 'हाँ' कहकर अन्यमनस्कोंकी भाँति चला गया। पिताके प्रश्नका वह कुछ इसी प्रकारका उत्तर देकर और उनसे कन्नी काटकर चला गया। उन्होंने ठीक तरहसे समझ न सकनेसे कारण गृहिणीसे पूछा। उन्होंने बुद्धि लड़ाकर कहा—गरमी अभी तक कम नहीं हुई है, इस लिए फिर छुट्टी हो गई है!

दो दिन तक देवदास इधर-उधर छटपटाता हुआ घूमता रहा। क्योंकि जो कुछ वह चाहता था वह हो नहीं रहा था। पार्वतीके साथ एकान्तमें उसकी भेंट ही नहीं हुई। दो दिन बाद पार्वतीकी माँने देवदासको अपने सामने देखकर कहा—बेटा, अगर तुम आ ही गये हो तो पार्वतीके ब्याह तक ठहर जाओ।

देवदासने कहा—अच्छा।

दोपहरको भोजन आदि समाप्त हो जानेपर पार्वती नित्य तालाबपर पानी लानेके लिए जाया करती है। बगलमें पीतलकी कलसी लेकर आज भी वह घाटपर आकर खड़ी हो गई। देखा कि पास ही देवदास एक बेरके पेड़की आड़में पानीमें बंसी डाले हुए बैठा है। एक बार उसके जीमें आया कि यहाँसे लौट चलूँ। फिर मनमें आया कि चुपचाप जल भरकर चली जाऊँ। लेकिन वह दोनोंमेंसे एक काम भी जल्दी न कर सकी। जब वह घाटपर कलसी रखने लगी तब शायद कुछ शब्द हुआ जिससे देवदासने सिर उठाकर उसकी ओर देखा। इसके बाद उसने हाथसे इशारा करते हुए पुकारकर कहा—पारो, जरा सुन जाओ।

पार्वती धीरे धीरे उसके पास जाकर खड़ी हो गई। देवदासने केवल एक बार सिर ऊपर उठाया और फिर वह बहुत देरतक शून्य दृष्टिसे जलकी ओर

देखता रहा। पार्वतीने पूछा—देव भइया, मुझसे कुछ कहना है ?

देवदासने बिना किसी ओर देखे कहा—हाँ, बैठो।

लेकिन पार्वती बैठी नहीं, केवल सिर नीचा किये खड़ी रही। जब कुछ देर तक कोई बात नहीं हुई तब पार्वती बहुत धीरे धीरे पैर बढ़ाती हुई घाटकी ओर लौटने लगी। देवदासने एक बार सिर उठाकर देखा। इसके बाद उसने फिर जलकी ओर देखते हुए कहा—सुनो।

पार्वती फिर लौट आई। लेकिन देवदास फिर भी उससे कोई बात न कह सका और यह देखकर पार्वती फिर घाटकी तरफ लौटने लगी। देवदास निस्तब्ध होकर बैठा रहा। थोड़ी देर बाद उसने घूमकर देखा कि पार्वती जल लेकर चलना चाहती है। तब वह बंसी एक किनारे रखकर घाटके पास आ खड़ा हुआ और बोला, "मैं आ गया हूँ!" पार्वतीने सिर्फ कलसी जमीनपर रख दी, लेकिन कुछ कहा नहीं।

"मैं आ गया हूँ पारो!"

पार्वती पहले तो कुछ देरतक चुप रही और अन्तमें बहुत ही कोमल स्वरसे बोली—क्यों ?

"तुमने लिखा था, याद नहीं है ?"

"नहीं।"

"यह क्या पारो, उस रातकी बात याद नहीं आती ?"

"यांद तो है। लेकिन अब उस बातसे मतलब ?"

उसका कंठ-स्वर स्थिर लेकिन बहुत ही रूखा था। देवदासने उसका मर्म नहीं समझा और कहा—मुझे माफ करो पारो, तब मैंने इतना नहीं समझा था।

"चुप रहो। वे सब बातें सुनना भी मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"जिस तरहसे भी होगा मैं माता-पिताको राजी कर लूँगा। केवल तुम—"

पार्वतीने देवदासके मुखकी ओर एक बार तीक्ष्ण दृष्टिसे देखकर कहा—तुम्हारे माता-पिता हैं, मेरे नहीं हैं ? उनके राजी होने या न होनेकी जरूरत नहीं है ?

देवदासने लज्जित होकर कहा—हाँ, हैं क्यों नहीं पारो ? लेकिन उन्हें तो इससे इन्कार नहीं है। केवल तुम—

"तुमने कैसे जाना कि उनका अमत नहीं है,—बिल्कुल अमत है।"

देवदासने हँसनेका व्यर्थ प्रयास करते हुए कहा—नहीं जी, उनकी जरा भी असम्मति नहीं है—इसे मैं अच्छी तरह जानता हूँ। केवल तुम—

पार्वती बीचमें ही तीव्र कंठसे बोल उठी—केवल मैं ! तुम्हारे साथ ? छीः—

पलक मारते ही देवदासकी दोनों आँखें आगकी तरह जल उठीं। उसने कठोर स्वरसे कहा—पार्वती, क्या तुम मुझे भूल गईं ?

पहले पार्वती कुछ ठिठकी परन्तु फिर उसने तुरन्त ही अपने आपको सँभालकर शान्त कठिन स्वरमें उत्तर दिया—नहीं, भूलूँगी क्यों ? मैं लड़कपनसे तुम्हें देखती आ रही हूँ। जबसे होश सँभाला हैं, तभीसे तुमसे डरती आ रही हूँ। सो क्या इसीलिए तुम मुझे भय दिखलानेके लिए आये हो ? लेकिन मुझको भी क्या तुम नहीं पहचानते ?

यह कहकर वह निर्भीक भावसे दोनों आँखें सामने करके खड़ी हो गई।

पहले तो देवदासके मुँहसे कोई बात नहीं निकली। फिर कुछ देर बाद उसने कहा—सदासे मुझसे भय ही करती आ रही हो ? और कुछ भी नहीं ?

पार्वतीने दृढ़ स्वरसे कहा—नहीं, और कुछ भी नहीं।

"सच कहती हो ?"

"हाँ, सच ही कहती हूँ। तुमपर मेरी जरा भी श्रद्धा नहीं है। मैं जिनके पास जा रही हूँ वे धनवान्, बुद्धिमान्, शान्त और स्थिर हैं। वे धार्मिक हैं। मेरे माता-पिता मेरी मंगल-कामना करते हैं। इसीलिए वे मुझे तुम्हारे जैसे अज्ञान, चंचल-चित्त और दुर्दान्त व्यक्तिके हाथ कभी किसी तरह न सौंपेंगे। तुम रास्ता छोड़ दो।"

पहले तो देवदासने कुछ इधर-उधर किया, एक बार मानों रास्ता छोड़नेके लिए भी वह तैयार हो गया। लेकिन फिर तुरन्त ही दृढ़तापूर्वक मुँह उठाकर बोला—इतना अहंकार !

पार्वतीने कहा—नहीं क्यों होगा ? तुम अहंकार कर सकते हो, मैं नहीं कर सकती ? तुममें रूप है, गुण नहीं हैं; मुझमें रूप है और गुण भी हैं। तुम लोग बड़े आदमी हो, लेकिन मेरे पिता भी भीख नहीं माँगते फिरते। इसके सिवा आगे चलकर मैं स्वयं भी तुम लोगोंकी अपेक्षा किसी अंशमें हीन न रहूँगी, यह जानते हो ?

देवदास अवाक् हो गया।

पार्वती फिर कहने लगी—तुम सोच रहे हो कि तुम मेरी बहुत अधिक क्षति कर सकोगे। अधिक न सही परन्तु कुछ क्षति अवश्य कर सकते हो, यह मैं जानती हूँ। अच्छा, वही करो। खाली मेरा रास्ता छोड़ दो।

देवदासने हत-बुद्धि होकर पूछा—क्षति किस प्रकार पहुँचाऊँगा ?

पार्वतीने तुरन्त ही उत्तर दिया—मेरी बदनामी करके। अच्छा, जाओ बदनामी ही कर लेना।

यह सुनकर देवदास वज्राहतकी तरह देखने लगा। उसके मुँहसे केवल इतना ही निकला—मैं तुम्हारी बदनामी करूँगा ?

पार्वतीने विषकी तरह क्रूर हँसी हँसकर कहा—जाओ, आखिरी वक्त मेरे नामपर एक कलंककी घोषणा कर दो। उस रातको मैं तुम्हारे पास अकेली गई थी, यही बात चारों तरफ सबपर जाहिर कर दो। इससे तुम्हें बहुत कुछ सन्तोष हो जायगा।

यह कहते कहते पार्वतीके दर्पित क्रुद्ध ओष्ठ-अधर काँपते काँपते रुक गये।

किन्तु देवदासके हृदयका भीतरी भाग, मारे क्रोध और अपमानके, अग्निके उत्पातकी तरह भीषण हो उठा। उसने अव्यक्त स्वरसे कहा—तुम्हारे नामपर मिथ्या कलंक लगाकर मैं अपने मनमें सन्तोष प्राप्त करूँगा ? और दूसरे ही क्षण बंसीकी मोटी मुठिया खूब जोरसे घुमाते हुए भीषण स्वरसे कहा, "सुनो पार्वती, इतना रूप रहना अच्छा नहीं है। इससे अहंकार बहुत बढ़ जाता है।" और इसके बाद उसने अपना स्वर कुछ धीमा करके कहा—देखती नहीं हो कि चन्द्रमामें बहुत अधिक रूप है, इसीलिए उसपर काला दाग है और कमल इतना श्वेत है, इसीलिए उसपर भौंरा बैठा रहता है। आओ, तुम्हारे भी मुँहपर कुछ कलंकका चिह्न लगा दूँ।

देवदासके सहनेकी सीमाका अतिक्रमण हो चुका था। उसने दृढ़ मुट्ठीसे बंसीकी मुठिया घुमाकर पार्वतीके सिरपर खूब जोरसे आघात किया जिसके साथ ही साथ उसके कपालका बाईं भौंहसे नीचे तकका भाग चिर गया। पलक मारते ही उसका सारा मुँह खूनसे तर हो गया।

पार्वती जमीनपर लोट पड़ी और बोली—अरे देव भइया, यह तुमने क्या किया !

देवदासने बंसीको टुकड़े टुकड़े करके जलमें फेंकते हुए बहुत ही स्थिर भावसे उत्तर दिया—अधिक कुछ नहीं, बहुत मामूली, सिर्फ जरा-सा कट गया है।

देवदासने अपने पतले कुरतेमेंसे थोड़ी-सी धज्जी फाड़कर और उसे जलमें भिगोकर पार्वतीके सिरपर बाँधते हुए कहा—पारो, इसमें डरकी क्या बात है ! यह चोट जल्दी ही अच्छी हो जायगी, खाली दाग रह जायगा। अगर कभी कोई

इस बारेमें पूछे तो कोई झूठ बात बनाकर कह देना; नहीं तो, सच बोलकर अपने कलंककी बात स्वयं ही प्रकट कर देना।

"अरी मइया री!"

"छीः पारो, ऐसा मत करो। इस अन्तिम बिदाईके दिन केवल थोड़ी-सी याद रखनेके लिए एक चिह्न बनाये जाता हूँ। ऐसा चाँद-सा मुखड़ा बीच-बीचमें शीशेमें देखोगी तो?"

इतना कहकर देवदास उत्तरकी अपेक्षा किये बिना ही वहाँसे चलनेके लिए तैयार हो गया।

पार्वतीने आकुल होकर रोते हुए कहा—अरे देव भइया—

देवदास लौट पड़ा। उसकी आँखके कोनोंमें एक बूँद जल था। वह बहुत ही स्नेहपूर्ण स्वरमें बोला—क्या है पारो?

"देखो, किसीसे कहना मत।"

देवदास जरा झुककर खड़ा हो गया और पार्वतीके बालोंपर अपना ओष्ठाधर लगाकर बोला—छीः पारो, तुम क्या मेरे लिए कोई पराई हो? तुम्हें याद नहीं है कि जब तुम लड़कपनमें शरारत करती थीं तब मैंने कितने बार तुम्हारे कान मले हैं?

"देव भइया, तुम मुझे माफ करो।"

"नहीं, तुम्हें यह कहनेकी जरूरत नहीं। पारो, क्या तुम सचमुच ही मुझे एकदम भूल गई हो? मैंने कब तुमपर क्रोध किया है और तुम्हें माफ नहीं किया है?"

"देव भइया—"

"पार्वती, तुम तो जानती हो कि मैं बहुत ज्यादा बातें नहीं कर सकता। बहुत सोच-समझकर भी कोई काम नहीं कर सकता। जब जो मनमें आता है, वही कर बैठता हूँ।"

इसके बाद देवदासने पार्वतीके सिरपर हाथ रखकर उसे आशीर्वाद देते हुए कहा—तुमने अच्छा ही किया है। तुम तो शायद मेरे पास रहकर सुख न पातीं; लेकिन तुम्हारे इस देव भइयाको तो अक्षय स्वर्गवास ही मिलता।

इसी समय घाटपर दूसरी तरफसे कोई आ रहा था। पार्वती धीरे धीरे उठकर जलमें उतरी और देवदास वहाँसे चला गया। जब पार्वती लौटकर घर आई, तब दिन ढल गया था। दादीने बिना उसकी ओर अच्छी तरह देखे ही पूछा—क्यों बेटी, क्या नया तालाब खोदकर पानी लाई है?

लेकिन उनके मुँहकी बात मुँहमें ही रह गई। पार्वतीके मुखकी ओर देखते ही वे चिल्ला उठीं—अरे बापरे! यह सर्वनाश कैसे हुआ?

घावमेंसे उस समय भी खून बह रहा था। वस्त्र-खण्ड प्रायः सबका सब खूनसे लाल हो गया था। दादीने रोते हुए कहा—अरी मइया री! पार्वती, तेरा तो ब्याह है!

पार्वतीने स्थिर भावसे कलसी उतारकर रख दी। उसकी माँने आकर रोते हुए पूछा—पारो, यह सर्वनाश कैसे हुआ?

पार्वतीने सहज भावसे उत्तर दिया—घाटपर पैर फिसल जानेसे गिर पड़ी थी। ईंट लग जानेसे माथा कट गया है।

इसके बाद सब मिलकर शुश्रूषा करने लग गईं। देवदासने ठीक ही कहा था—चोट बहुत ज्यादा नहीं थी। चार ही पाँच दिनमें घाव सूख गया। और भी आठ-दस दिन इसी तरह बीत गये। इसके बाद एक दिन रातको हाथीपोता गाँवके जमींदार श्रीयुत भुवनमोहन वर बनकर विवाह करने आये। उत्सवमें कुछ अधिक धूमधाम नहीं हुई। भुवन बाबू निर्बोध तो थे ही नहीं, प्रौढ अवस्थामें दूसरा ब्याह करनेके लिए आये थे, इसलिए उन्होंने छोकरा बनना ठीक नहीं समझा।

वरकी अवस्था चालीस बरससे नीचे नहीं, कुछ ऊपर ही है। गौर वर्ण, मोटे-ताजे, नन्दके दुलारे श्रीकृष्णकी तरहका शरीर, कच्ची-पक्की मोंछें, सिरपर सामनेकी ओर थोड़ी दूरके बाल उड़े हुए। वरको देखकर कोई तो हँसा और कोई चुप हो रहा। भुवन बाबू शान्त और गम्भीर मुखसे मानों एक अपराधीकी तरह विवाह-मंडपमें आकर खड़े हुए। छोटी अवस्थाके वरोंके कान जिस तरह मले जाते हैं और उनपर जो तरह-तरहके अत्याचार होते हैं, वे सब उनके साथ बिलकुल नहीं हुए। कारण, ऐसे विज्ञ और गम्भीर व्यक्तिके कान मलनेके लिए किसीका हाथ उठा ही नहीं। शुभ दृष्टिकी रसमके समय पार्वती कुछ कसमसाती हुई देखकर रह गई। उसके होठोंके कोनेपर हँसीकी एक रेखा थी। भुवन बाबूने लड़कोंकी तरह दृष्टि नीचे कर ली। मुहल्ले-टोलेकी स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। चक्रवर्ती महाशय इधर-उधर दौड़-धूप करने लगे। बहुदर्शी जमींदार नारायण मुकर्जी लड़कीवालोंकी तरफसे घरके मालिक बने हैं। पक्के आदमी ठहरे, इसलिए उन्होंने किसी तरफसे किसी बातकी त्रुटि न होने दी। शुभ कर्म बहुत ही व्यवस्थाके साथ समाप्त हो गया।

दूसरे दिन सबेरे चौधरी महाशयने जेवरोंका एक बाक्स निकालकर दिया।

पार्वतीके सर्वाङ्गमें वे सब झलमला उठे। पार्वतीकी माताने यह देखकर अपने आँचलसे आँखोंके कोने पोंछ लिये। पास ही जमींदार-पत्नी भी खड़ी थीं। उन्होंने स्नेहपूर्वक तिरस्कार करते हुए कहा—देखो बहन, इस समय रोककर अकल्याण मत करना।

सन्ध्यासे कुछ पहले मनोरमा पार्वतीको खींचकर एक निर्जन कोठरीमें ले गई और वहाँ उसे आशीर्वाद देती हुई बोली—जो हुआ, अच्छा ही हुआ। अब देखना कि कितने सुखसे रहती हो।

पार्वतीने कुछ हँसकर कहा—हाँ, सुखसे ही रहूँगी। कल यमके साथ थोड़ा-सा परिचय हो गया है कि नहीं!

" हैं! यह कैसी बात?"

" समय आनेपर देख लोगी।"

इसपर मनोरमाने कुछ दूसरी बात छेड़ दी। कहा—जी चाहता है कि एक बार देवदासको बुला लाऊँ और यह सोनेकी प्रतिमा दिखलाऊँ।

पार्वती चौंक पड़ी।—ला सकोगी बहिन? क्या एक बार बुलाकर नहीं लाया जा सकता?

उसके कंठका स्वर सुनकर मनोरमा सिहिर उठी। उसने पूछा—क्यों पार्वती?

पार्वतीने अपने हाथका कड़ा घुमाते हुए अन्यमनस्क भावसे कहा—एक बार उनके चरणोंकी धूल अपने मस्तकपर लगाऊँगी—आज मैं जा रही हूँ न!

मनोरमाने पार्वतीको खींचकर गलेसे लगा लिया और तब दोनों मिलकर खूब रोईं। सन्ध्या हो गई। घरमें अँधेरा छा गया। दादीने बाहरसे दरवाजेपर धक्का देते हुए कहा—अरे पारो, मनो, तुम सब जरा बाहर आओ।

उसी रातको पार्वती अपने स्वामीके घर चली गई।

---

## नवाँ परिच्छेद

और देवदास? वह रात उसने कलकत्तेके ईडन गार्डनकी एक बेंचके ऊपर बैठकर बिता दी। यह बात नहीं है कि उसे बहुत अधिक मानसिक कष्ट हो रहा था, या यातनासे उसका मर्म भेद हो रहा था। न जाने कैसी एक शिथिल उदासीनता धीरे धीरे उसके हृदयमें जमा हो रही थी। यदि निद्राके समय सहसा

पक्षाघात हो जाय तो जिस तरह नींद टूटनेपर उस अंगपर ढूँढ़नेपर भी अपना कोई अधिकार नहीं पाया जाता और विस्मित तथा स्तम्भित मन जल्दीसे निश्चित नहीं कर पाता कि उसका आ-जन्म संगी और सदाका विश्वस्त अंग उसके आवाहन करनेपर भी क्यों कोई उत्तर नहीं देता और उसके बाद धीरे धीरे यह बात समझमें आने लगती है,—धीरे धीरे यह ज्ञान उत्पन्न होने लगता है कि अब यह अंग हमारा नहीं रह गया है, ठीक उसी तरह देवदास भी समझता जा रहा था कि मेरे संसारको अकस्मात् पक्षाघात हो गया है और अब उससे सदाके लिए मेरा विच्छेद हो गया है । अब उसपर मिथ्या क्रोध और मान करना शोभा न देगा। पुराने अधिकारकी बात सोचता भी भूल करना होगा। उस समय सूर्योदय हो रहा था। देवदास उठकर खड़ा हो गया और सोचने लगा कि कहाँ जाऊँ ? अचानक उसे अपना कलकत्तेवाला बासा याद आ गया। वहाँ चुन्नीलाल है। चलने लगा । रास्तेमें उसने दो बार धक्का खाया। ठोकर खाकर उसने अपनी उँगली लहू-लुहान कर ली। लड़खड़ाकर एक आदमीके ऊपर गिर रहा था, उसने शराबी समझकर धकेल दिया। इस प्रकार घूमता घूमता दिनके अन्तमें दरवाजेपर आ पहुँचा। उस समय चुन्नीबाबू सज-धजकर बाहर घूमनेके लिए निकल रहे थे—अरे क्या देवदास हैं ?

देवदास चुपचाप देखता रहा।

“ कब आये ? तुम्हारा मुँह सूखा हुआ है। स्नान, भोजन आदि कुछ नहीं हुआ है—अरे यह क्या ? यह क्या ? ”

देवदास रास्तेपर ही बैठा जा रहा था। चुन्नीलाल हाथ पकड़कर अन्दर ले गया। अपने पलंगपर बैठाकर उसने शान्त करके पूछा—देवदास, आखिर बात क्या है ?

“ कल घरसे आया हूँ । ”

“ कल ? तो फिर दिन-भर कहाँ रहे ? और रात-भर कहाँ रहे ? ”

“ ईडन गार्डनमें। ”

“ क्या पागल हो गये हो ? हुआ क्या है, बतलाओ तो सही । ”

“ सुनकर क्या करोगे ? ”

“ न बतलाओ। अच्छा पहले खा-पी लो। तुम्हारा असबाब कहाँ है ? ”

“ कुछ भी साथ नहीं लाया। ”

“ अच्छा जाने दो। चलो, पहले खा लो। ”

उस समय चुन्नीलालने देवदासको जबरदस्ती कुछ खिला-पिलाकर और अपनी शय्यापर सोनेका आदेश देकर दरवाजा बन्द करते हुए कहा—जरा सोनेकी कोशिश करो। मैं रातको आकर तुम्हें उठा दूँगा।

यह कहकर चुन्नीलाल उस समय चला गया। रातको दस बजेके लगभग लौटकर उसने देखा कि देवदास उसके बिछौनेपर गहरी नींदमें सो रहा है। उसे जगाये बिना स्वयं एक कम्बल खींचकर और जमीनपर चटाई बिछाकर वह सो रहा। सारी रात बीत गई, पर देवदासकी नींद नहीं खुली। यहाँ तक कि सवेरा होनेपर भी वह नहीं जागा। दिनके दस बजे वह उठ बैठा और बोला, "चुन्नीबाबू, तुम कब आये?"

"बस, अभी आया हूँ। तुम्हें किसी तरहकी तकलीफ तो नहीं हुई?"

"नहीं, बिलकुल नहीं।"

देवदासने कुछ देरतक उसके मुँहकी ओर देखकर कहा—चुन्नी बाबू, मेरे पास कुछ भी नहीं है। क्या मेरा प्रतिपालन करोगे?

चुन्नीलाल हँस पड़ा। वह जानता था कि देवदासके पिता बहुत बड़े धनवान् हैं। इसीलिए हँसकर बोला—मैं प्रतिपालन करूँगा! अच्छी बात है। जब तक तुम्हारी इच्छा हो, यहाँ रहो। कोई चिन्ताकी बात नहीं है।

"चुन्नी बाबू, तुम्हारी आमदनी कितनी है?"

"भाई, मेरी आमदनी बहुत ही मामूली है। घरपर कुछ जमीन-जायदाद है। उसे अपने बड़े भाईके पास गिरवी रखकर यहाँ रहता हूँ। वे हर महीने सत्तर रुपयेके हिसाबसे मेरे पास भेज देते हैं। इससे तुम्हारा और मेरा खर्च मजेमें चल जायगा।"

"तुम घर क्यों नहीं जाते?"

चुन्नीलालने कुछ मुँह फेरकर कहा—इसमें बहुत-सी बातें हैं।

देवदासने फिर और कुछ नहीं पूछा। कुछ देर बाद भोजनके लिए पुकार हुई। तब दोनों स्नान और भोजन आदि समाप्त करके फिर कमरेमें आ बैठे। चुन्नीलालने पूछा—क्यों देवदास, पिताके साथ कुछ झगड़ा किया है?

"नहीं।"

और किसीके साथ?"

देवदासने फिर उसी प्रकार कह दिया—नहीं।

इसके बाद चुन्नीलालको सहसा एक और बात याद हो आई। उसने कहा—

ओहो ! तुम्हारा तो अभीतक ब्याह ही नहीं हुआ।

इसी समय देवदास दूसरी ओर मुँह फेरकर लेट गया। थोड़ी देरमें चुन्नीलालने देखा कि देवदास सो गया है। इस प्रकार सोते सोते और भी दो दिन बीत गये। तीसरे दिन सवेरे देवदास स्वस्थ होकर उठ बैठा। जान पड़ा कि उसके मुखपरसे वह काली छाया मानों बहुत कुछ दूर हो गई है। चुन्नीलालने पूछा—आज शरीर कैसा है ?

" जान पड़ता है कि बहुत कुछ अच्छा है। अच्छा, चुन्नी बाबू, रातको तुम कहाँ जाते हो ? "

आज चुन्नीलाल कुछ लज्जित हुआ। बोला—हाँ, सो जाता हूँ, लेकिन उस बातका जिक्र क्यों करते हो ? अच्छा, आजकल तुम कालेज क्यों नहीं जाते ?

" लिखना-पढ़ना छोड़ दिया है। "

" अरे, ऐसा कहीं होता है ! दो महीने बाद तुम्हारी परीक्षा है। तुम्हारी पढ़ाई भी बुरी नहीं हुई है। इस बार परीक्षा क्यों नहीं दे देते ? "

" नहीं, पढ़ना छोड़ दिया है। "

चुन्नीलाल चुप हो गया। देवदासने फिर पूछा—कहाँ जाते हो ? मुझे नहीं बतलाओगे ? मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।

चुन्नीलालने देवदासके मुखकी ओर देखकर कहा—देवदास, तुम क्या जानो, मैं कोई अच्छी जगह नहीं जाता।

देवदासने मानों मन ही मन कहा—अच्छी और बुरी व्यर्थकी बात है।—चुन्नी बाबू, मुझे अपने साथ न ले चलोगे ?

" हाँ, ले तो चल सकता हूँ। लेकिन तुम वहाँ मत जाओ। "

" नहीं, मैं जरूर चलूँगा। अगर अच्छा न लगेगा तो, न हो, फिर न जाऊँगा। लेकिन तुम तो सुखकी आशासे नित्य ही उन्मुख हुए रहते हो—कुछ भी हो, चुन्नी बाबू, मैं अवश्य चलूँगा। "

चुन्नीलाल मुँह फेरकर कुछ हँसा और मन ही मन बोला, मेरी दशा ! फिर मुखसे बोला—अच्छा भाई, चलना।

तीसरे पहर धर्मदास सब सामान लेकर आ पहुँचा। देवदासको देखकर वह रोने लगा और बोला—देव भइया, आज तीन-चार दिनसे माँ कितनी रो रही हैं—

" क्यों भला ? "

" तुम बिना कुछ कहे-सुने क्यों चले आये ? "

यह कहकर उसने एक पत्र निकाला और देवदासके हाथमें देकर कहा—यह माँकी चिट्ठी है।

चुन्नीलाल भीतरी बात जाननेके लिए उत्सुक होकर देखता रहा। देवदासने पत्र पढ़कर रख दिया। माँने घर आनेके लिए आदेश और अनुरोध किया है। घर-भरमें केवल वही ऐसी है जिसने देवदासके अचानक घरसे गायब हो जानेके कारणका कुछ अनुमान किया था। उसने धर्मदासके हाथ चोरीसे बहुतसे रुपये भी भेजे थे। धर्मदासने उन्हें देवदासके हाथमें देते हुए कहा—देव भइया, घर चलो।

"नहीं, मैं नहीं जाऊँगा। तुम लौट जाओ।"

रातको दोनों मित्र खूब सज-धजकर घरसे बाहर निकले। इन सब बातोंकी ओर देवदासकी प्रवृत्ति तो नहीं थी, लेकिन, चुनीलाल किसी तरह इस बातपर राजी ही नहीं हुआ कि बिलकुल मामूली कपड़े पहनकर चला जाय। रातके नौ बजेके समय किरायेकी एक गाड़ी चितपुरके एक दो मंजिले मकानके सामने आकर खड़ी हो गई। चुन्नीलालने देवदासका हाथ पकड़कर भीतर प्रवेश किया। मकान-मालकिनका नाम था चन्द्रमुखी। उसने आकर अभ्यर्थना की। अब तो देवदासका सारा शरीर जल उठा। वह स्वयं ही नहीं जानता था कि इधर कई दिनोंसे वह बिलकुल अज्ञात रूपसे नारी-शरीरकी छायासे भी विमुख हो रहा था। चन्द्रमुखीको देखते ही उसके हृदयके अन्दर छिपी हुई घोर घृणा दावाग्निकी भाँति प्रज्ज्वलित हो उठी। उसने चुन्नीलालकी ओर देखकर और भौंहें चढ़ाकर कहा—चुन्नी बाबू, तुम मुझे किस कम्बख्त जगहमें ले आये?

उसका तीव्र स्वर और दृष्टि देखकर चन्द्रमुखी और चुन्नीलाल दोनों ही हत-बुद्धि हो गये। दूसरे ही क्षण चुन्नीलालने अपने आपको सँभालकर देवदासका एक हाथ पकड़कर कोमल स्वरसे कहा—चलो चलो, अन्दर चलकर बैठें।

देवदासने कोई उत्तर नहीं दिया। वह कमरेके अन्दर जाकर जमीनपर बिछे हुए बिछौनेपर बहुत ही दुःखित भावसे सिर झुकाकर बैठ गया। चन्द्रमुखी भी चुपचाप पास ही बैठ गई। नौकरानी चाँदीके हुक्केपर तमाखू चढ़ाकर ले आई। देवदासने उसे छुआ भी नहीं। चुन्नीलाल भी मुँह भारी किये चुपचाप बैठा रहा। नौकरानीकी समझमें ही न आया कि अब मैं क्या करूँ, इसलिए अन्तमें वह चन्द्रमुखीके ही हाथमें हुक्का देकर चली गई। उसके दो एक कश खींचनेके समय देवदासने तीक्ष्ण दृष्टिसे उसके मुखकी ओर देखते रहकर सहसा बहुत ही घृणाके साथ कहा— कैसी असभ्य है! और देखनेमें कैसी श्रीहीन मालूम होती है!

इससे पहले चन्द्रमुखीको कोई कभी बातचीतमें छका नहीं सका था। उसे अप्रतिभ करना बहुत ही कठिन काम था। परन्तु देवदासकी यह आन्तरिक घृणा-पूर्ण सरल तथा कठोर उक्ति उसके अन्तःकरणके भीतरी भाग तक जा पहुँची। क्षण-भरके लिए वह हत-बुद्धि-सी हो गई। इसके कुछ ही क्षण बाद दो-तीन बार हुक्केकी गुड़गुड़ाहटका शब्द तो हुआ, लेकिन चन्द्रमुखीके मुखसे धूआँ बाहर नहीं निकला। तब चुन्नीलालके हाथमें हुक्का देकर उसने एक बार देवदासके मुखकी ओर देखा। इसके बाद वह चुपचाप बैठी रही। तीनों ही आदमी चुप थे। सिर्फ हुक्केकी गुड़गुड़ाहट हो रही थी। लेकिन वह भी मानों बहुत ही डरते डरते। मित्रमंडलीमें कोई तर्क उठनेपर जब अचानक व्यर्थका झगड़ा हो जाता है और सब लोग चुपचाप अपने मन ही मन फूलते रहते हैं और क्षुब्ध अन्तःकरणसे झूठ-मूठ कहते रहते हैं—'यही तो!' उसी प्रकार वे तीनों ही मन ही मन कह रहे थे—यही तो! यह बात कैसे हो गई!

जिस प्रकार भी हो, तीनोंमेंसे किसीको भी शान्ति नहीं मिल रही थी। चुन्नीलाल हुक्का रखकर नीचे उतर गया। जान पड़ता है, उसे और कोई काम ढूँढ़नेपर भी नहीं मिला इसीलिए। कमरेमें दोनों आदमी बैठे रहे। देवदासने सिर उठाकर पूछा—तुम रुपये लेती हो?

चन्द्रमुखी सहसा कोई उत्तर न दे सकी। आज उसकी अवस्था चौबीस वर्षकी है। इन नौ-दस वर्षोंमें कितने ही विभिन्न प्रकृतिवाले लोगोंके साथ उसका घनिष्ठ परिचय हुआ है; लेकिन, ऐसा विलक्षण आदमी उसने एक दिन भी नहीं देखा। उसने कुछ इधर-उधर करके कहा—आपके चरणोंकी धूल जब मेरे मकानमें आकर पड़ी है—

देवदासने बात समाप्त नहीं करने दी, बीचमें ही वह बोल उठा—चरणोंकी बात नहीं पूछता। रुपये लेती हो न?

"हाँ, लेती क्यों नहीं। न लूँ तो हम लोगोंका काम कैसे चले?"

"बस, रहने दो। ज्यादा नहीं सुनना चाहता।"

यह कहकर देवदासने अपने जेबमें हाथ डालकर एक नोट निकाला और उसे चन्द्रमुखीके हाथमें देते हुए चलनेको कदम बढ़ाया। यह भी नहीं देखा कि कितने रुपयेका नोट दिया है।

चन्द्रमुखीने विनीत भावसे कहा—क्या इतनी जल्दी चले जायँगे?

देवदासने कोई उत्तर नहीं दिया, वह बाहर बारामदेमें आकर खड़ा हो गया।

चन्द्रमुखीके मनमें एक बार आया कि ये रुपये लौटा दूँ लेकिन न जाने कैसे एक तीव्र संकोचके करण वह लौटा न सकी। जान पड़ता है उसे कुछ भय भी हुआ। इसके सिवा उन लोगोंको अनेक प्रकारकी लांछनायें, फटकारें और अपमान आदि सहनेका अभ्यास भी होता है, इसीलिए वह निर्वाक् निष्पन्द होकर चौखट पकड़े खड़ी रही। देवदास सीढ़ियोंसे नीचे उतर गया।

सीढ़ीपर ही चुन्नीलालसे भेंट हो गई। उसने चकित होकर पूछा—देवदास, कहाँ जा रहे हो?

"बासेकी तरफ जा रहा हूँ।"

"यह क्यों?"

देवदास और भी दो-तीन सीढ़ियाँ उतर गया।

चुन्नीलालने कहा—चलो, मैं भी चलता हूँ।

देवदासने पास आकर और उसका हाथ पकड़कर कहा—चलो।

"जरा ठहरो। जरा ऊपर हो आऊँ।"

"नहीं। मैं जाता हूँ, तुम बादमें आ जाना।"

देवदास चला गया।

चुन्नीलालने ऊपर आकर देखा कि चन्द्रमुखी तब भी उसी प्रकार चौखट पकड़े खड़ी है।

उसे देखकर बोली—तुम्हारे दोस्त चले गये?

"हाँ।"

चन्द्रमुखीने अपने हाथका नोट दिखलाकर कहा—यह देखो। लेकिन अगर ठीक समझते हो तो लेते जाओ। अपने दोस्तको लौटा देना।

चुन्नीलालने कहा—वह अपनी इच्छासे दे गया है। मैं वापस क्यों ले जाऊँ?

इतनी देर बाद चन्द्रमुखी कुछ हँस सकी। लेकिन उस हँसीमें भी आनन्द नहीं था। बोली—अपनी इच्छासे नहीं, बल्कि हम लोग रुपये लेती हैं, इससे नाराज़ होकर दे गये हैं। क्यों चुन्नी बाबू, क्या यह आदमी पागल है?

"नहीं, बिलकुल नहीं। लेकिन हाँ, ऐसा मालूम होता है कि आज कई दिनसे उसका मिजाज ठीक नहीं है।"

"कुछ जानते हो क्यों मिजाज ठिकाने नहीं है?"

"नहीं जानता। शायद घरपर कुछ लड़ाई-झगड़ा हुआ है।"

"तो यहाँ लाये क्यों?"

" मैं तो नहीं लाना चाहता था, वह खुद ही जबरदस्ती आया था।"

इस बार चन्द्रमुखीको सचमुच ही बहुत आश्चर्य हुआ। पूछा—खुद ही जबरदस्ती आये थे? सब कुछ जान-बूझकर?

चुन्नीलालने कुछ सोचकर कहा—और नहीं तो क्या, सब कुछ तो जानता है। मैं कुछ धोखा देकर थोड़े ही लाया था।

चन्द्रमुखी पहले तो कुछ देर तक चुप रही। फिर न जाने क्या सोचकर बोली—चुन्नी बाबू, तुम मेरा एक उपकार करोगे?

" क्या?"

" तुम्हारे मित्र कहाँ रहते हैं?"

" मेरे पास ही।"

" उन्हें फिर किसी दिन यहाँ ला सकते हो?"

" मालूम होता है कि नहीं ला सकूँगा। इससे पहले भी वह कभी ऐसी जगह नहीं आया और शायद अब आगे भी न आवेगा। लेकिन उसे क्यों बुलाना चाहती हो?"

चन्द्रमुखीने कुछ म्लान हँसी हँसकर कहा—चुन्नी बाबू, जैसे भी हो, एक बार भुलाकर उन्हें फिर ले आओ।

चुन्नीलाल हँसा। उसने आँख दबाकर कहा—क्या फटकार खाकर प्रेम उत्पन्न हो गया है?

चन्द्रमुखी भी हँसी। बोली—बिना देखे ही नोट देकर चले जाते हैं,—इसे नहीं समझे?

चुन्नीलाल चन्द्रमुखीको बहुत-कुछ पहचान गया था। सिर हिलाकर बोला—नहीं नहीं। नोट-फोटकी लालची और ही होती हैं। तुम उनमेंसे नहीं हो। लेकिन असल बात क्या है, कहो तो?

चन्द्रमुखीने कहा—सचमुच ही कुछ मोह हो गया है।

चुन्नीको विश्वास नहीं हुआ। हँसकर बोला—बस इन्हीं पाँच मिनटोंके अन्दर?

अब चन्द्रमुखी भी हँसने लगी। बोली—उसे होने दो। जब उनका मन ठिकाने हो, तब फिर एक बार लाना, उन्हें फिर एक बार देखूँगी। ले आओगे न?

" क्या जाने!"

" तुम्हें मेरे सिरकी कसम।"

" अच्छा, देखा जायगा।"

# दसवाँ परिच्छेद

पार्वतीने आकर देखा कि उसके स्वामीका मकान बहुत बड़ा है लेकिन वह नये साहबी फैशनका नहीं, पुराने ढंगका है। मरदाना महल, जनाना महल, पूजाका दालान, नाट्य-मन्दिर, अतिथिशाला, कचहरी, तोशाखाना और बहुतसे दास तथा दासियाँ हैं। पार्वती अवाक् हो गई। उसने सुना था कि स्वामी बहुत बड़े आदमी हैं, जमींदार हैं। लेकिन इतना नहीं समझा था। अभाव केवल आदमियोंका है। आत्मीय कुटुम्बिनी प्रायः कोई भी नहीं है। इतना बड़ा जनाना महल है, लेकिन आदमियोंसे खाली है। पार्वती अभी ब्याहकर आई हुई लड़की थी, फिर भी एकदमसे गृहिणी बन गई। उसे वरण करके घरके अन्दर लानेके लिए एक बूढ़ी बूआ थी। उसके सिवा घरमें केवल दास-दासियोंका ही दल था।

सन्ध्यासे पहले एक सुश्री और सुन्दर बीस वर्षके युवकने प्रणाम करके और पास खड़े होकर कहा—माताजी, मैं आपका बड़ा लड़का हूँ।

पार्वतीने घूँघटमेंसे ही उसकी ओर जरा-सा देखा, पर कुछ कहा नहीं। उसने फिर प्रणाम करके कहा—माताजी, मैं आपका बड़ा लड़का हूँ। प्रणाम करता हूँ।

इस बार पार्वतीने अपना घूँघट मस्तक तक पीछे हटाकर कोमल स्वरसे कहा—आओ बेटा, बैठो।

लड़केका नाम महेन्द्र था। वह कुछ देर तक अवाक् होकर पार्वतीके मुखकी ओर देखता रहा। इसके बाद पास ही बैठ गया और विनीत स्वरमें कहने लगा—आज दो बरस हुए, हम अपनी माँको खो बैठे हैं। इन दो बरसोंसे दुःख और कष्टमें ही हम लोगोंके दिन बीते हैं। माँ, आज तुम आ गईं। आशीर्वाद दीजिए जिससे अब हम लोग सुखसे रहें।

पार्वतीने बहुत ही सहज स्वरमें बातें कीं। कारण, एकदम गृहिणी बन जानेपर बहुत-सी बातें जानने और कहनेकी आवश्यकता होती है। लेकिन सम्भव है कि वह कहानी बहुत-से लोगोंको कुछ अस्वाभाविक जान पड़े। पर जिन लोगोंने पार्वतीको कुछ ज्यादा अच्छी तरह पहचाना है, वे देखेंगे कि अवस्थाके इन अनेकों प्रकारके परिवर्तनोंने पार्वतीको उसकी उम्रकी अपेक्षा बहुत-कुछ परिपक्व कर दिया है। इसके सिवा व्यर्थकी लज्जा-शरम या जड़ता-संकोच उसमें कभी था ही नहीं। उसने पूछा—क्यों बेटा, मेरे और सब लड़के-लड़कियाँ कहाँ हैं?

महेन्द्रने कुछ हँसकर कहा—बतलाता हूँ। तुम्हारी बड़ी लड़की और मेरी छोटी बहन अपनी ससुरालमें है। मैंने चिट्ठी लिखी थी, लेकिन यशोदा किसी तरह न आ सकी।

पार्वतीने दुःखित होकर पूछा—आ नहीं सकी, या जान-बूझकर ही नहीं आई?

महेन्द्रने कुछ लज्जित होकर कहा—माँ, यह ठीक नहीं मालूम।

लेकिन उसकी बातसे और मुखके भावसे पार्वतीने समझ लिया कि यशोदा कुछ नाराज है और इसीलिए नहीं आई। फिर पूछा—और मेरा छोटा लड़का?

महेन्द्रने उत्तर दिया—वह जल्दी ही आवेगा, कलकत्तेमें है। परीक्षा होते ही आ जायगा।

भुवन चौधरी स्वयं ही अपनी जमींदारीका काम-काज देखते हैं। इसके सिवा स्वयं ही नित्य अपने हाथोंसे शालिग्राम-शिलाकी पूजा करना, व्रत, नियम, उपवास करना तथा मंदिर और अतिथिशालाके साधु-संन्यासियोंकी परिचर्या करना आदि अनेक कामोंमें सवेरेसे रातके दस-ग्यारह बजे तकका उनका सारा समय बीत जाता था। नया विवाह होनेपर भी उनमें किसी प्रकारका नवीन आमोद या आह्लाद प्रकट नहीं हुआ। रातको किसी दिन वे अन्दर आते थे और किसी दिन नहीं आ सकते थे। आनेपर भी वे बहुत ही मामूली बातचीत करते थे। बहुत हुआ तो पलंगपर लेट जाते थे और गाव तकिया खींचकर आँखें बन्द करके कहते—तुम्हीं घरकी मालकिन हो, स्वयं ही सब कुछ देख-सुनकर समझ-बूझकर गृहस्थी चलाना।

पार्वती सिर हिलाकर कहती—अच्छा।

भुवन बाबू कहते—और देखो, ये सब लड़के-लड़कियाँ तुम्हारी ही हैं।

स्वामीकी लज्जा देखकर पार्वतीकी आँखोंके कोनेसे हँसी फूट निकलती थी। वे फिर हँसकर कहते—और देखो, यह महेन्द्र तुम्हारा बड़ा लड़का है। अभी हालमें इसने बी० ए० पास किया है। ऐसा अच्छा लड़का है, ऐसी दया-माया है! तनिक यत्न और आत्मीयता—

पार्वती हँसी रोककर कहती—हाँ, मैं जानती हूँ, वह मेरा बड़ा लड़का है।

"हाँ हाँ, जानोगी क्यों नहीं! ऐसा लड़का कभी किसीने कहीं देखा न होगा। और मेरी यशोमती, लड़की नहीं प्रतिमा है। वह अवश्य आवेगी। आवेगी क्यों नहीं, अपने बूढ़े बापको देखने न आवेगी? जब आवे, तब उसे—"

पार्वती पास आकर उनकी चाँदपर मृणाल-हस्त रखकर कोमल स्वरसे कहती—

तुम्हें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं। यशोदाको लानेके लिए मैं आदमी भेजूँगी,—और नहीं तो महेन्द्र स्वयं ही चला जायगा।

"वह जायगा?—जायगा? अच्छा! उसे बहुत दिनोंसे नहीं देखा। तुम आदमी भेजोगी?"

"हाँ, भेजूँगी क्यों नहीं। मेरी लड़की है, उसे बुलानेके लिए आदमी न भेजूँगी?"

उस समय वृद्ध महाशय मारे उत्साहके उठ बैठते। वे अपना और पार्वतीका सम्बन्ध भूलकर उसके सिरपर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए कहते—तुम्हारा भला होगा! मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम सुखी होगी,—भगवान् तुम्हें दीर्घायु करेंगे।

उसी समय अचानक न जाने और क्या क्या बातें वृद्धको स्मरण हो आतीं। फिर पलंगपर लेटकर आँखें बन्द करके मन ही मन कहते—बड़ी लड़की,—यह एक ही लड़की थी,—वह इसे बहुत चाहती थी—

उस समय कच्ची-पक्की मोंछके पाससे होकर आँखोंका एक बूँद जल तकियेपर आ पड़ता था। पार्वती उसे पोंछ देती थी। कभी कभी वह बहुत धीरेसे कहते—आहा, वे सभी आवेंगे। फिर एक बार सारा घर-बार चमक उठेगा,—खूब रौनक होगी। आहा, आगे कैसी बढ़िया गृहस्थी थी! लड़के थे, लड़की थी, घरवाली थी। खूब हो-हल्ला मचा रहता था। मानों नित्य ही दुर्गोत्सव रहता था। इसके बाद एक दिन सब निर्वापित हो गया। लड़के कलकत्ते चले गये, यशोदाको उसके ससुर आकर ले गये,—फिर अन्धकार श्मशान—

उसी समय फिर मोंछके दोनों ओरके अंश और तकिया भींगना शुरू हो जाता। पार्वती कातर होकर आँसू पोंछकर कहती—महेन्द्रका ब्याह क्यों नहीं कर दिया?

वृद्ध कहते—आहा, वह तो मेरे लिए बहुत ही सुखका दिन होता! मैंने वही तो सोचा था। लेकिन उसके मनकी बात कौन जाने! उसने जिद भी कैसी की,—किसी तरह भी ब्याह नहीं किया। तभी तो वृद्धावस्थामें,—जब सारा घर-बार खाँव खाँव करता था, भाग्यहीन घरकी तरह मलिन हो रहा था,—मानो लक्ष्मी छोड़कर चली गई हो,—किसी तरह कहीं कुछ प्रकाश दिखाई ही नहीं देता था,—यह—

ये बातें सुनकर पार्वतीको बहुत दुःख होता था। वह करुण स्वरसे हँसीका बहाना करके सिर हिलाकर कहती—तुम बूढ़े हुए तो मैं भी बहुत जल्दी बूढ़ी हो जाऊँगी। औरतोंको बूढ़ी होते क्या ज्यादा देर लगती है?

भुवन चौधरी उठकर बैठ जाते और उसकी ठोढ़ी पकड़कर चुपचाप बहुत देर

तक उसकी तरफ देखते रहते। कारीगर जिस तरह कोई प्रतिमा सजाकर, उसके सिरपर मुकुट पहनाकर, उसे दाहिने-बाएँ हिला-डुला बहुत देरतक देखता रहता है और कुछ गर्व और बहुत-सा स्नेह उस सुन्दर मुखके आस-पास एकत्र हो जाता है, ठीक वही दशा भुवन बाबूकी भी होती। किसी किसी दिन उनके मुखसे अस्फुट स्वरमें निकल पड़ता—हाय हाय, मैंने अच्छा नहीं किया—

"क्या अच्छा नहीं किया जी?"

"सोचता हूँ, तुम यहाँ सोहती नहीं—"

पार्वती हँसकर कहती—खूब सोहती हूँ। हम लोगोंके लिए भला सोहना न सोहना क्या!

वृद्ध महाशय फिर लेटकर मानो मन ही मन कहते—हाँ, सो मैं समझता हूँ,—समझता हूँ। लेकिन तुम्हारा भला होगा। भगवान् तुम्हें देखेंगे।

इस प्रकार प्रायः एक मास बीत गया। बीचमें एक बार चक्रवर्ती महाशय अपनी कन्याको लेनेके लिए आये, लेकिन पार्वती स्वयं ही अपनी इच्छासे नहीं गई। उसने पितासे कहा—बाबूजी, बहुत ही कच्ची अव्यवस्थित गृहस्थी है। और कुछ दिन ठहरकर आऊँगी।

वे इस तरह मुसकराये जिसमें पार्वती न लख सके और मन ही मन बोले—स्त्रियोंकी जाति ही ऐसी होती है!

उनके बिदा हो जानेपर पार्वतीने महेन्द्रको बुलाकर कहा—बेटा, तुम एक बार जाकर मेरी बड़ी लड़कीको ले आओ।

महेन्द्रने कुछ इधर उधर किया। वह जानता था कि यशोदा किसी तरह न आवेगी। उसने कहा—अगर बाबूजी एक बार जायँ तो अच्छा हो।

"छिः। यह क्या अच्छा दीखेगा? इससे अच्छा तो यह है कि हम दोनों माँ-बेटे चलकर उसे ले आवें।"

महेन्द्रको आश्चर्य हुआ—तुम चलोगी?

"हर्ज ही क्या है बेटा? मुझे इसमें कोई लज्जा नहीं है। यदि मेरे जानेसे यशोदा आवे, उसकी नाराज़गी दूर हो जाय, तो मेरा जाना क्या कोई बड़ी बात है?"

इसीसे महेन्द्र दूसरे दिन अकेला ही यशोदाको लानेके लिए चला गया। यह तो नहीं मालूम कि वहाँ जाकर उसने क्या कौशल किया, परन्तु चार दिनके बाद ही वह यशोदाको लेकर आ पहुँचा। उस दिन पार्वतीके अंगोंपर विचित्र, नये और बहुमूल्य अलंकार थे। अभी कुछ ही दिन पहले भुवन बाबूने कलकत्तेसे

मँगवा दिये थे। पार्वती आज वही सब पहनकर बैठी थी। यशोदा रास्तेमें मन ही मन क्रोध और अभिमानकी बहुत-सी बातोंकी आवृत्ति करती हुई आ रही थी। लेकिन नई बहूको देखकर वह एकदमसे अवाक् हो गई। विद्वेषकी वे सब बातें उसे याद ही नहीं आईं। केवल अस्फुट स्वरमें बोली—यही हैं!

पार्वती यशोदाका हाथ पकड़कर अन्दर ले गई। पास बिठाकर और हाथमें पंखा लेकर बोली—बेटी, अपनी माँसे कुछ नाराज़ हो?

यशोदाका मुख मारे लज्जाके लाल हो गया। इसके बाद पार्वती अपने वे सब अलंकार एक एक करके यशोदाको पहनाने लगी। विस्मिता यशोदाने कहा—यह क्या?

"कुछ नहीं, केवल तुम्हारी माँकी साध है।"

गहने पहनना यशोदाको कुछ बुरा नहीं मालूम हुआ: और जब वह सब गहने पहन चुकी तब उसके होठोंपर हँसीका आभास दिखाई दिया। उसके समस्त अंगोंमें अलंकार पहनाकर निराभरणा पार्वतीने कहा—बेटी, अपनी माँपर कुछ नाराज़ हो?

"नहीं नहीं, नाराज क्यों होने लगी? नाराज़गी कैसी?"

"और नहीं तो क्या बेटी, यह तुम्हारे पिताका घर है। बड़ा घर ठहरा, कितने ही नौकर-नौकरानियोंकी जरूरत होती है। मैं भी तो एक दासीके सिवा और कुछ नहीं हूँ। छीः बेटी, तुच्छ दास-दासियोंपर नाराज़ होना क्या तुम्हें शोभा देता है?"

यशोदा उमरमें तो बड़ी थी, लेकिन बातचीत करनेमें अब भी बहुत छोटी थी। वह विह्वल हो गई। उसे पंखेसे हवा करते करते पार्वतीने फिर कहा—मैं गरीब दुखियाकी लड़की हूँ। तुम लोगोंकी दयासे यहाँ थोड़ा-सा स्थान मिला है। न जाने कितने दीन, दुःखी और अनाथ तुम लोगोंकी दयासे यहाँ नित्य प्रतिपालित होते हैं। मैं भी तो बेटी, उन्हींमेंसे एक हूँ। जो आश्रित—

यशोदा अभिभूत होकर सब बातें सुन रही थी। अब वह एकदमसे आत्म-विस्मृत हो गई और उसके पैरोंपर गिरकर प्रणाम करती हुई बोली—माँ, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।

पार्वतीने उसका हाथ पकड़ लिया। यशोदाने कहा—मेरे अपराधोंपर ध्यान न देना।

दूसरे दिन महेन्द्रने यशोदाको एकान्तमें बुलाकर पूछा—क्यों, तुम्हारा गुस्सा

कुछ कम हुआ ?

यशोदाने जल्दीसे अपने भाईके पैरोंपर हाथ रखकर कहा—भइया, मैंने गुस्सेमें आकर, छीः छीः, न जाने क्या क्या कहा है। देखो, वे सब बातें जाहिर न होने पावें।

महेन्द्र हँसने लगा। यशोदाने कहा—क्यों भइया, सौतेली माँ भी इतना आदर कर सकती है ?

दो दिनके बाद यशोदाने पिताके पास पहुँचकर स्वयं ही कहा—बाबूजी, तुम वहाँको चिठ्ठी लिख दो। मैं अभी दो महीने यहीं रहूँगी।

भुवन बाबूने कुछ विस्मित होकर पूछा—क्यों बेटी ?

यशोदाने लज्जित भावसे कुछ हँसते हुए कहा—मेरा शरीर कुछ ठीक नहीं है। अभी मैं कुछ दिनोंतक छोटी माँके ही पास रहूँगी।

मारे आनन्दके वृद्धके नेत्रोंसे जल बहने लगा। उन्होंने सन्ध्या-समय पार्वतीको बुलाकर कहा—तुमने मुझे बड़ी भारी लज्जासे मुक्ति दी है। जीती रहो,—सुखसे रहो।

पार्वतीने पूछा—यह क्या ?

" इसका मतलब तो मैं तुम्हें नहीं समझा सकता। हे नारायण, तुमने कितनी लज्जा और कितनी आत्म-ग्लानिसे मेरा छुटकारा किया है ! "

सन्ध्याके अन्धकारमें पार्वतीने यह नहीं देखा कि उसके स्वामीके नेत्रोंमें जल भर आया है। और विनोदलाल ? वह भुवन बाबूका छोटा लड़का है। वह परीक्षा देकर घर आया और फिर लौटकर पढ़ने नहीं गया।

---

## ग्यारहवाँ परिच्छेद

इसके बाद देवदास दो-तीन दिन तक यों ही इधर उधर सड़कोंपर घूमता रहा,—बहुत-कुछ पागलोंके समान। धर्मदास एक दिन कुछ कहना चाहता था कि वह आँखें लाल करके उसपर बिगड़ पड़ा ! यह रंग-ढंग देखकर चुन्नीलालको भी उससे कुछ कहनेका साहस नहीं हुआ। धर्मदासने रोकर कहा—चुन्नी बाबू, इनकी यह हालत क्यों हो गई है ?

चुन्नीलालने पूछा—धर्मदास, आखिर हुआ क्या है ?

मानो एक अन्धेने दूसरे अन्धेसे रास्ता पूछा। अन्दरका हाल दोनोंमेंसे एक भी नहीं जानता था। आँखें पोंछते पोंछते धर्मदासने कहा—चुन्नी बाबू, चाहे

जिस तरह हो, देवदासको उसकी माँके पास भेज दीजिए। जब इन्हें कुछ लिखना-पढ़ना है ही नहीं, तो फिर यहाँ रहकर क्या करेंगे?

बात बिलकुल ठीक थी। चुन्नीलाल सोचने लगे। चार-पाँच दिन बाद एक रोज चुन्नी बाबू ठीक उसी तरह सन्ध्याके समय बाहर जा रहे थे कि देवदासने न जाने कहाँसे आकर उनका हाथ पकड़कर कहा—चुन्नी बाबू, कहीं जा रहे हो?

चुन्नीलालने कुछ कुण्ठित होकर—हाँ, कहो तो न जाऊँ।

देवदासने कहा—नहीं, मैं तुम्हें जानेके लिए मना नहीं करता। लेकिन एक बात बतलाओ। तुम वहाँ किस आशासे जाते हो?

"आशा और क्या है? यों ही समय बिताने चला जाता हूँ।"

"क्या वहाँ समय बीत जाता है? कहाँ, मेरा समय तो नहीं बीतता। मैं भी तो समय बिताना चाहता हूँ।"

चुन्नीलाल कुछ देरतक उसके मुँहकी ओर देखता रहा, जैसे हृदयका भाव उसके मुखपर पढ़नेकी चेष्टा कर रहा हो। इसके बाद बोला—देवदास, तुम्हें क्या हो गया है? खुल कर बतला सकते हो?

"कुछ भी तो नहीं हुआ।"

"बतलाओगे नहीं?"

"नहीं चुन्नी बाबू, बतलानेकी कोई बात ही नहीं है।"

चुन्नीलाल बहुत देर तक सिर नीचा किये रहनेके बाद बोला—देवदास, एक बात मानोगे?

"क्या?"

"तुम्हें एक बार फिर वहाँ चलना होगा। मैं ज़बान दे आया हूँ।"

"उस दिन जहाँ गये थे वहीं न?"

"हाँ।"

"छीः, मुझे अच्छा नहीं लगता।"

"मैं ऐसा इन्तज़ाम कर दूँगा कि तुम्हें अच्छा लगे।"

देवदासने कुछ देर तक अन्यमनस्ककी तरह चुप रहकर अन्तमें कहा—अच्छा, चलो चलें।

* * * *

देवदासको अवनतिकी एक सीढ़ी नीचे उतारकर चुन्नीलाल न जाने कहाँ खिसक गया है। अकेला देवदास चन्द्रमुखीके कमरेमें नीचे बैठा हुआ शराब पी

रहा है। पास ही बैठी हुई चन्द्रमुखी विषण्णमुखसे देखती देखती डरते हुए बोल उठी—देवदास, अब और मत पीओ।

देवदासने शराबका गिलास जमीनपर रखकर भौंहें टेढ़ी करके पूछा—क्यों?

"अभी कुछ ही दिनोंसे शराब पीने लगे हो। इतनी अधिक बरदाश्त न कर सकोगे।"

"बरदाश्त करनेके लिए शराब नहीं पीता। सिर्फ इसलिए पीता हूँ कि यहाँ रह सकूँ।"

यह बात चन्द्रमुखी कई बार सुन चुकी है। अवसर उसके जीमें आया है कि दीवारपर सिर पटककर रक्तकी गंगा बहाकर मर जाऊँ। देवदाससे वह प्रेम करने लग गई थी। देवदासने शराबका गिलास दूर फेंक दिया। कोचके पायेमें लगकर वह चूर चूर हो गया। फिर लेटकर और तकियेका सहारा लेकर उसने लड़खड़ाती हुई जबानसे कहा—मुझमें उठकर जानेकी ताकत नहीं है, इसीलिए यहाँ बैठा रहता हूँ। होश नहीं रह जाता, इसीलिए तुम्हारे मुँहकी ओर देखकर बातें करता हूँ। चन्द—र—तो भी मैं बिल्कुल बेहोश नहीं होता,—तो भी कुछ होश रहता है, इसलिए तुम्हें छू नहीं सकता। मुझे बहुत घृणा होती है।

चन्द्रमुखी अपनी आँखें पोंछकर धीरे धीरे कहने लगी—देवदास, यहाँ ऐसे बहुत-से लोग आते हैं जो कभी शराब छूते भी नहीं।

देवदास आँखें फाड़कर उठ बैठा। उसने लड़खड़ाते हुए इधर-उधर हाथ फेंककर कहा—छूते तक नहीं? अगर बन्दूक होती तो मैं उन्हें गोली मार देता। चन्द्रमुखी, वे लोग तो मुझसे भी बढ़कर पापिष्ठ हैं।

कुछ देर तक चुप रहकर वह फिर न जाने क्या सोचने लगा। इसके बाद उसने फिर कहा—अगर मैंने कभी शराब पीना छोड़ा,—यद्यपि मैं छोड़ूँगा नहीं,—तो फिर मैं यहाँ कभी नहीं आऊँगा। मेरे लिए तो उपाय है, लेकिन उन लोगोंकी क्या दशा होगी?

कुछ देर तक ठहरकर वह फिर कहने लगा—मैंने बहुत ही दुखी होकर शराब पीना शुरू किया है। हे मेरी विपत्ति और दुःखकी साथिन! मैं तुझे नहीं छोड़ सकता।

देवदास तकियेपर अपना मुँह रगड़ने लगा। चन्द्रमुखीने जल्दीसे पास आकर उसका मुँह पकड़कर ऊपर उठाया। देवदासने भौंहें तानकर कहा—छीः, मुझे छुओ मत। अब भी मुझे होश है। चन्द्रमुखी, तुम नहीं जानतीं, केवल मैं ही

जानता हूँ कि मैं तुम लोगोंसे कितनी घृणा करता हूँ। सदा घृणा करता रहूँगा। फिर भी आऊँगा, फिर भी बैठूँगा, फिर भी बातें करूँगा। नहीं तो, इसके सिवाय और कोई उपाय जो नहीं है! यह बात क्या तुम लोग समझोगी? हाः हाः—लोग पापके काम अँधेरेमें करते हैं और मैं यहाँ आकर मतवाला होता हूँ।—संसारमें ऐसा उपयुक्त स्थान कौन-सा है? और तुम सब—

देवदास दृष्टि संयत करके कुछ देर तक उसके दुखी मुखकी ओर देखता रहा और बोला—आहा! तुम सहिष्णुताकी प्रतिमूर्ति हो! स्त्रियोंको लाँछना, भर्त्सना, अपमान, अत्याचार और उपद्रव आदि कितने सहने पड़ते हैं, तुम्हीं सब इसका दृष्टान्त हो!

इसके बाद वह चित होकर लेट गया और चुपचाप कहने लगा—चन्द्रमुखी कहती है कि मैं तुम्हे प्यार करती हूँ। लेकिन मैं नहीं चाहता, नहीं चाहता, नहीं चाहता। लोग नाटक करते हैं, मुँहपर कालिख और चूना मलते हैं, चोर बनते हैं, भीख माँगते हैं, राजा बनते हैं, रानी बनते हैं,—प्रेम करते हैं,—प्रेमकी न जाने कितनी बातें करते हैं, न जाने कितना रोते हैं,—ऐसा मालूम होता है कि जैसे सब सच ही है। चन्द्रमुखी मेरा नाटक करती है और मैं देखता हूँ।—लेकिन उसकी बहुत याद आती है। क्षण-भरमें ही मानों सब-कुछ हो गया। वह कहाँ चली गई और मैं किस रास्तेपर चल पड़ा! अब एक समस्त जीवनव्यापी बहुत बड़ा अभिनय आरम्भ हुआ है, एक भारी शराबी और यह एक,—अच्छा होने दो,—यही होने दो। बुरा क्या है! आशा नहीं, भरोसा नहीं, सुख भी नहीं और साध भी नहीं। वाह! बहुत अच्छा!

इसके बाद देवदास करवट बदलकर न जाने क्या बड़बड़ाने लगा। चन्द्रमुखी उसका कुछ भी मतलब न समझ सकी। थोड़ी ही देरमें देवदास सो गया। उस सयय चन्द्रमुखी पास आकर बैठ गई। उसने आँचल भिगोकर मुँह पोंछ दिया और भीगा हुआ तकिया बदल दिया। फिर एक पंखा लेकर कुछ देर तक उसे झलती रही और बहुत देर तक सिर नीचा किये बैठी रही। उस समय रातका प्रायः एक बज गया था। वह दीया बुझाकर और दरवाजा बन्द करके दूसरे कमरेमें चली गई।

---

# बारहवाँ परिच्छेद

दोनों भाई द्विजदास और देवदास तथा गाँवके बहुतसे लोग जमींदार नारायण मुकर्जीका अन्तिम संस्कार करके घर लौट आये। द्विजदास खूब चिल्ला चिल्लाकर रो रहा है, उसकी दशा पागलोंकी-सी हो गई है। मुहल्लेके दस-पाँच आदमी मिलकर भी उसे पकड़े नहीं रख सकते। देवदास शान्त भावसे एक खम्भेके पास बैठा हुआ है। न तो उसके मुखसे एक शब्द ही निकलता है और न उसकी आँखोंमें एक बूँद आँसू है। न तो कोई उसे पकड़ता है और न सान्त्वना देनेका ही प्रयत्न करता है। मधुसूदन घोष एक बार उसके पास जाकर कहने गये—हाँ भइया, तकदीर—

देवदासने द्विजदासकी ओर अँगुली दिखलाकर कहा—

घोष महाशय अप्रतिभ होकर बोले—हाँ, सो वे कितने बड़े शोक—इत्यादि कहते कहते वे वहाँसे चले गये। फिर और कोई पास नहीं आया। दोपहर बीत जानेपर देवदास अपनी अर्द्धमूर्च्छित माताके पैरोंके पास जा बैठा। वहाँ उसे बहुत-सी औरतें घेरे हुए बैठी हैं। पार्वतीकी दादी भी वहाँ मौजूद है। उसने भरे हुए गलेसे सद्यविधवा शोकार्त माताको सम्बोधन करके कहा—बहू, जरा देखो तो, देवदास आया है।

देवदासने पुकारा—माँ!

उन्होंने एक बार देखकर कहा—बेटा!

इसके बाद फिर उनके मुँदे हुए नेत्रोंके कोनोंसे अश्रुओंकी अजस्र धारा बहने लगी। स्त्रियोंका दल भी हाय हाय करके रोने-धोने लगा। देवदास कुछ देर तक अपनी माताके चरणोंमें मुँह छिपाये बैठा रहा। इसके बाद उठकर धीरे धीरे अपने मृत पिताके शयनागारकी ओर चला गया। उसकी आँखोंमें जल नहीं, वह गम्भीर तथा शान्त है। अपनी लाल आँखें ऊपरकी ओर गड़ाकर जमीनपर बैठ गया। ऐसा मालूम होता है कि यदि उस समय उसे कोई देख लेता तो अवश्य ही डर जाता। कपालके दोनों ओरकी शिरायें फूल रही हैं और बड़े बड़े रूखे बाल खड़े हो रहे हैं। तप्तकांचनके-से वर्णपर मानों कालिख पुत गई है। पहले तो कलकत्तेका जघन्य अनाचार, फिर यह दीर्घ रात्रि-जागरण और तिसपर पिताकी मृत्यु! जिसने आजसे साल-भर पहले उसे देखा था, जान पड़ता है, वह शायद इस समय उसे देखकर सहसा पहचान भी न सकता। कुछ

देर बाद पार्वतीकी माँ ढूँढ़ती हुई दरवाजा खोलकर अन्दर आई—

"—देवदास !"

"क्या है चाची ?"

"बेटा, इस तरह तो काम नहीं चलेगा।"

देवदासने उसके मुखकी ओर देखकर कहा—क्यों, मैंने क्या किया है चाची ?

चाची जानती तो थी क्या किया है, परन्तु कोई उत्तर न दे सकी। उसने देवदासका सिर खींचकर अपनी गोदमें कर लिया और कहा—देवता बेटा !

"क्यों चाची ?"

"देवता बेटा !"

उसकी छातीके पास मुख रखकर देवदासने उस समय एक बूँद अश्रु विसर्जन किया।

शोकार्त्त परिवारके दिन भी कट जाते हैं। धीरे धीरे दूसरे दिनका सवेरा हुआ। रोना-धोना भी बहुत-कुछ कम हो गया। द्विजदासका मन अब बिलकुल ठिकाने आ गया है। उनकी माँ भी अब उठकर बैठ गई हैं और आँखें पोंछती हुई दिनके काम कर रही हैं। दो दिनके बाद द्विजदासने देवदासको बुलाकर कहा—देवदास, पिताजीके श्राद्धमें कितना खर्च करना उचित होगा ?

देवदासने बड़े भाईके मुखकी ओर देखकर कहा—जो कुछ आप उचित समझें।

"नहीं भाई, सिर्फ मेरे समझनेसे ही काम नहीं चलेगा। तुम भी बड़े हुए हो, तुम्हारी सम्मति लेना आवश्यक है।"

देवदासने पूछा—नगद रुपये कितने हैं ?

"पिताजीके हिसाबमें डेढ़ लाख रुपये जमा हैं। मेरी समझमें दसेक हजार खर्च करना यथेष्ट होगा। तुम्हारी क्या राय है ?"

"मुझे उसमेंसे कितना मिलेगा ?"

द्विजदासने कुछ इधर-उधर करनेके बाद कहा—तुम्हें भी उसमेंसे आधा मिल जायगा। तुम्हारे सत्तर हजार और मेरे सत्तर हजार रुपये बाकी रहेंगे।

"माँको क्या मिलेगा ?"

"माँ नगद रुपये लेकर क्या करेंगी ? वे तो घरकी मालिकन हैं ही। हम लोग प्रतिपालन करेंगे।"

देवदासने कुछ सोचकर कहा—मैं समझता हूँ कि आपके हिस्सेके तो पाँच हजार रुपये खर्च हों और मेरे हिस्सेके पचीस हजार। अपने बाकी पचास हजार

रुपयोंमेंसे मैं पचीस हजार लूँगा और बाकी पचास हजार माँके नामसे जमा रहेंगे। आपकी क्या राय है?

पहले तो द्विजदास मानों कुछ लज्जित हुआ, पर बादमें उसने कहा, "अच्छी बात है। मेरे तो, जानते हो, स्त्री, पुत्र और कन्या है। उनका ब्याह, जनेऊ वगैरह करना होगा। बहुत-से खर्च हैं। इसलिए यही राय ठीक है।" फिर कुछ रुककर कहा, "तो फिर इसकी लिखा-पढ़ी हो जाय—"

"लिखा-पढ़ी होनेकी जरूरत है? वह देखनेमें अच्छी नहीं मालूम होगी। मैं चाहता हूँ कि रुपये-पैसेकी बात इस समय चुपचाप ही हो जाय।"

"अच्छी बात है। लेकिन भाई, शायद फिर—"

"अच्छा, मैं लिख ही देता हूँ।"

उसी दिन देवदासने लिखा-पढ़ी कर दी।

दूसरे दिन दोपहरको देवदास नीचे उतर रहा था। सीढ़ियोंके पास ही पार्वतीको देखकर ठिठक गया। पार्वतीने उसके मुखकी ओर देखा। पहचाननेमें उसे मानो कुछ क्लेश हो रहा था। देवदासने गम्भीर शान्त मुखसे पास पहुँचकर पूछा— कब आई पार्वती?

वही कण्ठ-स्वर! आज तीन बरसके बाद भेंट हुई है। पार्वतीने सिर झुकाकर कहा—आज सबेरे आई हूँ।

"बहुत दिनोंसे भेट नहीं हुई। खूब अच्छी तरह थीं?"

पार्वतीने सिर हिला दिया।

"चौधरीजी अच्छी तरह हैं? लड़के-बच्चे सब मजेमें?"

"सब लोग अच्छी तरह हैं।"

पार्वतीने एक बार मुखकी ओर देखा। लेकिन वह यह नहीं पूछ सकी कि तुम कैसे हो और क्या करते हो। अब तो इस प्रकारका प्रश्न ही ठीक नहीं लगता था।

देवदासने पूछा—अभी कुछ दिन रहोगी न?

"हाँ।"

"तब तो ठीक है—"

यह कहकर देवदास बाहर चला गया।

श्राद्धके सब कार्य समाप्त हो गये। उसका वर्णन किया जाय तो बहुत-कुछ लिखना पड़ेगा, इसलिए, उसकी कोई आवश्यकता नहीं। श्राद्धके दूसरे दिन पार्वतीने धर्मदासको एकान्तमें बुलाकर और उसके हाथमें सोनेका एक हार देकर

५

कहा—धर्म, यह हार तुम अपनी लड़कीको पहननेके लिए देना।

धर्मदासने उसके मुखकी ओर देखकर अपने आर्द्र नेत्रोंको और भी अधिक आर्द्र करके कहा—आहा, तुम्हें बहुत दिनोंसे नहीं देखा। और सब हाल-चाल ठीक है न बहन?

"हाँ, सब ठीक है। तुम्हारे लड़के-बच्चे तो अच्छे हैं?"

"हाँ, सब अच्छे हैं।"

"तुम अच्छी तरह हो?"

अबकी बार धर्मदासने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—खाक अच्छा हूँ! अब तो मेरा भी चल देनेको जी जाहता है। मालिक तो चले ही गये।

शोकके आवेगमें धर्मदास न जाने और भी कितनी बातें कहता, लेकिन पार्वतीने उसमें बाधा डाल दी। ये सब बातें सुननेके लिए उसने हार नहीं दिया था।

पार्वतीने बीचमें ही रोककर कहा—धर्मदास, यह तुम क्या कहते हो? तुम नहीं रहोगे तो देवदासको कौन देखेगा?

धर्मदासने अपना माथा ठोंककर कहा—जब बच्चे थे, तब देखता था। अब तो इसीमें भलाई है पारो, कि उन्हें न देखना पड़े।

पार्वतीने कुछ और समीप खिसककर पूछा—धर्म, एक बात सच सच बतलाओगे?

"बतलाऊँगा क्यों नहीं बहन!"

"अच्छा तो ठीक ठीक बतलाओ कि देव भइया अब क्या करते हैं?"

"मेरा सिर करते हैं।"

"धर्मदास, साफ साफ बतलाओ न!"

धर्मदासने फिर माथा ठोंकते हुए कहा—बहन, मैं साफ साफ और क्या बतलाऊँ! वे सब क्या कहनेकी बातें हैं! अब मालिक तो हैं नहीं और देवताके हाथ अगाध रुपये आ गये हैं। अब तो मुश्किल ही है।"

पार्वतीका मुख एकदम म्लान हो गया। उसने कुछ उड़ती हुई बातें सुनी थीं। स्तब्ध होकर कहा—धर्मदास, तुम कह क्या रहे हो?

उसने मनोरमाके पत्रमें जब कुछ बातें पढ़ी थीं तब वह विश्वास न कर सकी थी। धर्मदास सिर हिलाकर कहने लगा—न खाना है और न सोना है। सिर्फ बोतल बोतल शराब। तीन तीन चार चार दिन तक न जाने कहाँ पड़े रहते हैं, कोई ठिकाना नहीं। न जाने कितने रुपये उड़ा दिये। सुनता हूँ कि कई हजार

रुपयोंके तो उसे खाली गहने बनवा दिये हैं।

पार्वती सिरसे पैर तक काँप उठी—धर्मदास, क्या यह बात सच है?

धर्मदास अपनी धुनमें कहता गया—शायद वे तुम्हारी बात मान लें। तुम एक बार उन्हें मना करो। कैसा शरीर था और अब कैसा हो गया है! इस तरहके अत्याचारसे कितने दिन जीते रहेंगे? और अब ये सब बातें किससे कहूँ? माँ, बाप, भाई,—इन सबसे तो यह बात कही नहीं जा सकती!

कुछ ठहरकर धर्मदास बार बार माथा ठोंकते हुए कह उठा—पार्वती, जी चाहता है कि सिर पटककर मर जाऊँ। अब जीनेकी साध नहीं रही।

पार्वती उठकर चली गई। नारायण बाबूकी मृत्युका समाचार सुनकर वह दौड़ी आई थी। सोचा था कि इस विपत्तिके समय एक बार देवदासके पास जाना उचित है। लेकिन यहाँ उसके इतने साधके देव भइयाकी यह हालत हो रही है! उसे इतनी अधिक बातें याद आने लगीं, जिनकी कोई सीमा नहीं। जितने धिक्कार उसने देवदासको दिये उससे हजार गुने अधिक अपने आपको दिये। हजार बार उसे यह खयाल आया कि अगर मैं होती तो क्या कभी ऐसा हो सकता? पहले उसने अपने हाथोंसे अपने पैरोंपर कुल्हाड़ी मारी थी; लेकिन, अब वह कुल्हाड़ी उसके सिरपर पड़ी। उसीके देव भइयाकी तो यह हालत होती जा रही है,—वह इस प्रकार नष्ट हो रहा है और वह स्वयं दूसरेकी गृहस्थीका भला करनेके फेरमें पड़ी हुई है! दूसरेको अपना समझकर वह नित्य अन्न वितरण कर रही है और स्वयं उसका सर्वस्व आज भोजन बिना मर रहा है! पार्वतीने प्रतिज्ञा की कि आज मैं देवदासके पैरोंपर अपना सिर पटककर प्राण दे दूँगी।

अभी सन्ध्या होनेमें कुछ देर थी। पार्वतीने पहुँचकर देवदासके कमरेमें प्रवेश किया। देवदास पलंगपर बैठा हुआ हिसाब देख रहा था। उसने सिर उठाकर देखा। पार्वती धीरेसे दरवाजा बन्द करके जमीनपर बैठ गई। देवदास सिर उठाकर हँसा। उसकी आकृति विषादयुक्त परन्तु शान्त थी। उसने सहसा हँसी करते हुए कहा—अगर मैं तुम्हें बदनाम करूँ तो?

पार्वतीने अपने सलज्ज और नीलोत्पल नेत्र एक बार उसकी ओर करके फिर तुरन्त ही नीचे कर लिये। उसने पल-भरमें ही समझा दिया कि वह बात मेरे कलजेमें सदाके लिए तीरकी तरह चुभ गई है; अब और क्यों? वह बहुत-सी बातें कहनेके लिए आई थी, लेकिल सब भूल गई। देवदासके समीप वह बात नहीं कर सकती। देवदास फिर हँस पड़ा और बोला—समझ गया, समझ गया

पारो। क्यों, लज्जा आती है न?

लेकिन फिर भी पार्वती कोई बात न कह सकी। देवदास कहने लगा—इसमें लज्जाकी कौन-सी बात है? दो जने मिलकर एक लड़कपन कर डालते हैं,—देखो, बीचमें कैसा गोलमाल हो गया! क्रोधमें आकर तुमने जो चाहा वह कह डाला; मैंने भी मस्तकपर यह निशान बना दिया। क्यों कैसा हुआ!

देवदासकी इन बातोंमें श्लेष या उपहासका लेश-मात्र भी नहीं था। उसने प्रसन्न होकर हँसते हँसते अतीतके दुःखकी कहानी कह सुनाई थी। परन्तु पार्वतीकी छाती फटने लगी। उसने मुँहमें कपड़ा देकर और साँस रोककर मन ही मन कहा—देव भइया, यह निशान ही मेरे लिए सान्त्वना है,—यही मेरा संबल है! तुम मुझसे स्नेह करते थे, इसीलिए तुमने हम लोगोंका बाल्य-इतिहास ललाटपर लिख दिया है। यह मेरे लिए लज्जा नहीं, कलंक नहीं, बल्कि गौरवकी सामग्री है।

"पारो!"

अपने मुँहपरसे आँचल हटाये बिना ही पार्वतीने कहा—क्या?

"तुमपर मुझे बहुत गुस्सा आता है—"

अब देवदासका कंठ-स्वर विकृत होने लगा। उसने कहा—बाबूजी नहीं रहे, यह मेरे लिए कितने अधिक दुःखका दिन है। किन्तु यदि तुम होतीं तो फिर क्या चिन्ता थी! बड़ी बहूको तुम जानती ही हो। दादाका स्वभाव भी कुछ छिपा नहीं है। भला बतलाओ, इस समय मैं माँको लेकर क्या करूँ! और फिर मेरा भी क्या होगा, कुछ समझमें नहीं आता। तुम होतीं तो निश्चिन्त होकर सब-कुछ तुम्हारे हाथोंमें सौंपकर,—हैं पारो, यह क्या?

पार्वती सिसक सिसककर रो रही थी। देवदासने कहा—शायद तुम रो रही हो। अच्छा तो जाने दो, यह बात यहीं ख़तम हो गई।

पार्वतीने आँखें पोंछते हुए कहा—कहो, कहो।

देवदासने क्षण-भरमें ही अपना कंठ-स्वर साफ़ करके कहा—पारो, तुम तो खूब पक्की गृहस्थिन हो गई हो!

अन्दर ही अन्दर पार्वतीने अपने होंठ चबाये और मन मन ही कहा—खाक गृहस्थिन हुई हूँ! कहीं सेमलका फूल भी देव-सेवाके काम आता है?

देवदास हँस पड़ा और हँसते हुए बोला—मुझे बहुत हँसी आती है। तुम जरा-सी थीं, अब कितनी बड़ी हो गई हो! खूब बड़ा मकान, बहुत बड़ी जमींदारी, बड़े बड़े लड़के लड़कियाँ,—और चौधरी महाशय,—सभी बड़े हैं, क्यों पारो?

चौधरी महाशय पार्वतीके लिए बहुत ही आमोदकी वस्तु थे। उनका ध्यान आते ही उसे हँसी आने लगती थी। इतने दुःखके समयमें भी इसीसे उसे हँसी आ गई। देवदासने कृत्रिम गम्भीरताके साथ कहा—एक उपकार कर सकती हो ?

पार्वतीने सिर उठाकर पूछा—क्या ?

"तुम्हारी तरफ कोई अच्छी लड़की मिल सकती है ?"

पार्वतीने थूक घोंटकर और खाँसकर पूछा—अच्छी लड़की ? क्या करोगे ?

"मिल जाय तो ब्याह कर लूँ। जी चाहता है कि एक बार गृहस्थ बन जाऊँ।"

पार्वतीने भले मानुसोंकी तरह पूछा—खूब सुन्दरी चाहिए न ?

"हाँ, तुम्हारी तरह।"

"और खूब भली मानुस हो ?"

"नहीं, बहुत भली मानुसकी जरूरत नहीं। बल्कि कुछ दुष्ट हो; तुम्हारी ही तरह; जो मेरे साथ झगड़ा कर सके।"

पार्वतीने मन ही मन कहा—नहीं देव भइया, यह तो किसीसे न हो सकेगा क्योंकि उसको मेरे जैसा प्यार कर सकना चाहिए। फिर प्रकाश रूपसे कहा—मैं जलमुँही, मेरे जैसीं न जाने कितनी हजार तुम्हारे पैरोंमें आकर अपने आपको धन्य समझेंगीं।

देवदासने मज़ाक करते हुए हँसकर कहा—क्यों बहन, आखिर ऐसी कोई दे सकती हो ?

"देव भइया, क्या तुम सचमुच ब्याह करोगे ?"

"कहा तो।"

उसने सिर्फ यही बात खुलकर नहीं कही कि तुम्हें छोड़कर इस जीवनमें और किसी स्त्रीकी ओर मेरी प्रवृत्ति नहीं होगी।

"देव भइया, एक बात कहूँ ?"

"क्या ?"

पार्वतीने अपने आपको सँभालते हुए कहा—तुमने शराब पीना क्यों सीखा ?

देवदास हँस पड़ा। बोला—क्या किसी चीज़का खाना-पीना भी सीखना होता है ?

"यह नहीं; तुमने उसका अभ्यास क्यों किया ?"

"किसने कहा ? धर्मदासने ?"

"चाहे कोई कहे, क्या यह सच है ?"

देवदासने बात छिपाई नहीं। कहा—हाँ, बहुत कुछ ठीक है !

पार्वती कुछ देर तक स्तब्ध होकर बैठी रही। फिर बोली—और उसे कितने हज़ारके गहने बनवा दिये हैं?

देवदासने हँसकर कहा—अभी दिये नहीं हैं, सिर्फ बनाकर रक्खे हैं। तुम लोगी?

पार्वतीने हाथ बढ़ाकर कहा—लाओ, दो। यह देखो, मेरे शरीरपर एक भी गहना नहीं है।

"चौधरी महाशयने तुम्हें नहीं दिये?"

"दिये थे, लेकिन मैंने वे सब उनकी बड़ी लड़कीको दे दिये।"

"तुम्हें शायद उनकी जरूरत नहीं है?"

पार्वतीने सिर हिलाकर मुँह नीचा कर लिया। अबकी बार सचमुच ही देवदासकी आँखोंमें जल भर आया। देवदासने अपने मनमें समझ लिया कि किसी मामूली दुःखमें स्त्रियाँ अपना गहना उतारकर किसीको नहीं दे देतीं। लेकिन, अपनी आँखोंका जल रोककर उसने धीरेसे कहा—झूठ बात है पारो, मैं किसी भी स्त्रीको प्रेम नहीं करता, किसीको भी मैंने गहने नहीं दिये।

पार्वतीने ठंढी साँस लेकर मन ही मन कहा—यही तो मेरा भी विश्वास है।

बहुत देरतक दोनों चुप रहे। उसके बाद पार्वतीने कहा—लेकिन, इस बातकी प्रतिज्ञा करो कि अब कभी शराब नहीं पीओगे।

"नहीं, यह मुझसे नहीं हो सकता। क्या तुम प्रतिज्ञा कर सकती हो कि कभी एक बार भी मुझे याद नहीं करोगी?"

पार्वतीने कोई उत्तर नहीं दिया। इसी समय बाहर सन्ध्याकी शंख-ध्वनि हुई। देवदासने चकित होकर खिड़कीमेंसे बाहरकी ओर देखते हुए कहा—सन्ध्या हो गई। अब तुम घर जाओ पारो!

"नहीं, मैं नहीं जाऊँगी। पहले तुम प्रतिज्ञा करो।"

"यह मुझसे नहीं हो सकता।"

"क्यों नहीं हो सकता?"

"क्या सभी लोग सब काम कर सकते हैं?"

"इच्छा करनेपर अवश्य ही कर सकते हैं।"

"तुम आज रातको मेरे साथ भागकर चल सकती हो?"

सहसा मानो पार्वतीके हृदयकी गति रुक गई। अज्ञात रूपसे अस्फुट स्वरमें उसके मुँहसे निकल गया—ऐसा कहीं होता है!

देवदास पलंगपर कुछ खिसककर बैठ गया और बोला—पार्वती, दरवाजा खोल दो।

पार्वती और भी आगे खिसककर दरवाजेके साथ अच्छी तरह अपनी पीठ सटाकर बैठ गई और बोली—पहले प्रतिज्ञा करो।

देवदास उठकर खड़ा हो गया और धीरतासे कहने लगा—पारो, इस तरह जबरदस्ती प्रतिज्ञा कराना क्या कोई अच्छी बात है ? या इससे कोई विशेष लाभ है ? आजकी प्रतिज्ञा सम्भव है कि कल निबाह न सकूँ,—मुझे मिथ्यावादी क्यों बनाना चाहती हो ?

और भी कुछ समय इसी प्रकार चुपचाप बीत गया। उसी समय कहीं किसी कमरेकी घड़ीमें टन टन करके नौ बज गये। देवदास घबरा गया। उसने कहा—पारो, दरवाजा खोल दो।

पार्वतीने कोई उत्तर नहीं दिया। देवदासने फिर पुकारा—पार्वती !

"मैं कदापि यहाँसे न जाऊँगी।"

यह कहकर पार्वती रुद्ध आवेगसे उसी स्थानपर लोट गई और बहुत देरतक रोती रही। कमरेमें उस समय घोर अन्धकार था। कहीं कुछ दिखाई नहीं देता था। देवदासने केवल अनुमान किया कि पार्वती जमीनपर पड़ी हुई रो रही है।

उसने धीरेसे पुकारा—पारो !

पार्वतीने रोते हुए उत्तर दिया—देव भइया, मुझे बहुत ही कष्ट हो रहा है।

देवदास उसके पास आ गया। उसकी आँखोंमें भी जल भरा हुआ था। लेकिन स्वर विकृत नहीं हुआ था। उसने कहा—क्या मैं यह बात नहीं जानता ?

"देव भइया, मैं मरी जा रही हूँ। मैं तुम्हारी सेवा नहीं कर सकी। मेरी जन्म-भरकी साध—"

अन्धकारमें अपनी आँखें पोंछते हुए देवदासने कहा—उसका भी तो समय है।

"अच्छा, तो तुम मेरे यहाँ चलो। यहाँ तुम्हें देखनेवाला कोई नहीं है।"

"तुम्हारे घर चलूँगा तो मेरी खूब सेवा करोगी ?"

"यह तो मेरी लड़कपनकी साध है ! स्वर्गके देवता, मेरी यह साध पूरी कर दो। इसके बाद अगर मैं मर जाऊँ तो उसका भी कोई दुःख नहीं।"

अब देवदासकी आँखोंसे भी जल बहने लगा।

पार्वतीने फिर कहा—देव भइया, मेरे घर चलो।

देवदासने आँखें पोंछकर कहा—अच्छा, आऊँगा।

" मुझे छूकर और मेरी शपथ खाकर कहो कि आओगे।"

देवदासने अनुमानसे पार्वतीके चरण स्पर्श करके कहा—यह बात मैं कभी न भूलूँगा। अगर मेरी सेवा करनेसे तुम्हारा दुःख कम हो तो मैं तुम्हारे यहाँ आऊँगा। मरनेसे पहले भी यह बात मुझे याद रहेगी।

---

## तेरहवाँ परिच्छेद

पिताकी मृत्युके उपरान्त लगातार छः महीने तक घर रहनेके कारण देवदास बहुत ही घबरा गया। न सुख था और न शान्ति,—बिलकुल एक ही तरहका जीवन। तिसपर लगातार पार्वतीकी चिन्ता। आज-कल सभी कामों और सभी बातोंमें उसे पार्वती याद आती। और भाई द्विजराज तथा पतिव्रता भौजाईने तो देवदासका कष्ट और भी अधिक बढ़ा दिया है।

घरकी मालकिनकी अवस्था भी देवदासकी अवस्थाके ही समान है। स्वामीकी मृत्युके साथ ही साथ उनके भी सब सुखोंका अन्त हो चुका है। पराधीन भावसे अब इस घरमें रहना उनके लिए असह्य हो गया है। इधर कुछ दिनोंसे वह काशीमें जाकर रहनेका संकल्प कर रही हैं। केवल देवदासका विवाह किये बिना नहीं जा सकतीं। बार बार कहती हैं, देवदास, ब्याह कर ले, मैं देखे जाऊँ। लेकिन यह भला कैसे सम्भव था? एक तो अशौचकी अवस्था और फिर मनके मुताबिक एक पात्री तलाश करना। आज-कल इसीलिए मालकिनके मनमें रह-रहकर अफसोस होता है कि यदि उस समय पार्वतीके साथ इसका विवाह हो जाता तो बहुत अच्छा होता। एक दिन उन्होंने देवदासको बुलाकर कहा—देवदास, अब तो मुझसे नहीं रहा जाता। कुछ दिन काशी चलकर रहूँ तो ठीक हो।

देवदासकी भी यही इच्छा थी। उसने कहा—मैं भी तो यही कहता हूँ। छः महीने बाद लौटनेपर सब हो जायगा।

" हाँ बेटा, बस यही करो। अन्तमें लौटकर उनकी बरसी हो जानेपर, तेरा ब्याह करके और यह देखकर कि तुम घर-गृहस्थीवाले हो गये हो, मैं फिर काशी-वास करनेके लिए चली जाऊँगी।"

देवदास इसपर राजी हो गया और अपनी माँको कुछ दिनोंके लिए काशी रखकर कलकत्ते चला गया। कलकत्ते आनेपर तीन चार दिन तक देवदासने चुन्नीलालको ढूँढ़ा। वह नहीं मिला, बासा बदलकर कहीं और चला गया है।

एक रोज सन्ध्याके समय देवदासको चन्द्रमुखीका स्मरण हो आया।—एक बार मिल लिया जाय न? इतने दिनोंतक उसका कभी ध्यान ही नहीं आया। देवदासको मानों कुछ लज्जा हुई, वह एक गाड़ी किराये करके सन्ध्या होनेके कुछ ही देर बाद चन्द्रमुखीके मकानके सामने जा पहुँचा। बहुत देर तक पुकारनेके बाद अन्दरसे किसी स्त्रीने उत्तर दिया, 'यहाँ नहीं है।' सामने गैस-बत्तीका एक खम्भा था, देवदासने उसके निकट जाकर पूछा—बतला सकती हो कि वह कहाँ गई है।

खिड़की खोलकर और कुछ देरतक देखकर उसने पूछा—क्या तुम देवदास हो?

"हाँ।"

"अच्छा ठहरो। दरवाजा खोलती हूँ।"

इसके बाद उसने दरवाजा खोलकर कहा—आओ।

कंठ-स्वर उसे कुछ कुछ परिचित-सा जान पड़ता था, लेकिन फिर भी वह अच्छी तरह पहचान नहीं सका। उस समय कुछ अन्धकार भी हो गया था। उसने पूछा—चन्द्रमुखी कहाँ है, बतला सकती हो?

स्त्रीने मुस्कराते हुए कहा—हाँ, बतला सकती हूँ। ऊपर चलो।

अब देवदासने पहचान लिया और कहा—हैं! तुम हो?

"हाँ, मैं ही हूँ। देवदास, मुझे एकदम भूल गये?"

ऊपर पहुँचकर देवदासने देखा कि चन्द्रमुखीके पहनावेमें सिर्फ काली किनारीकी धोती है और वह भी मैली। हाथोंमें सिर्फ दो कड़े हैं; इसके सिवा और कोई गहना नहीं है। सिरके बाल भी अव्यवस्थित इधर-उधर फैले हुए हैं। विस्मित होकर पूछा, "तुम ऐसीं!" अच्छी तरह देखनेसे उसे मालूम हुआ कि चन्द्रमुखी पहलेकी बनिस्वत बहुत दुबली हो गई है।—"क्या तुम बीमार थीं।"

चन्द्रमुखीने हँसकर उत्तर दिया—कोई शारीरिक रोग तो बिलकुल नहीं है। तुम अच्छी तरह बैठो।

देवदासने पलंगपर बैठकर देखा कि सारे घरमें एकदम परिवर्तन हो गया है। गृह-स्वामिनीकी तरह उसकी भी दुर्दशाकी कोई सीमा नहीं है। सजावटके सामानमेंसे एक भी चीज नहीं है। आलमारी, टेबुल और कुरसियोंकी सारी जगह खाली पड़ी हुई है। केवल एक पलंग बिछा है और उसपरकी भी चादर मैली है। दीवारोंपर जो तसवीरें टँगी हुई थीं वे हटा दी गई हैं। लोहेकी कँढियाँ अब भी

दीवारोंमें लगी हुई हैं और उनमेंसे एक-दोमें लाल फीतेके टुकड़े अब भी लटक रहे हैं। वह घड़ी अब भी ब्रेकेटके ऊपर है, लेकिन निःशब्द है। उसके आसपास मकड़ियोंने मनमाना जाल बुन रक्खा है। एक कोनेमें तेलका दीया बहुत ही धीमा-सा प्रकाश दे रहा है। उसीकी सहायतासे देवदासने घरकी यह नये ढंगकी सजावट देखी। उसने कुछ तो विस्मित और कुछ क्षुब्ध होकर कहा—चन्द्र, आखिर यह दुर्दशा कैसे हुई ?

चन्द्रमुखीने म्लान हँसी हँसते हुए कहा—इसे किसने दुर्दशा कहा ? मेरा तो भाग्य खुल गया है।

देवदास कुछ समझ न सका। उसने कहा—तुम्हारे शरीरके सब गहने क्या हुए ?

" बेच डाले हैं ? "

" और असबाब वगैरह ? "

" वह सब भी बेच दिया है। "

" घरकी सब तसवीरें भी बेच दीं ? "

चन्द्रमुखीने हँसते हुए सामनेवाला एक मकान दिखलाकर कहा – उस मकानमें रहनेवाली क्षेत्रमणिको दे दी हैं।

देवदासने कुछ देर तक उसके मुँहकी ओर देखते हुए पूछा—चुन्नी बाबू कहाँ है ?

" मुझे नहीं मालूम। कोई दो महीने हुए, झगड़ा करके चले गये हैं, फिर नहीं आये। "

देवदासको और भी आश्चर्य हुआ। " झगड़ा क्यों हुआ ? "

चन्द्रमुखीने कहा—क्यों क्या झगड़ा नहीं होता ?

" होता तो है, लेकिन आखिर क्यों ? "

" दलाली करने आये थे, इसीलिए घरसे निकाल दिया। "

" काहेकी दलाली ? "

चन्द्रमुखीने हँसकर कहा, "पाटकी दलाली।" फिर कुछ ठहरकर कहा, "तुम समझ नहीं सके ? किसी एक बहुत बड़े आदमीको पकड़कर ले आये थे। दो सौ रुपया महीना, बहुतसे गहने और दरवाजेपर पहरेके लिए एक सिपाही। अब समझे ? "

देवदासने समझकर हँसते हुए कहा—लेकिन कहाँ, वह सब कुछ भी तो नहीं देखता।

" हो तब तो देखो। मैंने उन लोगोंको धता बताकर निकाल दिया था। "

" उन लोगोंका अपराध ? "

" उनका कोई खास ऐसा अपराध तो नहीं था, लेकिन मुझे वह सब अच्छा नहीं लगा। "

देवदासने बहुत देर तक कुछ सोचनेके बाद कहा—तबसे अब तक फिर कोई यहाँ नहीं आया ?

" नहीं तबसे क्यों, बल्कि जिस दिन तुम यहाँसे गये हो, उसके दूसरे ही दिनसे यहाँ कोई नहीं आया। केवल चुन्नी बीच-बीचमें आ बैठते थे। लेकिन इधर दो महीनेसे उनका आना भी बन्द है। "

देवदास बिस्तरपर लेट गया। अन्यमनस्क भावसे बहुत देर चुप रहनेके बाद धीरेसे बोला— चन्द्रमुखी, तो फिर तुमने दूकानदारी सब उठा दी ?

" हाँ, दीवालिया हो गई हूँ।"

देवदासने उस बातका कोई उत्तर न देकर कहा—लेकिन तुम खाओगी क्या ?

" अभी तो बतलाया तुम्हें, कि जो कुछ गहने वगैरह थे वे सब बेच दिये हैं। "

" उसमेंसे अब कितना बचा है ?

" अधिक नहीं, प्रायः आठ नौ सौ रुपये इस समय मेरे पास हैं। एक बनियेके पास रख दिये हैं। वह मुझे हर महीने बीस रुपये दे देता है। "

" आगे तो बीस रुपयेमें तुम्हारा काम नहीं चलता था ? "

" हाँ, आज-कल भी अच्छी तरहसे नहीं चलता। तीन महीनेका किराया बाकी है। इसीलिए सोच रही हूँ कि हाथके ये दोनों कड़े भी बेचकर और सारा देना-पावना चुकाकर और कहीं चली जाऊँ। "

" कहाँ जाओगी ? "

" यह तो मैंने अभीतक निश्चय नहीं किया। किसी सस्ती जगहमें जाऊँगी,—किसी ऐसे गाँव-देहातमें जहाँ बीस रुपये महीनेमें सब काम चल जाय। "

" इतने दिनोंतक क्यों नहीं गई ? अगर सचमुच ही तुम्हें और किसी बातकी जरूरत नहीं है, तो इतने दिनोंतक व्यर्थ ही अपने सिरपर क्यों इतना कर्ज बढ़ाया ? "

चन्द्रमुखी सिर झुकाकर कुछ सोचने लगी। अपने जीवनमें इस बातके कहनेमें आज उसे पहले पहल लज्जा जान पड़ी। देवदासने कहा—क्यों, चुप क्यों हो ?

चन्द्रमुखीने पलंगके एक किनारे संकुचित भावसे बैठकर धीरे धीरे कहा—नाराज न होना। जानेसे पहले मैंने आशा की थी कि अगर एक बार तुमसे भेंट

हो जाय तो अच्छा हो। सोचती थी कि सम्भवतः एक बार अवश्य आओगे। आज तुम आ गये हो, इसलिए अब मैं कल ही यहाँसे चलनेका उद्योग करूँगी। लेकिन बतलाओगे कि कहाँ जाऊँ ?

देवदास चकित होकर उठ बैठा। उसने कहा—केवल मुझे देखनेकी आशासे अब तक रुकी हुई थीं ? लेकिन क्यों ?

" सिर्फ एक खयाल। तुम मुझसे बहुत घृणा करते थे, शायद इसीलिए। उतनी घृणा और कभी किसीने मुझसे नहीं की जितनी घृणा तुम मुझसे करते थे। यह तो मैं नहीं कह सकती कि आज तुम्हें वह बात याद होगी या नहीं; लेकिन, मुझे खूब अच्छी तरह याद है कि जिस दिन तुम पहले-पहल यहाँ आये थे, उसी दिन तुमपर मेरी दृष्टि पड़ी थी। यह मैं जानती थी कि तुम बहुत बड़े धनीके लड़के हो। लेकिन धनकी आशासे मैं तुम्हारी ओर आकृष्ट नहीं हुई। तुमसे पहले न जाने कितने लोग यहाँ आये-गये हैं, लेकिन, मैंने उनमेंसे किसीके भी भीतर कभी तेज नहीं देखा और तुमने आते ही मुझपर आघात किया,—एक अयाचित फिर भी उपयुक्त अनुचित रूखा व्यवहार किया। तुम मारे घृणाके मेरी ओरसे मुँह फेरे रहे और चलते समय तमाशेके तौरपर कुछ दे गये। वे सब बातें तुम्हें याद हैं ? "

देवदास चुप रहा। चन्द्रमुखी फिर कहने लगी—बस तभीसे मैंने तुमपर दृष्टि रक्खी। लेकिन प्रेम करके नहीं, घृणा करके भी नहीं। जिस तरह कोई नई चीज दिखाई पड़नेपर वह खूब याद रहती है, ठीक उसी तरह तुम्हें भी मैं किसी तरह नहीं भूल सकी। जब तुम आते थे, तब कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। इसके बाद न जाने क्या मति-भ्रम हो गया,—अपनी इन आँखोंसे मैं बहुत-सी चीजोंको एक और ही तरहसे देखने लग गई। जो कुछ पहले " मैं " थी, उससे अब बिलकुल बदल गई। मानों अब वह " मैं " नहीं रह गई। इसके बाद तुमने शराब पीना शुरू कर दिया। शराबसे मुझे बहुत घृणा है। कोई शराबसे मतवाला होता तो उसपर बहुत क्रोध आता। लेकिन तुम मतवाले होते तो क्रोध नहीं आता,—बहुत ही दुःख पाती।

यह कहकर चन्द्रमुखीने पैरोंपर हाथ रखकर छलछलाई हुई आँखोंसे कहा—मैं बहुत ही अधम हूँ। मेरे अपराधोंपर ध्यान न देना। तुम न जाने कितनी बातें कहते थे, कितनी घृणासे मुझे अपने पाससे हटा देते थे; लेकिन फिर भी मैं तुम्हारे उतने ही पास पहुँचना चाहती थी। अन्तमें जब तुम सो जाते थे,—

लेकिन उन सब बातोंको जाने दो, नहीं तो शायद फिर नाराज़ हो जाओगे।

देवदासने कोई उत्तर नहीं दिया। यह नये ढंगकी बातचीत उसे कुछ कष्ट पहुँचा रही थी। चन्द्रमुखीने छिपाकर अपनी आँखें पोंछीं और कहना आरम्भ किया—एक दिन तुमने कहा कि हम लोग कितना सहन करती हैं,—लांछना, अपमान, जघन्य अत्याचार, उपद्रव आदि। उसी दिनसे मुझे बहुत अभिमान हो गया है। तबसे मैंने सब कुछ बन्द कर दिया है।

देवदास उठकर बैठ गया। उसने पूछा—लेकिन तुम्हारे दिन किस तरह बीतेंगे?

चन्द्रमुखीने कहा—यह तो मैं पहले ही बतला चुकी हूँ।

"मान लो कि अगर वह तुम्हें धोखा दे और तुम्हारे सब रुपये—"

चन्द्रमुखी डरी नहीं। उसने शान्त और सहज भावसे कहा—यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मैंने वह भी सोच लिया है। जब विपत्ति आवेगी तब तुमसे कुछ भिक्षा माँग लूँगी।

देवदासने कुछ सोचकर कहा—अच्छा, माँग लेना। अब और कहीं जानेका उद्योग करो।

"बस कल ही करूँगी। दोनों कड़े बेचकर एक बार उस बनियेसे भेंट करूँगी।"

देवदासने जेबमेंसे सौ सौ रुपयेके पाँच नोट निकालकर तकियेसे नीचे रख दिये और कहा—तुम कड़े मत बेचो। हाँ, उस बनियेसे जरूर मिलो। लेकिन तुम जाओगी कहाँ? किसी तीर्थ-स्थानमें?

"नहीं देवदास, तीर्थ और धर्मपर मेरी उतनी अधिक श्रद्धा नहीं है। मैं कलकत्तेसे बहुत ज्यादा दूर नहीं जाऊँगी। पास ही किसी गाँवमें जाकर रहूँगी।"

"किसी भद्रपरिवारमें दासी-वृत्ति करोगी?"

चन्द्रमुखीकी आँखोंमें फिर जल भर आया। उसने आँखें पोंछते हुए कहा—नहीं, यह सब करनेको मेरा जी नहीं चाहता। मैं स्वाधीन रूपसे स्वच्छन्द होकर रहूँगी। दुःख भोगने क्यों जाऊँगी? शारीरिक कष्ट कभी सहा नहीं; अब भी नहीं सह सकूँगी। अधिक खींचा-तानी करनेसे शायद यह शरीर छिन्न-भिन्न हो जाय।

देवदास विषण्ण मुखसे कुछ हँसा, बोला—लेकिन शहरके पास रहनेसे सम्भव है कि फिर प्रलोभनमें पड़ जाओ।—मनुष्यके मनका कोई विश्वास नहीं।

अब चन्द्रमुखीका मुख प्रफुल्लित हो गया। वह हँसकर बोली—यह बात सच

है, मनुष्यके मनका कोई विश्वास नहीं, लेकिन मैं अब प्रलोभनोंमें नहीं पड़ूँगी। मैं यह भी मानती हूँ कि स्त्रियोंको बहुत अधिक लोभ होता है। लेकिन लोभकी जो वस्तुएँ हैं उनका जब मैंने जान-बूझकर और अपनी इच्छासे ही परित्याग कर दिया तो फिर अब मुझे कोई डर नहीं है। यदि मैं सहसा वे सब वस्तुएँ क्षणिक आवेशमें आकर छोड़ देती, तो, सम्भव है, कि सावधान होनेकी आवश्यकता होती। लेकिन इतने दिनोंमें एक दिन भी तो मुझे पश्चात्ताप नहीं करना पड़ा। मैं तो सुखसे हूँ।

फिर भी देवदासने सिर हिलाकर कहा—स्त्रियोंका मन चंचल और बहुत ही अविश्वसनीय होता है।

उस समय चन्द्रमुखी देवदासके बहुत ही पास आ बैठी और हाथ पकड़कर बोली—देवदास!

देवदास केवल उसके मुँहकी ओर देखता रहा, अब यह नहीं कह सका कि मुझे मत छूओ।

चन्द्रमुखीने स्नेहपूर्ण नेत्रोंसे उसके दोनों हाथ लेकर अपनी गोदमें खींच लिये और कुछ कम्पित स्वरमें कहा—आज अन्तिम दिन है, आज तुम नाराज न होना। तुमसे एक बात पूछनेकी मुझे बड़ी साध है।

यह कहकर चन्द्रमुखीने कुछ देर तक स्थिर दृष्टिसे देवदासके मुखकी ओर देखते रहकर पूछा—क्या पार्वतीने तुम्हें बहुत अधिक आघात पहुँचाया है?

देवदासकी भौंहें तन गईं। उसने कहा—यह बात क्यों पूछती हो?

चन्द्रमुखी विचलित नहीं हुई। उसने शान्त और दृढ स्वरसे कहा—मुझे इसके जाननेकी जरूरत है। तुमसे सच कहती हूँ, जब तुम दुःखी होते हो तब मुझे भी बहुत चोट लगती है। इसके सिवाय, शायद, मैं तुम्हारी बहुत-सी बातें जानती हूँ। बीच बीचमें नशेकी बहकमें मैंने तुम्हारे मुँहसे बहुत-सी बातें सुनी हैं। लेकिन फिर भी मुझे विश्वास नहीं होता कि पार्वतीने तुम्हें धोखा दिया है। बल्कि मेरा तो खयाल है कि स्वयं तुमने अपने आपको धोखा दिया है। देवदास, मैं अवस्थामें तुमसे बड़ी हूँ। मैंने इस संसारमें बहुत-सी चीजें देखी हैं। तुम जानते हो कि मुझे क्या खयाल होता है? मेरी समझमें यह आता है कि निश्चय ही तुम्हारी भूल हुई है। मेरी समझमें स्त्रियोंकी जो यह बहुत बड़ी बदनामी है कि वे बहुत ही चंचल तथा अस्थिर-चित्त हुआ करती हैं, सो ठीक नहीं। वे उतनी अधिक बदनामीके योग्य नहीं हैं। उनकी बदनामी भी तुम्हीं लोग करते हो

और नेकनामी भी तुम्हीं लोग करते हो। तुम लोग जो कुछ कहना चाहते हो, वह अनायास ही कह जाते हो। लेकिन वे लोग तो कुछ कह नहीं सकतीं! वे अपने मनकी बात प्रकट नहीं कर सकतीं। यदि वे कह भी सकतीं तो भी कोई नहीं समझता। क्योंकि उनकी बातें बहुत ही अस्पष्ट होती हैं और तुम लोगोंके मुखके आगे उनकी वे सब बातें दब जाती हैं। इसके बाद उनकी बदनामी ही लोगोंके सम्मुख स्पष्ट हो जाती है।

चन्द्रमुखी कुछ रुककर और अपना कंठ-स्वर अधिक परिष्कृत करके कहने लगी—मैंने इस जीवनमें प्रेमका व्यवसाय बहुत दिनोंतक किया है; लेकिन वास्तवमें केवल एक ही बार मैंने प्रेम किया है और उस प्रेमका मूल्य बहुत अधिक है। मैंने बहुत कुछ सीखा है। जानते तो हो कि प्रेम करना और बात है और रूपका मोह कुछ और बात। इन दोनोंमें बहुत अधिक गड़बड़ी होती है; और पुरुष ही वह अधिक गड़बड़ी करते हैं। रूपका मोह तुम लोगोंकी अपेक्षा हम लोगोंमें बहुत ही कम होता है; इसीलिए, तुम लोगोंकी तरह हम लोग उन्मत्त नहीं हो जातीं। तुम लोग आकर अपना प्रेम जतलाते हो,—न जाने कितनी तरहकी बातों और भावोंमें जब उसे प्रकट करते हो, तब हम लोग चुप ही रहती हैं। प्रायः ऐसा होता है कि तुम लोगोंके मनको क्लेश पहुँचानेमें हम लोगोंको लज्जा आती है, दुःख होता है, संकोच होता है। मुँह देखनेमें भी जब घृणा होती है, तब भी कदाचित् लज्जाके कारण कह नहीं सकतीं कि हम तुम्हें प्रेम नहीं कर सकेंगीं। इसके बाद एक बाह्य प्रणयका अभिनय आरम्भ होता है। फिर एक दिन जब उसका अन्त हो जाता है तब पुरुष क्रुद्ध और अस्थिर होकर कहते हैं कि कैसी विश्वासघातिनी है!—बस, सब वही बात सुनते हैं और उसीपर विश्वास कर लेते हैं। हम लोग उस समय भी चुप ही रहती हैं। मनमें न जाने कितना दुःख होता है! लेकिन उसे कौन देखने जाता है?

देवदासने कोई बात नहीं कही। चन्द्रमुखी भी कुछ देरतक चुपचाप उसके मुँहकी ओर देखती रही। फिर बोली—उस समय कदाचित् कुछ ममता उत्पन्न हो जाती है। स्त्रियाँ समझती हैं कि कदाचित् यही प्रेम है। वे शान्त और धीर भावसे संसारके सब काम-धन्धे करती हैं, दुःखके समय प्राणपणसे सहायता करती हैं। उस समय तुम लोग उनकी कितनी सुख्याति करते हो! बात-बातमें उन्हें कितना धन्य कहते हो! लेकिन सम्भवतः उस समय भी उन्हें प्रेमका अक्षर-ज्ञान तक नहीं होता। इसके बाद जब किसी अशुभ मुहूर्तमें उनके हृदयके अन्दरकी

असह्य वेदना छटपटाती हुई बाहर आकर खड़ी हो जाती है, तब—"

इतना कहकर चन्द्रमुखीने देवदासके मुखकी ओर तीव्र दृष्टिसे देखा और कहा—तब तुम लोग चिल्लाकार कहने लगते हो, "कलंकिनी ! छीः छीः !"

अकस्मात् देवदासने चन्द्रमुखीका मुँह हाथसे बन्द करते हुए कहा—चन्द्रमुखी, यह क्या ?

चन्द्रमुखीने धीरेसे उसका हाथ हटाते हुए कहा—तुम डरो मत देवदास, मैं तुम्हारी पार्वतीकी बात नहीं कह रही हूँ।

यह कहकर वह चुप हो गई। देवदासने भी कुछ देरतक चुप रहनेके बाद अन्यमनस्क भावसे कहा—किन्तु कर्तव्य तो है ! धर्माधर्म तो है !

चन्द्रमुखीने कहा—वह तो है ही। और है, इसीलिए तो देवदास, जो यथार्थ प्रेम करता है, वह सहन किया करता है। जिसे मालूम हो जाता है कि भीतरसे केवल प्रेम करनेसे ही कितना सुख होता है, कितनी तृप्ति होती है, वह व्यर्थ ही अपनी गृहस्थीमें दुःख और अशान्ति नहीं लाना चाहता। लेकिन देवदास, मैं क्या कह रही थी ?—मैं निश्चित रूपसे जानती हूँ कि पार्वतीने तुम्हें तनिक भी धोखा नहीं दिया, तुमने अपने आपको ही धोखा दिया है। मैं जानती हूँ कि आज यह बात समझना तुम्हारे लिए सम्भव नहीं है। किन्तु, यदि कभी समय आवेगा तो शायद तुम देख सकोगे कि मैंने इस समय जो कुछ कहा है वह ठीक है।

देवदासकी दोनों आँखोंमें जल भर आया। आज न जाने क्यों वह समझने लगा कि चन्द्रमुखीका कहना ठीक है। चन्द्रमुखीने देख लिया कि देवदासकी आँखोंमें जल भर आया है, लेकिन उसने उसे पोंछनेका प्रयत्न नहीं किया। वह मन ही मन कहने लगी—मैंने तुम्हें अनेक बार अनेक प्रकारसे देखा है। मैं तुम्हारे मनका हाल जानती हूँ। मैंने खूब अच्छी तरह समझ लिया है कि तुम साधारण पुरुषोंकी तरह अपनी इच्छासे प्रेम प्रकट नहीं कर सकोगे। रही रूपकी बात, सो वह किसे अच्छा नहीं लगता ? लेकिन फिर भी किसी तरह इस बातपर विश्वास नहीं होता कि केवल इसीलिए तुम अपना इतना अधिक तेज रूपके चरणोंपर विसर्जित कर दोगे। हो सकता है कि पार्वती बहुत अधिक रूपवती हो। लेकिन फिर भी, जान पड़ता है कि, पहले वही तुम्हारे प्रेममें पड़ी थी और पहले उसीने तुमपर यह बात प्रकट की थी।

मन ही मन ये सब बातें कहते कहते सहसा उसके मुखसे अस्फुट स्वरमें निकल

गया—अपनेपरसे ही मैंने समझा है कि वह तुम्हें कितना प्यार करती है!

देवदास जल्दीसे उठकर बैठ गया और बोला—क्या कहा?

चन्द्रमुखीने कहा—कुछ नहीं। मैं यही कह रही थी कि वह तुम्हारे रूपपर नहीं भूली थी। इसमें सन्देह नहीं कि तुममें रूप है, लेकिन उसपर कोई भूल नहीं सकता। फिर यह तीव्र और रूक्ष रूप सबको दिखाई भी नहीं देता। लेकिन, जिसे दिख जाता है वह आँखें फिर हटा भी नहीं सकता।

यह कहकर चन्द्रमुखीने ठंढी साँस ली और फिर कहा—जिसने कभी तुम्हें प्यार किया है, वही जानती है कि तुममें कितना अधिक आकर्षण है। इस स्वर्गसे अपनी इच्छा और शौकसे वापस आ सके, ऐसी स्त्री क्या कोई इस पृथ्वीपर है?

फिर कुछ देर तक चुपचाप उसके मुँहकी ओर देखती हुई धीरे धीरे कहने लगी—यह रूप आँखोंसे तो दिखाई देता नहीं, हृदयके ठीक भीतरी भागमें इसकी गहरी छाया पड़ती है। इसके बाद दिनका अन्त होनेपर वह आगके साथ ही चितापर जलकर राख हो जाता है।

देवदासने विह्वल दृष्टिसे चन्द्रमुखीके मुखकी ओर देखकर पूछा—आज तुम यह सब क्या कह रही हो?

चन्द्रमुखीने मुस्कराकर कहा—देवदास, इससे बढ़कर आफतकी बात और कोई नहीं हो सकती कि आदमी जिसे प्यार न करता हो, वही जबरदस्ती प्यारकी कहानी सुनाने बैठ जाय! लेकिन मैं सिर्फ पार्वतीकी तरफसे वकालत कर रही थी, अपने लिए नहीं।

देवदास उठनेके लिए उद्यत होकर बोला—अब मैं जाता हूँ।

“ जरा और बैठो। कभी तुम्हें होशमें नहीं पाया, कभी इस तरह तुम्हारे दोनों हाथ पकड़कर बातें नहीं कर सकी,—यह कैसी तृप्ति है!” इतना कहकर वह हठात् हँस पड़ी।

देवदासने चकित होकर वूछा—तुम हँस क्यों पड़ीं?

“ कुछ नहीं, यों ही एक पुरानी बात याद हो आई। वह आज दस बरस पहलेकी बात है जब मैं प्रेमके फेरमें अपना घरबार छोड़कर चली आई थी। उस समय समझती थी कि मैं कितना अधिक प्रेम करती हूँ और शायद इसके लिए अपने प्राण तक दे सकती हूँ। इसके बाद एक दिन एक तुच्छ गहनेके लिए हम दोनोंमें ऐसा झगड़ा हो गया कि फिर कभी किसीने एक दूसरेका मुँह न देखा। तब मनको सान्त्वना दी कि वह मुझे बिलकुल प्यार नहीं करता था, अन्यथा

क्या एक गहना न देता ? ”

चन्द्रमुखी फिर एक बार यों ही हँस पड़ी। परन्तु, फिर तुरन्त ही शान्त और गम्भीर मुखसे धीरेसे बोली—चूल्हेमें जाय गहना! उस समय कहाँ जानती थी कि एक सामान्य सिरका दर्द अच्छा कर देनेके बदलेमें भी अकातर भावसे यह प्राण तक दिये जा सकते हैं! उस समय न सीता और दमयन्तीकी व्यथा समझती थी और न मैं जगाई-मधाईकी कथापर ही विश्वास करती थी *। अच्छा देवदास, इस जगतमें सभी कुछ सम्भव है न ?

देवदास कुछ भी न कह सका। हत-बुद्धिकी तरह कुछ देरतक टक लगाकर देखता रहा और बोला—अब मैं जाता हूँ।

“ डर क्या है! जरा और बैठो। मैं तुम्हें और भुलाकर नहीं रखना चाहती,—मेरे वे दिन बीत गये। अब तो जितनी घृणा तुम मुझपर करते हो, मैं भी उतनी ही घृणा अपने आपपर करती हूँ। लेकिन देवदास, तुम ब्याह क्यों नहीं कर लेते ? ”

इतनी देरमें मानो देवदासने साँस ली। उसने कुछ हँसकर कहा—उचित तो जान पड़ता है, लेकिन प्रवृत्ति नहीं होती।

“ प्रवृत्ति न होनेपर भी ब्याह कर डालो। बाल-बच्चोंका मुख देखनेसे बहुत-कुछ शान्ति पाओगे। इसके सिवा मेरे लिए भी एक रास्ता निकल आवेगा।

---

* जगाई और मधाई नवद्वीपके दो दुष्ट ब्राह्मण थे जिन्हें वहाँके काजीने कोतवाल बना दिया था। इनके अत्याचारोंसे प्रजा बहुत ही दुखी रहती थी। श्री गौरांग महाप्रभुके नित्यानन्द और हरिदास नामक दो शिष्य नगरमें नामप्रचार करते फिरते थे। उस समय जगाई और मधाई उन्हें मार्गमें मिले। उन्हें देखकर नित्यानन्दको इस बातका बहुत दुःख हुआ कि ये दोनों ब्राह्मणके लड़के होकर भी इतना पाप और अत्याचार करते हैं। इनका किसी प्रकार उद्धार करना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने हाथ जोड़कर उन दोनोंसे कहा कि भाई, एक बार हरि-नाम कहो। दोनों ही उस समय नशेमें चूर थे। मधाईने मारे क्रोधके पास ही पड़ा हुआ मिट्टीका एक फूटा घड़ा उठाकर नित्यानन्दके सिरपर मारा जिससे खून बहने लगा। फिर भी नित्यानन्दने उसके पैरोंपर गिरकर हरि-नाम कहनेकी प्रार्थना की। उसी समय गौरांग महाप्रभु भी यह समाचार सुनकर अपने शिष्योंसहित वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देखकर जगाई और मधाई उनके चरणोंपर गिर पड़े और तभीसे गौरांग महाप्रभुके शिष्य तथा परम भक्त हो गये; और अपने सब काम छोड़कर ईश्वर-भक्तोंकी सेवा करने लगे।—अनुवादक।

तुम्हारी गृहस्थीमें दासीकी तरह रहकर सुखसे अपने दिन बिता सकूँगी।"

देवदासने हँसते हुए कहा—अच्छा, उस समय मैं तुम्हें बुलवा भेजूँगा।

चन्द्रमुखी मानों उसकी वह हँसी देख ही नहीं सकी और बोली—जी चाहता है कि तुमसे एक बात और भी पूछूँ।

"क्या?"

"तुमने इतनी देरतक मेरे साथ बातें क्यों कीं?"

"क्यों, इसमें कोई दोष है?"

"यह तो मैं नहीं जानती। लेकिन यह नई बात जरूर है। इसके पहले जब तक तुम शराब पीकर नशेमें चूर नहीं हो जाते थे, तब तक कभी मेरा मुँह नहीं देखते थे।"

देवदासने चन्द्रमुखीके इस प्रश्नका कोई उत्तर न देकर विषन्न मुखसे कहा—अब मैं शराब नहीं छूता। मेरे पिताजीकी मृत्यु हो गई है।

चन्द्रमुखी बहुत देरतक करुण दृष्टिसे देखती रही, फिर बोली—इसके बाद तो शराब नहीं पीओगे?

"कह नहीं सकता।"

चन्द्रमुखीने उसके दोनों हाथ और भी अपनी तरफ खींचकर अश्रु-व्याकुल स्वरसे कहा—अगर हो सके तो सदाके लिए छोड़ दो। देखो, असमयमें ऐसे सुन्दर प्राण नष्ट न करो।

देवदास सहसा उठकर खड़ा हो गया और बोला—मैं जाता हूँ। तुम जहाँ जाना वहाँसे खबर भेजना और यदि कभी जरूरत हो तो मुझसे संकोच मत करना।

चन्द्रमुखीने प्रणाम करके उसके चरणोंकी धूल मस्तकपर लगाई और कहा—आशीर्वाद दो कि मैं सुखी रहूँ। एक भिक्षा और माँगती हूँ। ईश्वर न करे, यदि कभी दासीकी आवश्यकता हो तो इसे स्मरण करना।

"अच्छा।" कहकर देवदास चला गया। चन्द्रमुखीने दोनों हाथ जोड़कर रोते हुए कहा—भगवान्, फिर एक बार किसी तरह इनसे भेंट हो।

---

## चौदहवाँ परिच्छेद

प्रायः दो वर्ष बीत गये। महेन्द्रका विवाह करके पार्वती बहुत कुछ निश्चित हो गई है। पुत्रवधू जलदबाला बुद्धिमती और कार्यपटु है। उसके बदले संसारके बहुत-से काम वही करती है। पार्वतीने अब दूसरी ओर मन लगाया है। उसका ब्याह हुए पाँच वर्ष हो गये, लेकिन कोई सन्तान नहीं हुई। उसके अपने लड़के-बाले नहीं हैं, इसीलिए दूसरोंके लड़के-बच्चोंपर उसका बहुत अधिक अनुराग है। गरीबों और दुःखियोंकी बात तो दूर रही, जिन लोगोंके खाने-पीनेका कुछ ठिकाना है, उनके बाल-बच्चोंका भी अधिकांश व्यय उसने अपने ऊपर ले लिया है। इसके सिवा देव-मंदिरका काम-धन्धा करके, साधु-संन्यासियोंकी सेवा करके और अन्धों तथा लूले-लँगड़ोंकी परिचर्या करके उसके दिन कट रहे हैं। अपने स्वामीसे कह कर पार्वतीने एक और अतिथिशाला बनवा ली है। उसमें निराश्रय और असहाय लोग इच्छानुसार रह सकते हैं। जमींदारके यहाँसे ही उन लोगोंको खाने और पहननेको मिलता है। इसके सिवा एक और काम पार्वती बहुत ही गुप्त रूपसे किया करती है,—स्वामीको भी उसकी खबर नहीं होने देती। वह दरिद्र भले आदमियोंको चुपचाप आर्थिक सहायता देती है। यह उसका खुद अपना खर्च था। अपने स्वामीसे वह प्रति मास जो कुछ पाती है, वह सब इसीमें खर्च कर देती है। लेकिन चाहे जिस तरहसे और जो कुछ खर्च होता है, उसका पता कचहरीके नायब-गुमाश्तोंको लगे बिना नहीं रहता। वे लोग आपसमें इस बारेमें बकझक किया करते हैं और दासियाँ छुपकर सुन आती हैं कि आज-कल गृहस्थीका खर्च पहलेसे दूना हो गया है। तहवील बिल्कुल खाली है,—कुछ भी जमा नहीं हो रहा है। जब गृहस्थीका व्यर्थका खर्च बहुत बढ़ जाता है तब वह मानों दास-दासियोंको मर्मभेदी होता है! उन्हींसे जलदने भी ये सब बातें सुनीं। एक रोज रातको उसने अपने पतिसे कहा—क्या तुम घरके कोई नहीं हो?

महेन्द्रने पूछा—क्यों, आखिर बात क्या है?

स्त्रीने कहा—दास-दासियाँ तक देख रही हैं, तुम नहीं देख सकते? बाबूजी तो नई-बहू-गत प्राण हो रहे हैं। वे तो उन्हें कुछ कहेंगे नहीं; लेकिन, तुम्हें तो कहना उचित है?

महेन्द्रकी समझमें कुछ न आया। किन्तु उसकी उत्सुकता बढ़ गई, उसने पूछा—आखिर बात क्या है?

जलदबाला गम्भीर होकर स्वामीको मन्त्रणा देने लगी—नई माँके लड़के-बाले तो हैं नहीं। फिर उन्हें गृहस्थीका ध्यान क्यों होने लगा ? तुम देख नहीं रहे हो कि उन्होंने सब कुछ उड़ा-उड़ दिया।

महेन्द्रने भौंहें सिकोड़कर कहा—किस तरह ?

जलदने कहा—अगर तुम्हें आँखें होतीं तो देख सकते। आज-कल गृहस्थीका खर्च दूना हो गया है। सदाव्रत, दान-पुण्य, अतिथि, भिक्षुक सभी कुछ तो हैं। अच्छा, वे तो अपना परलोक सुधार रही हैं, लेकिन तुम्हारे तो आगे बालबच्चे होंगे, वे क्या खायँगे ? अपना सब लुट जानेपर क्या वे लोग अन्तमें भीख माँगेंगे ?

महेन्द्र पलंगपर उठकर बैठ गया और बोला—तुम किसकी बात कह रही हो ? माँकी ?

जलदने कहा—मेरी तकदीर ही फूट गई है जो सब बातें मुझे मुँह खोल कर कहनी पड़ीं !

महेन्द्रने कहा—इसीलिए तुम माँके नाम फरियाद करने आई हो ?

जलदने कुछ नाराज़ होकर कहा—मुझे नालिश-फरियादकी ज़रूरत नहीं है। मैंने तुम्हें सिर्फ भीतरी बात बतला दी है। नहीं तो अन्तमें तुम मुझे ही दोष देते।

महेन्द्रने बहुत देर तक चुप रहनेके बाद कहा—तुम्हारे बापके घर हाँड़ी तक तो रोज चढ़ती नहीं; तुम जमींदारोंके घरके खर्चका हाल क्या जानो !

इसपर जलदको गुस्सा आ गया। बोली—और तुम्हारी माँके बापके घर कितनी अतिथिशालायें खुली हैं, कहो न ?

महेन्द्र बिना उससे विशेष तर्क-वितर्क किये चुपचाप पड़ा रहा। सवेरे उठकर पार्वतीके पास पहुँचकर बोला—माँ, तुमने भी मेरा खूब ब्याह किया ! इसके साथ तो गृहस्थी चलाई ही नहीं जा सकती। मैं तो अब कलकत्ते जाता हूँ।

पार्वतीने अवाक् होकर पूछा—क्यों बेटा ?

"वह तुम्हारे बारेमें कड़वी बातें कहती है। मैंने उसे छोड़ दिया।"

पार्वती इधर कुछ ही दिनोंसे बड़ी बहूका रंग-ढंग देख रही थी। लेकिन उस भावको दबाकर उसने हँसते हुए कहा—छीः बेटा, वह तो मेरी बहुत अच्छी लड़की है।

इसके बाद उसने जलदको एकान्तमें बुलाकर कहा—क्यों बेटी, कुछ झगड़ा हुआ है ?

सवेरेसे ही जलद अपने स्वामीकी कलकत्ता-यात्राका आयोजन देखकर मन ही

मन डर रही थी। सासकी बात सुनकर रोने लगी और बोली—माँ, दोष मेरा ही है। लेकिन ये नौकरानियाँ ही खरच-बरचके बारेमें तरह तरहकी बातें किया करती हैं।

पार्वतीने सब बातें सुनीं। उसने स्वयं ही लज्जित होकर बहूकी आँखें पोंछीं और कहा—बहू, तुम ठीक कहती हो। लेकिन बेटी, मैं वैसी गृहस्थिनि नहीं हूँ; इसीलिए खरच-बरचका मुझे उतना ज्यादा खयाल नहीं था।

इसके बाद उसने महेन्द्रको बुलाकर कहा—बेटा, तुम बिना अपराधके क्रोध मत करो। तुम स्वामी हो। तुम्हारी मंगल-कामनाके आगे स्त्रीके लिए और सब बातें तुच्छ होना ही उचित है। बहू तुम्हारी लक्ष्मी है।

लेकिन उसी दिनसे पार्वतीने अपना हाथ खींचना शुरू कर दिया। अब अतिथिशाला और देवमन्दिरकी पहलेकी तरह सेवा नहीं होती। बहुतसे अनाथ-अन्धे और साधु-फकीर यों ही वापस चले जाते हैं। घरके मालिकने यह सुनकर पार्वतीको बुलाकर पूछा—क्यों जी, क्या लक्ष्मीका भांडार खतम हो गया?

पार्वतीने हँसते हुए कहा—सिर्फ देते रहनेसे कहाँ तक काम चलेगा? कुछ दिन जमा भी तो करना चाहिए। देखते नहीं हो, खर्च कितना बढ़ गया है?

"बढ़ने दो। अब मुझे और कितने दिन जीना है? जो थोड़ेसे दिन हैं उनमें सत्कर्म करके परलोककी तरफ देखना ही उचित है।"

पार्वतीने हँसकर कहा—यह तो बहुत ही स्वार्थपरोंकी-सी बात है। केवल अपना ही खयाल रक्खोगे और लड़के-बालोंको यों ही बह जाने दोगे? कुछ दिनों तक और चुप रहो। उसके बाद फिर सब होगा। आदमीके काम तो कभी खतम हो नहीं जाते?

चौधरी महाशय लाचार हो गये।

पार्वतीका काम-धन्धा अब कम हो गया, इसीलिए उसकी चिन्ताएँ कुछ अधिक बढ़ गईं। लेकिन सभी चिन्ताओंका एक अलग ढंग है। जिसे कुछ आशा है, वह एक तरहसे सोचता है; और जिसे कोई आशा नहीं होती, वह कुछ और ही प्रकारसे सोचता है। पूर्वोक्त चिन्तामें सजीवता है, सुख है, तृप्ति है, दुःख है और उत्कंठा है। इसीलिए वह मनुष्यको श्रान्त कर देती है,—वह अधिक समयतक नहीं सोच सकता। लेकिन आशाहीनको न तो सुख है, न दुःख है, न उत्कंठा है, फिर भी तृप्ति है। उसकी आँखोंसे जल भी गिरता है, उसमें गम्भीरता भी होती है, लेकिन वह चिन्ता नित्य नये सिरेसे उसका मर्म-भेद नहीं

करती। वह हलके मेघकी तरह जहाँ तहाँ तैरती रहती है। जहाँ हवा नहीं लगती वहाँ ठहरती है; और जहाँ लगती है, वहाँसे खिसक जाती है। तन्मय मन उद्वेगहीन चिन्तामें एक सार्थकता प्राप्त करता है। पार्वतीका भी आज-कल ठीक वही हुआ है। जब वह पूजा आदि नित्य-कर्म करने बैठती है तब उसका उद्देश्य-हीन और हताश मन चटसे तालसोनापुरकी बाँसकी झाड़ियों, आमके बगीचों, पाठशाला और तलाबके घाट आदिका चक्कर लगा आता है। और कभी कभी किसी ऐसे स्थानमें छिप जाता है कि पार्वती स्वयं अपने आपको ही ढूँढ़ नहीं पाती। आगे शायद कभी कभी उसके होठोंके कोनोंपर हँसी भी आ ज़ाया करती थी लेकिन आज-कल तो उसकी आँखोंसे टपसे एक बूँद जल गिरकर पंचपात्रके जलमें मिल जाता है। तो भी दिन कट ही रहे हैं। काम-धन्धा करने, मीठी बातें कहने और परोपकार तथा सेवा-शुश्रूषा करनेमें दिन कट जाते हैं और सब-कुछ भूलकर ध्यानमग्ना योगिनीकी तरह रहनेमें भी कट जाते हैं। कोई उसे कहता है लक्ष्मी-स्वरूपा अन्नपूर्णा और कोई कहता है अन्यमनस्का उदासिनी। लेकिन कल सवेरेसे उसमें एक और ही प्रकारका परिवर्तन दिखाई दे रहा है। वह मानों कुछ तीव्र और कुछ कठोर हो गई है। परिपूर्ण और ज्वारवाली गंगामें मानों अचानक कहींसे भाटा आ गया है। घरका कोई आदमी उसका कारण नहीं जानता, केवल हम जानते हैं। मनोरमाने कल गाँवसे एक पत्र लिखा है। वह इस प्रकार है—

" पार्वती, इधर बहुत दिनोंसे हम लोगोंमेंसे किसीने भी एक दूसरीको कोई पत्र नहीं लिखा है। इसलिए दोष दोनोंका ही हुआ है। मैं चाहती हूँ कि एक समझौता हो जाय। दोनों ही अपना अपना दोष स्वीकार करके अपनी अपनी नाराजीको कम करें। लेकिन मैं बड़ी हूँ, इसलिए मैं ही मान-भिक्षा माँग लेती हूँ। मैं आशा करती हूँ कि तुम शीघ्र ही उत्तर दोगी। आज प्रायः एक मास हुआ है मुझे यहाँ आये हुए। हम लोग गृहस्थके घरकी स्त्रियाँ ठहरीं, इसीलिए शारीरिक अच्छाई और बुराईपर उतना ध्यान नहीं देतीं। मर जानेपर कहती हैं कि गंगा-लाभ हुआ है; और जब जीती हैं तब कहती हैं कि अच्छी हैं। मैं भी इसीलिए अच्छी हूँ। लेकिन यह तो हुई स्वयं अपनी बात। कुछ इधर-उधरकी बात भी हो। इधर-उधरकी कोई ऐसी खास बात नहीं है। तो भी एक संवाद तुम्हें सुनानेकी बहुत इच्छा हो रही है। कलसे ही सोच रही हूँ कि तुम्हें यह समाचार दूँ या न दूँ; तो भी, मुझसे रहा नहीं जाता। मानो मारीचकी-सी दशा

हो रही है। देवदासका हाल सुनकर तुम्हें तो दुःख होगा ही लेकिन तुम्हारी अवस्थाका ध्यान करके मैं भी बिना रोये नहीं रह सकती। भगवानने बहुत ही रक्षा की; नहीं तो तुम्हारे जैसी आत्माभिमानिनी अगर उसके हाथमें पड़ती तो या तो अबतक गंगामें डूब मरती या जहर खा लेती। और रहा उसका हाल, सो आज सुनो तो भी सुनोगी और दो दिन बाद सुनो तो भी सुनोगी। क्योंकि जो बात सारे संसारके लोग जानते हैं, उसे क्या छिपाना?

"आज छः-सात दिन हुए, देवदास यहाँ आया है। तुम यह तो जानती ही हो कि जमींदारिन काशीवास करती हैं और देवदास कलकत्ता-वासी हो गया है। यह घर आया है, सिर्फ अपने बड़े भाईके साथ झगड़ा करने और रुपये लेने। सुना है कि वह इसी तरह बीच-बीचमें आया करता है और जब तक रुपयोंका इन्तज़ाम नहीं हो जाता तब तक ठहरता है; रुपये मिलते ही चला जाता है।

"उसके पिताको मरे ढाई बरस हो गये। तुम्हें यह सुनकर आश्चर्य होगा कि इतने ही समयमें उसने अपनी प्रायः आधी सम्पत्ति उड़ा दी है। द्विजदास तो बहुत ही हिसाबसे रहनेवाला आदमी है, इसीलिए उसने पैतृक सम्पत्ति किसी प्रकार अपने ही हाथमें रक्खी है। नहीं तो इतने दिनोंमें उसे भी दस आदमी मिलकर लूट लेते। जो मद्य और वेश्याओंमें सर्वस्वान्त हो रहा है, उसकी कौन रक्षा करेगा? एक यमराज ही कर सकता है। और मालूम होता है, कि उसमें भी अब अधिक विलम्ब नहीं है। खैरियत यही है कि उसने ब्याह नहीं किया।

"हाय, दुःख भी होता है! न तो अब वह सोनेका-सा रंग है, न वह रूप है और न वह श्री ही है। मालूम होता है कि यह और ही कोई है। सिरके रूखे बाल हवामें इधर-उधर उड़ते रहते हैं, आँखें गढ़ेमें धँस गई हैं और नाक खाँड़ेकी तरह आगे निकल आई है। अब मैं तुम्हें क्या बतलाऊँ कि वह कैसा कुत्सित हो गया है। देखनेसे घृणा होती है और डर लगता है। दिन-भर नदी किनारे बाँधपर बन्दूक हाथमें लिये चिड़ियाँ मारता फिरता है और जब धूपमें सिर घूमने लगता है तब बाँधपर उसी बेरके पेड़के नीचे सिर नीचा करके बैठा रहता है। सन्ध्या हो जानेपर घर आकर शराब पीता है। और रातको सोता है या घूमता-फिरता रहता है, यह भगवान ही जानें।

"उस दिन सन्ध्याको मैं नदीसे जल लाने गई थी। देखा कि देवदास हाथमें बन्दूक लिये किनारे किनारे सूखा हुआ मुँह लिये चला जा रहा है। जब मुझे पहचाना, तो पास आकर खड़ा हो गया। मैं तो मारे डरके मर गई। घाटपर

कहीं कोई नहीं था,—उस दिन मैं अपने आपेमें नहीं रह गई। भगवानने बहुत ही रक्षा की कि उस दिन उसने पागलपन या बदमाशी नहीं की। उसने बिलकुल निरीह और भले आदमियोंकी तरह शान्त भावसे पूछा—क्यों मनो, अच्छी तो हो बहन !

"उस समय और क्या करती ! डरते डरते सिर हिलाकर कह दिया—हूँ।

"तब उसने एक ठंढी साँस लेकर कहा—तुम सुखी रहो बहन, तुम लोगोंको देखनेसे मुझे बहुत आनन्द होता है। इसके बाद धीरे धीरे चला गया। मैं उठती थी तो गिर गिर पड़ती थी। फिर भी शरीरकी सारी शक्ति लगाकर भागी। मइया री ! बड़े भाग्य थे कि उसने कहीं मेरा हाथ-वाथ नहीं पकड़ लिया। अच्छा, अब उसकी बातें जाने दो। अगर मैं उस दुर्वृत्तका सब वृत्तान्त लिखने लगूँ तो इस चिट्ठीमें पूरा नहीं आ सकता।

"बहन, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिया न ? अगर आज तक भी तुम उसे नहीं भूली हो, तो तुम्हें कष्ट तो होगा ही, लेकिन उपाय ही क्या है ? और इसके लिए अगर मुझसे कोई अपराध हुआ हो, तो अपने गुणोंसे अपनी स्नेहाकांक्षिणी मनो बहनको क्षमा कर देना।"

कल ही यह पत्र आया था। आज उसने महेन्द्रको बुलाकर कहा—दो पालकियाँ और बत्तीस कहार चाहिएँ। मैं इसी समय तालसोनापुर जाऊँगी।

महेन्द्रने चकित होकर पूछा—पालकियाँ और कहार तो मैं ला देता हूँ, लेकिन माँ, दो पालकियाँ क्या होंगीं ?

पार्वतीने कहा—बेटा, तुम्हें भी संग चलना होगा। अगर रास्तेमें कहीं मर गई तो मुँहमें आग लगानेके लिए बड़े लड़केकी आवश्यकता होगी।

महेन्द्रने फिर कुछ भी नहीं कहा। पालकियाँ आनेपर दोनोंने वहाँसे प्रस्थान किया।

जब चौधरी महाशयने सुना तब घबराकर नौकरों और दासियोंसे पूछा; लेकिन कोई भी कारण न बतला सका। आखिर उन्होंने अक्ल खर्च करके और भी दस-पाँच दरबानों और दास-दासियोंको भेज दिया।

एक सिपाहीने पूछा—अगर रास्तेमें भेंट हो जाय तो क्या पालकी लौटा लावें ?

उन्होंने कुछ सोच-समझकर कहा—नहीं, इसकी जरूरत नहीं। तुम लोग उनके साथ चले जाना जिसमें रास्तेमें कोई आफत-वाफत न आवे।

उसी दिन सन्ध्याके बाद दोनों पालकियाँ तालसोनापुर जा पहुँचीं। लेकिन देवदास गाँवमें नहीं था, उसी दिन दोपहरको कलकत्ते चला गया था।

पार्वतीने अपना माथा ठोंककर कहा—भाग्य ! और फिर मनोरमाके साथ भेंट की।

मनोरमाने पूछा—क्यों पारो, क्या देवदाससे मिलने आई थीं ?

पार्वतीने कहा—नहीं, अपने साथ ले जानेके लिए आई थी। यहाँ तो उनका कोई अपना है नहीं।

मनोरमा अवाक् हो गई। उसने कहा—हैं ! यह क्या कह रही हो ! लाज नहीं आती ?

" लाज काहेकी ? अपनी चीज आप ले जाऊँगी, इसमें लाज काहेकी ? "

" छीः छीः। यह कैसी बातें करती हो ! तुम्हारा तो कोई रिश्ता-नाता तक नहीं है। ऐसी बात कभी मुँहपर भी न लाना ! "

पार्वतीने म्लान हँसी हँसकर कहा—मनो बहन, होश सँभालनेके दिनसे जो बात मनके अन्दर बस रही है, वह एकाध बार मुँहसे भी निकल जाती है। तुम मेरी बहन हो, इसीलिए तुमने यह बात सुन ली।

दूसरे दिन प्रातःकाल पार्वती अपने पिता और माताके चरणोंमें प्रणाम करके फिर पालकीपर सवार हो गई।

## पन्द्रहवाँ परिच्छेद

आज दो बरस हुए, चन्द्रमुखीने अशथझूरी नामक गाँवमें अपना मकान बना लिया है। छोटी नदीके किनारे एक ऊँची जगहपर मिट्टीके बने हुए दो साफ कमरे हैं। पास ही एक छप्पर पड़ा है जिसमें काले रंगकी एक मोटी-ताजी गौ बँधी है। दो कमरोंमेंसे एकमें रसोई होती है, बरतन आदि रक्खे रहते हैं और दूसरेमें वह सोती है। आँगन खूब साफ-सुथरा है। रमा बागदीकी लड़की उसे रोज लीप-पोत जाती है। चारों ओर एरण्डवृक्षोंका घेरा है, बीचमें एक बेरका पेड़ है और एक तरफ तुलसी। सामने नदीका घाट है। कुछ मजूर लगाकर और खजूरके पेड़ कटवाकर सीढ़ियाँ तैयार करा ली गई हैं। उसके सिवा उस घाटका और कोई उपयोग नहीं करता। जब बरसातमें नदीके दोनों किनारे भर जाते हैं तब चन्द्रमुखीके मकानके नीचे तक जल आ जाता है। गाँवके लोग घबराकर कुदाल लिये हुए दौड़ आते हैं और नीचे मिट्टी डालकर जमीन ऊँची कर जाते हैं। इस गाँवमें भले आदमी नहीं रहते,—किसान, अहीर, बागदी आदि रहते

हैं; दो घर कलवारोंके हैं और गाँवके अन्तमें दो मोची भी रहते हैं। इस गाँवमें आनेपर चन्द्रमुखीने देवदासको समाचार दिया था। उत्तरमें उसने कुछ और रुपये भेज दिये थे। चन्द्रमुखी गाँवके लोगोंको वे ही रुपये उधार देती है। आपद-विपदके समय सभी लोग दौड़े हुए उसके पास आते हैं और रुपये लेकर अपने घर जाते हैं। चन्द्रमुखी सूद नहीं लेती। हाँ, उसके बदले वे लोग केले, मूली, खेतकी साग-भाजी आदि स्वयं ही दे जाते हैं। वह असलके लिए भी लोगोंको तंग नहीं करती। जो रुपये नहीं दे सकता, वह नहीं देता।

चन्द्रमुखी हँसकर कहती है—अब तुम्हें कभी रुपये नहीं दूँगी।

वह नम्र भावसे कहता है—माँजी, आप आशीर्वाद करें जिससे इस बार अच्छी फसल हो।

चन्द्रमुखी आशीर्वाद देती है, फिर भी शायद अच्छी फसल नहीं होती। लगानका तकाजा होता है। वे लोग फिर आते हैं और रोते हुए हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं। चन्द्रमुखी फिर दे देती है और मन ही मन हँसती हुई कहती है,—वे जीते रहें, मुझे रुपयोंकी चिन्ता क्या!

लेकिन वे हैं कहाँ? प्रायः छह मास हो गये हैं, उसे कोई समाचार नहीं मिला। वह चिट्ठी लिखती है तो कोई जवाब नहीं आता;—रजिस्टरी चिट्ठी भी लौट आती है। ग्वालेका एक घर चन्द्रमुखीने अपने घरके पास ही बसाया है। उसके लड़केके ब्याहमें उसने साढ़े दस गंडे रुपये लड़कीवालेको दिये हैं और एक जोड़ी हल भी खरीद दिया है। वह सपरिवार चन्द्रमुखीका आश्रित और नितान्त आज्ञाकारी है। एक दिन सवेरे चन्द्रमुखीने ग्वालेको बुलाकर कहा—क्यों भैरव, तुम जानते हो कि तालसोनापुर यहाँसे कितनी दूर है?

भैरवने सोचकर कहा—दो मैदान पार करनेके बाद ही वहाँकी कचहरी है।

चन्द्रमुखीने पूछा—वहाँ शायद जमींदार रहते हैं?

भैरवने कहा—हाँ, वही इस देशके जमींदार हैं। यह गाँव उन्हींका है। आज तीन बरस हुए उनका स्वर्गवास हो गया है। उस समय सारी प्रजाने एक महीने तक वहाँ पूरी-मिठाई खाई थी। अब उनके दो लड़के हैं। बहुत बड़े आदमी हैं—बिलकुल राजा हैं।

चन्द्रमुखीने कहा—भैरव, तू मुझे वहाँ ले जा सकता है?

भैरवने कहा—हाँ माँजी, ले क्यों नहीं जा सकता! जिस दिन जी चाहे, चलो।

चन्द्रमुखीने उत्सुक होकर कहा—तो फिर चलो भैरव, हम लोग आज ही चलें।

भैरवने चकित होकर कहा—आज ही ? इसके बाद चन्द्रमुखीकी ओर लक्ष्य करके कहा—अच्छा तो फिर माँजी, तुम जल्दी रसोई कर लो। मैं भी थोड़ी सी फरुही बाँधे लेता हूँ।

चन्द्रमुखीने कहा—नहीं भैरव, अब मैं रसोई नहीं बनाऊँगी। तुम फरुही बाँध लो।

भैरवने घर जाकर थोड़ी-सी फरुही और गुड़ चादरके पल्लेमें बाँधकर उसे कन्धेपर डाल लिया। थोड़ी ही देर बाद वह एक लाठी हाथमें लेकर आ पहुँचा और बोला—अच्छा तो चलो। लेकिन माँजी, तुम कुछ खाओगी नहीं ?

चन्द्रमुखीने कहा—नहीं भैरव, मैंने अभी तक पूजा-पाठ नहीं किया है। अगर समय मिला तो वहीं चलकर सब कुछ कर लूँगी।

भैरव आगे आगे रास्ता दिखलाता हुआ चला, पीछे पीछे चन्द्रमुखी भी बहुत कष्टसे मेंढ़पर पैर रखती हुई चलने लगी। उसके दोनों अनभ्यस्त कोमल पैर क्षत-विक्षत होकर लहू-लुहान हो गये और धूपसे सारा मुँह लाल हो गया। स्नान और भोजन आदि कुछ भी नहीं हुआ था, तो भी चन्द्रमुखी मैदानके बाद मैदान पार करती हुई आगे बढ़ने लगी। खेतोंमें काम करनेवाले कृषक चकित होकर उसके मुँहकी ओर देखते रहे।

चन्द्रमुखीके पहनावेमें लाल किनारीकी एक धोती थी, हाथमें दो कड़े थे, मस्तकके ऊपर आधी दूर तक घूँघट था और सारा शरीर बिछानेकी एक मोटी चादरसे ढका हुआ था। सूर्यास्त होनेमें अधिक विलम्ब नहीं था कि दोनों आदमी गाँवमें जा पहुँचे। चन्द्रमुखीने कुछ हँसकर कहा—भैरव, तुम्हारे दो मैदान क्या अब जाकर पूरे हुए हैं ?

भैरवने इस परिहासको न समझकर सरल भावसे कहा—माँजी, अब तो आ ही पहुँचे हैं। लेकिन आपका सुखी शरीर ठहरा, आज क्या आप लौट सकेंगीं ?

चन्द्रमुखीने मन ही मन कहा—आजकी कौन कहे, मैं तो शायद कल भी इस रास्ते न चल सकूँगी। फिर प्रकाश्य रूपसे कहा—भैरव, यहाँ गाड़ी नहीं मिलती ?

भैरवने कहा—मिलती क्यों नहीं माँजी, मैं एक बैलगाड़ी ठीक करूँ ?

गाड़ी ठीक करनेकी आज्ञा देकर चन्द्रमुखीने जमींदार साहबके मकानमें प्रवेश किया।

भैरव गाड़ीका बन्दोबस्त करनेके लिए दूसरी तरफ चला गया। मकानके अन्दर ऊपरवाले बरामदेमें बड़ी बहू, ( आज-कल जमींदार गृहिणी ) बैठी हुई

थीं। एक दासीने चन्द्रमुखीको वहीं ले जाकर पहुँचा दिया। दोनोंने एक दूसरीको अच्छी तरह देखा।

चन्द्रमुखीने नमस्कार किया। बड़ी बहूके सारे शरीरपर गहने नहीं समाते और आँखोंके कोनोंसे अहंकार फटा पड़ता है। दोनों होंठ और सब दाँत पान और मिस्सीके मारे प्रायः काले हो गये हैं। एक तरफका गाल कुछ ऊँचा है, शायद पान और सुरती भरी हुई है। सिरके बाल इस तरह खींचकर बाँधे गये हैं कि जूड़ा सिरके अग्रभागसे भी ऊपर उठ गया है। दोनों कानोंमें छोटी बड़ी सब मिलाकर बीस-पचीस बालियाँ हैं। नाकमें एक तरफ लौंग और दूसरी तरफ एक बड़ा-सा छेद है। जान पड़ता है कि सासके राज्यमें उस छेदमें नथ पहनी जाती थी!

चन्द्रमुखीने देखा कि बड़ी बहू ख़ूब मोटी-ताजी हैं, खूब मँजा-घिसा शरीर है, खूब काला रंग है, खूब बड़ी आँखें हैं, गोल-मटोल चेहरा है। पहनावेमें काली किनारीकी साड़ी है और बदनपर एक कीमती कुरती। उसे देखकर चन्द्रमुखीको कुछ घृणा हुई। उधर बड़ी बहूने देखा कि यद्यपि चन्द्रमुखीकी अवस्था अधिक हो गई है, तो भी उसके शरीरमें रूप नहीं समाता,—फटा पड़ता है। जान पड़ता है कि दोनोंकी अवस्था समान है; लेकिन बड़ी बहूने मन ही मन यह बात स्वीकार नहीं की। इस गाँवमें एक पार्वतीको छोड़कर और किसी स्त्रीमें बड़ी बहूने इतना रूप नहीं देखा था। उसने चकित होकर पूछा—तुम कौन हो जी?

चन्द्रमुखीने कहा—मैं आपकी ही एक प्रजा हूँ। कुछ मालगुजारी बाकी पड़ी है, वही देने आई हूँ।

बड़ी बहूने मन ही मन प्रसन्न होकर कहा—तो फिर यहाँ क्यों आई? कचहरीमें जाओ न!

चन्द्रमुखीने कुछ मुस्कराकर कहा—बहूजी, हम लोग गरीब ठहरीं। पूरी मालगुजारी तो दे नहीं सकतीं। सुना है कि आप बहुत दयावान हैं। इसीलिए आपके पास आई हूँ। दया करके शायद आप कुछ माफ कर दें।

इस तरहकी बात बड़ी बहूने अपने जीवनमें आज पहले पहल ही सुनी कि मुझमें दया है, मैं मालगुजारी भी माफ कर सकती हूँ और इसीलिए चन्द्रमुखी उसकी परम प्रिय पात्री बन गई। उसने कहा—सो बेटी, दिन-भरमें इस तरह कितने ही रुपये मुझे छोड़ देने पड़ते हैं, कितने ही लोग आकर मुझे घेरते हैं और मुझसे 'नहीं' नहीं किया जाता, इसके लिए मालिक मुझपर न जाने कितने नाराज़ भी होते हैं।—हाँ, तो तुम्हारे कितने रुपये बाकी पड़े हैं?

"बहुत नहीं, खाली दो रुपये। लेकिन मेरे लिए तो मानो वही पहाड़ हो रहे हैं। आज दिन-भर रास्ता चलकर यहाँ तक आई हूँ।"

बड़ी बहूने कहा—आहा, तो तुम लोग गरीब ठहरीं; हम लोगोंको दया करना ही उचित है। अरी बिन्दुमती, इन्हें बाहर ले जा और दीवानजीसे मेरा नाम लेकर कह दे कि दो रुपये माफ कर दें। हाँ जी, तुम्हारा मकान कहाँ है?

चन्द्रमुखीने कहा—आपके ही राज्यमें उस अशथझूरी गाँवमें। क्यों बहूजी, मालिक तो दो हिस्सेदार हैं न?

बड़ी बहूने कहा—फूटी तकदीर! दूसरा हिस्सेदार और कौन है? दो दिन बाद हमारा ही तो सब होगा।

चन्द्रमुखीने उद्विग्न होकर पूछा—क्यों बहूजी, छोटे बाबूपर शायद बहुत ज़्यादा कर्ज है?

बड़ी बहूने कुछ हँसकर कहा—सब हमारे ही पास रेहन है। छोटे बाबू एकदम बरबाद हो गये हैं। कलकत्तेमें शराब और रंडी, बस इन्हें ही लेकर रहते हैं। न जाने कितने रुपये उड़ा दिये, कुछ ठिकाना है!

चन्द्रमुखीका मुँह सूख गया। उसने कुछ रुककर पूछा—तो हाँ बहूजी, क्या छोटे बाबू कभी घर भी नहीं आते?

बड़ी बहूने कहा—आते क्यों नहीं है? जब रुपयेकी जरूरत होती है, आते हैं। कर्ज लेकर और जायदाद रेहन रखकर चले जाते हैं। अभी कोई दो महीने हुए आये थे, बारह हजार रुपये ले गये हैं। अब उनके बचनेके भी कोई लच्छन नहीं हैं। सारे बदनमें बहुत ही खराब बीमारी हो गई है,—छीः छीः।

चन्द्रमुखी सिहर उठी। उसने मलिन मुखसे पूछा–वे कलकत्तेमें कहाँ रहते हैं?

बड़ी बहूने सिर पीटकर हँसते हुए कहा—कम्बख्ती! क्या कोई जानता है कि वे कहाँ रहते हैं? कहीं किसी होटलमें खा-पी लेते हैं, जिस-तिसके घर पड़े रहते हैं! वही जाने और उनकी शराब जाने।

चन्द्रमुखी सहसा उठकर खड़ी हो गई और बोली—अच्छा, तो मैं जाती हूँ।

बड़ी बहूने कुछ चकित होकर पूछा—तुम जाओगी? अच्छा; अरे ओ बिन्दुमती!

चन्द्रमुखीने रोककर कहा—नहीं बहूजी, आप रहने दें। मैं आप ही कचहरी चली जाऊँगी।

इतना कहकर वह धीरे धीरे वहाँसे चली गई। मकानके बाहर आकर उसने देखा कि भैरव आसेरेमें खड़ा है और बैल-गाडी तैयार है। उसी रातको चन्द्र-

मुखी अपने घर लौट आई। सवेरे उसने फिर भैरवको बुलाकर कहा—भैरव, आज मैं कलकत्ते जाऊँगी। तुम तो जा नहीं सकोगे; इसलिए तुम्हारे लड़केको ले जाऊँगी। क्या कहते हो?

भैरवने कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा। लेकिन कलकत्ते क्यों जा रही हो माँजी, वहाँ कोई खास काम है?

चन्द्र०—हाँ भैरव, एक खास काम है।

भैरव—और माँजी, आओगी कब?

चन्द्र०—यह तो अभी नहीं कह सकती भैरव। शायद जल्दी ही आऊँगी। देरी भी हो सकती है, और अगर लौटकर न आई तो यह सारा घर-बार तुम्हारा रहेगा।

पहले तो भैरव अवाक् हो गया, फिर उसकी आँखोंमें जल भर आया। उसने कहा—माँजी, आप यह कैसी बात कहती हैं? अगर आप लौटकर न आएँगी तो इस गाँवके लोग जीते न बचेंगे।

चन्द्रमुखीने सजल नेत्रोंसे कुछ मुस्कराते हुए कहा—यह क्या भैरव! मैं तो दो ही बरससे यहाँ आई हूँ। इसके पहले क्या लोग जीते नहीं थे?

इस बातका कोई उत्तर मूर्ख भैरव न दे सका; लेकिन चन्द्रमुखीने मन ही मन सब कुछ समझ लिया। भैरवका लड़का केवल ही उसके साथ जायगा। जब वह गाड़ीपर जरूरी सामान लादकर सवार होने लगी तब गाँवभरकी स्त्रियाँ और पुरुष सभी देखने आये और देखकर रोने लगे। स्वयं चन्द्रमुखीकी आँखोंमें भी जल नहीं समाता था। कलकत्ता क्या चीज़ है! अगर उसे देवदासके लिए न जाना होता तो कलकत्तेकी रानीका पद पानेके लिए भी वह इतने प्रेमको तुच्छ करके न जा सकती।

दूसरे दिन वह क्षेत्रमणिके घर जा पहुँची। उसके पहलेके मकानमें अब कोई और आ रहा था। क्षेत्रमणि अवाक् हो गई—अरे बहन, तुम इतने दिनों तक कहाँ थीं?

चन्द्रमुखीने असल बात छिपाकर कहा—मैं इलाहाबादमें थी।

क्षेत्रमणिने खूब अच्छी तरह उसका सारा शरीर निरखकर कहा—तुम्हारे गहने वगैरह क्या हुए बहन?

चन्द्रमुखीने हँसते हुए संक्षेपमें कहा—सब हैं।

उसी दिन उसने बनियेके साथ भेंट करके पूछा—क्यों दयाल, अब मेरे और कितने रुपये बाकी निकलते हैं?

दयाल बड़ी आफतमें फँसा। बोला—यही कोई साठ-सत्तर रुपये होंगे। आज

नहीं तो दो दिन बाद दे दूँगा।

"तुम्हें कुछ देना नहीं होगा, लेकिन मेरा एक काम कर दो।"

"क्या काम?"

"बस यही कि तुम्हें दो दिन कुछ मेहनत करनी पड़ेगी। हम लोगोंके मुहल्लेमें एक मकान किराये लेना होगा—समझे?"

दयालने हँसकर कहा—हाँ, समझ गया।

"जरा अच्छा मकान हो। खूब अच्छा बिछौना, तकिये, चादर, रोशनी, तसवीरें, दो कुरसियाँ, एक टेबुल—समझ गये न?"

दयालने सिर हिला दिया।

"शीशा, कंघी, दो जोड़ा रंगीन धोतियाँ, पहननेके लिए कुरती,—और बढ़िया गिलट किए हुए गहने कहाँ मिलते हैं, जानते हो?"

दयालने पता बतला दिया।

चन्द्रमुखीने कहा—एक सेट गिलटके अच्छे गहने भी देखकर खरीदने होंगे। मैं साथ चलकर पसन्द कर लूँगी। इसके बाद उसने कुछ हँसकर कहा—हम लोगोंको जो कुछ चाहिए, सब जानते तो हो तुम। और एक दासी भी ठीक करनी होगी।

दयालने पूछा—यह सब कब तक चाहिए?

"जहाँ तक जल्दी हो सके। दो तीन दिनमें ही सब ठीक हो जाय तो अच्छा है।" यह कहकर चन्द्रमुखीने उसके हाथमें सौ रुपयेका एक नोट देकर कहा—देखो, सब चीजें अच्छी लेना, किफायतके फेरमें न पड़ना।

तीसरे दिन चन्द्रमुखी अपने नये मकानमें चली गई। उसने दिन-भर केवलरामके साथ अपने मनके माफिक मकानकी सजावट की और सन्ध्यासे पहले ही वह अपना शृंगार करने बैठ गई। साबुनसे मुँह धोकर पाउडर लगाया, अलता घोलकर पैरोंमें लगाया और पान खाकर होंठ लाल किए। इसके बाद सारे शरीरमें गहने पहनकर और कुरती डाँटकर रंगीन साड़ी पहनी। बहुत दिनोंके बाद केश-विन्यास करके माथेपर बिन्दी लगाई। फिर शीशेमें अपने आपको देखकर उसने मन ही मन हँसते हुए कहा—इस फूटी हुई तकदीरमें अभी न जाने और क्या क्या बदा है!

देहाती बालक केवलरामने अचानक यह नया साज-शृंगार और कपड़े-लत्ते देखकर डरते हुए पूछा—बहिन, यह क्या?

चन्द्रमुखीने हँसते हुए कहा—केवल, आज मेरे वर आवेंगे !

केवलराम चकित होकर देखता रह गया।

सन्ध्याके बाद क्षेत्रमणि उसके यहाँ मिलने आई। उसने पूछा—बहन, यह सब क्या है !

चन्द्रमुखीने मुस्कराते हुए कहा—फिरसे यह सब चाहिए न।

क्षेत्रमणिने कुछ देरतक देखते रहनेके बाद कहा—बहनकी उमर जितनी बढ़ रही है, रूप भी उतना ही बढ़ रहा है !

उसके चले जानेपर चन्द्रमुखी बहुत दिनों बाद फिर पहलेकी ही तरह खिड़कीके पास बैठी। वहाँसे वह टक लगाकर सड़ककी तरफ़ देखती रही। बस यही उसका काम था,—इसीके लिए वह यहाँ रहेगी, बराबर यही करती रहेगी। शायद कभी कोई नया आदमी आना चाहता है और ऊपर आकर दरवाजा खटखटाता है। केवलराम मानों कंठाग्र किये हुए पाठकी तरह भीतरसे कह देता है,—यहाँ नहीं।

कभी कभी कोई पुरानी जान-पहचानवाला भी आ जाता है। चन्द्रमुखी उसे बैठाकर हँस हँसकर बातें करती है और बातों ही बातोंमें देवदासके विषयमें पूछती है। लेकिन वह कुछ बतला नहीं सकता है और वह उन्हें यों ही बिदा कर देती है। जब अधिक रात बीत जाती है तब खुद ही बाहर निकल पड़ती है। महल्ले महल्ले दरवाजे दरवाजे घूमती फिरती है। छिपकर दरवाजे दरवाजे कान लगाकर बातचीत सुनना चाहती है। तरह तरहके लोग तरह तरहकी बातें करते हैं, लेकिन वह जो सुनना चाहती है वह कहीं सुनाई नहीं देता। कभी कभी कोई मुँह ढँककर अचानक उसके बहुत पास आ जाता है और स्पर्श करनेके लिए हाथ बढ़ाता है। तब चन्द्रमुखी घबराकर पीछे हट जाती है। दोपहरको अपनी पुरानी परिचित सहेलियोंके यहाँ घूमने चली जाती है। बातों ही बातोंमें प्रश्न करती है—कोई देवदासको जानती हो ?

वे लोग पूछती हैं—कौन देवदास ?

चन्द्रमुखी उत्सुक होकर परिचय देने लगती है—गोरा रंग, सिरपर घुँघराले बाल, माथेपर बाईं तरफ एक चोटका निशान। बहुत बड़े आदमी हैं। बहुत रुपये खर्च करते हैं। पहचानती हो ?

लेकिन कोई पता नहीं बतला सकता। हताश विषण्ण मुखसे चन्द्रमुखी घर लौट आती है और बहुत अधिक राततक जागती हुई सड़ककी तरफ देखती रहती है। नींद आनेपर नाराज होती है और मन ही मन कहती है, यह क्या मेरे

सोनेका समय है ?

धीरे धीरे एक महीना बीत गया। केवलराम भी घबरा गया। अब स्वयं चन्द्रमुखीको भी सन्देह होने लगा कि शायद वह यहाँ नहीं हैं। तो भी आशा लगाये देवताओंके चरणोंमें तन-मनसे प्रार्थना करती हुई दिनपर दिन बिताने लगी।

उसे कलकत्ते आये हुए डेढ़ महीना हो गया। आज रातको उसका भाग्य प्रसन्न हुआ। उस समय रातके ग्यारह बजे थे। वह हताश होकर घर लौट रही थी कि उसने देखा सड़कके किनारे एक दरवाजेके सामने कोई आदमी मन ही मन बड़बड़ा रहा है। चन्द्रमुखीका कलेजा उछलने लगा। यह कंठस्वर तो परिचित है! लाखों करोड़ों आदमियोंमें भी वह इस स्वरको पहचान लेती। उस स्थानपर कुछ अँधेरा था, तिसपर वह आदमी शराबके नशेमें चूर होनेके कारण औंधा पड़ा हुआ था। चन्द्रमुखीने पास पहुँचकर उसके शरीरपर हाथ रखकर पूछा—क्यों जी, तुम कौन हो ? इस तरह क्यों पड़े हुए हो ?

उस आदमीने कुछ गानेके सुरमें कहा—

'सुनो सखी, यह मनका मानस; पाऊँ यदि गिरिधर-सा स्वामी—'

अब चन्द्रमुखीको कोई सन्देह नहीं रह गया। उसने पुकारा—देवदास !

देवदासने उसी तरह कहा—हूँ।

"यहाँ पड़े क्यों हो ? घर चलोगे ?"

"नहीं। यहीं अच्छा हूँ।"

"थोड़ी शराब पीओगे ?"

"हाँ पीऊँगा।" इतना कहकर उसने जोरसे चन्द्रमुखीका गला पकड़ लिया और कहा—भाई, तुम मेरे ऐसे मित्र कौन हो ?

चन्द्रमुखीकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। इसके बाद देवदासने बहुत परिश्रमसे लड़खड़ाते हुए उसका गला पकड़कर किसी तरह उठकर और उसके मुँहकी ओर देखकर कहा—वाह ! यह तो बढ़िया चीज है देवदास !

चन्द्रमुखीके रोनेमें हँसी शामिल हो गई। उसने कहा—हाँ, बढ़िया चीज़ है। अब मेरे कन्धेका सहारा लेकर जरा आगे बढ़ चलो। एक गाड़ीकी जरूरत तो होगी—

"हाँ, जरूरत क्यों नहीं होगी !"

रास्तेमें चलते चलते देवदासने रुद्ध-कण्ठसे कहा—सुन्दरी, तुम मुझे पहचानती हो ?

चन्द्रमुखीने कहा—हाँ, पहचानती हूँ।

देवदासने गाकर कहा—

' और लोग तो भूल गये हैं, भाग्य यही है मैं पहचानूँ। '

इसके बाद वह गाड़ीपर सवार होकर और चन्द्रमुखीके कन्धेपर भार रखकर घर आ पहुँचा। दरवाजेके पास खड़े होकर देवदासने अपनी जेबमें हाथ डालकर कहा—सुन्दरी, तुम मुझे रास्तेसे उठा तो लाईं, पर मेरी जेबमें तो कुछ भी नहीं है—

चन्द्रमुखी चुपचाप उसका हाथ खींचती हुई अन्दर ले गई और उसे बिस्तरपर लेटाकर बोली—अच्छा, अब तुम सो जाओ।

देवदासने उसी प्रकार जड़ित कंठसे कहा—कोई मतलब है क्या? पर मैंने तो पहले ही कह दिया है कि जेब खाली है, कुछ भी आशा नहीं! समझीं सुन्दरी!

सुन्दरी पहले ही समझ चुकी थी। बोली—अच्छा, कल दे देना।

देवदासने कहा—इतना विश्वास करना तो अच्छा नहीं। क्या चाहती हो, साफ साफ तो कहो।

चन्द्रमुखीने कहा, "कल कहूँगी" और वह पासवाले कमरेमें चली गई।

जिस समय देवदासकी नींद खुली, उस समय दिन चढ़ आया था। कमरेमें कोई नहीं था।

चन्द्रमुखी स्नान करके नीचे रसोईकी तैयारी करने गई थी। देवदासने देखा, वह पहले कभी इस घरमें नहीं आया है। वहांकी एक भी चीज वह न पहचान सका। पिछली रातकी कोई बात भी उसे याद नहीं आई, केवल किसीकी आन्तरिक सेवाका स्मरण हो आया,—किसीने बहुत ही स्नेहपूर्वक लाकर सुला दिया है। उसी समय चन्द्रमुखीने कमरेमें प्रवेश किया। रातके साज शृंगारमें उसने अब बहुत-कुछ परिवर्त्तन कर लिया है। शरीरपर गहने जरूर हैं, लेकिन न तो रंगीन साड़ी है, न माथेपर बिन्दी है और न मुँहमें पानकी लाली। एक बहुत ही मामूली धोती पहने हुए उसने उस कमरेमें प्रवेश किया। देवदास मुँहकी ओर देखकर हँस पड़ा—कहाँसे कल डाका डालकर मुझे ले आई?

चन्द्रमुखीने कहा—डाका नहीं डाला, रास्तेमें पड़ा पाया, सिर्फ उठा लाई हूँ।

देवदासने सहसा गम्भीर होकर कहा—अच्छा, खैर, यह तो हुआ। लेकिन तुमने यह सब फिर क्या शुरू कर दिया? तुम्हारे शरीरपर तो गहने ही नहीं समाते। ये सब दिये किसने?

चन्द्रमुखीने देवदासकी ओर तीव्र दृष्टिसे देखकर कहा—फिर!

देवदासने हँसकर कहा—नहीं नहीं, सो नहीं कहता; जरा मजाक करनेमें भी

क्या हर्ज है ? आई कब ?

चन्द्रमुखीने कहा—डेढ़ महीना हुआ।

देवदासने मन ही मन कुछ हिसाब-सा लगाया। फिर कहा—जब हमारे मकानपर गई थीं, उसके बाद ही आई हो ?

चन्द्रमुखीने चकित होकर पूछा—तुम्हारे मकानपर गई थी;यह कैसे मालूम हुआ ?

देवदासने कहा—तुम्हारे जानेके बाद ही मैं मकान गया था। जो दासी तुम्हें भाभीके पास ले गई थी उसीसे सुना कि कल अशथझूरी गाँवसे एक स्त्री आई थी जो बहुत ही सुन्दरी थी। फिर समझनेमें बाकी क्या रह गया ? लेकिन इतने गहने फिरसे क्यों बनवाये ?

चन्द्रमुखीने कहा—बनवाये नहीं हैं, ये सब गिलटके हैं। कलकत्तेमें आकर खरीदे हैं। लेकिन देखो, तुम्हारे लिए फिर कितने रुपये व्यर्थ खर्च करने पड़े ! और तिसपर कल तुम मुझे पहचान भी न सके !

देवदास हँस पड़ा और बोला—पहचान तो बिलकुल न सका, लेकिन सेवाको पहचान गया ! कई बार ध्यान आया कि मेरी चन्द्रमुखीको छोड़कर इतनी सेवा और कौन कर सकता है ?

आनन्दके मारे चन्द्रमुखीका रोनेको जी चाहने लगा। कुछ देर तक चुप रहनेके बाद उसने कहा—देवदास, अब तो मुझसे उतनी घृणा नहीं करते ?

देवदासने उत्तर दिया—नहीं, बल्कि प्रेम करता हूँ।

दोपहरको स्नान करनेके समय चन्द्रमुखीने देखा कि देवदासके पेटपर फलालैनका एक टुकड़ा बँधा हुआ है। उसने डरकर पूछा—यह क्या ? तुमने फलालैन क्यों बाँधी है ?

देवदासने कहा—पेटमें कुछ दर्द मालूम होता है। तुम इस तरह घबरा क्यों रही हो ?

चन्द्रमुखीने कपाल ठोककर कहा—कहीं तुमने सर्वनाश तो नहीं कर डाला ? कलेजेमें तो दर्द नहीं है ?

देवदासने कहा—चन्द्रमुखी, जान पड़ता है कि वही हो गया है।

उसी दिन डाक्टरने भी आकर बहुत देर तक परीक्षा करके ठीक यही आशंका प्रकट की। दवा दी और जतलाया कि अगर पूरी सावधानी न रक्खी जायगी तो बहुत बड़ा अनिष्ट हो सकता है। मतलब दोनोंने ही समझ लिया। बासेपर खबर भेजकर धर्मदासको बुलवाया गया। दवा-दारूके लिए रुपये मँगाये गये।

दो दिन इसी प्रकार बीत गये। तीसरे दिन उसे ज्वर आ गया।

देवदासने चन्द्रमुखीको बुलाकर कहा—बहुत अच्छे समयपर आ गईं;—नहीं तो फिर देख ही न पातीं।

आँखें पोंछकर चन्द्रमुखी जी-जानसे सेवा करने लगी। उसने दोनों हाथ जोड़कर प्रार्थना की—भगवन्, मैंने स्वप्नमें भी यह आशा नहीं की थी कि मैं ऐसे असमयमें इनके इतने काम आऊँगी। लेकिन तुम देवदासको अच्छा कर दो।

प्रायः एक माससे अधिक समय तक देवदास बिस्तरपर पड़ा रहा। इसके बाद वह धीरे धीरे अच्छा होने लगा,—बीमारी बहुत ज्यादा न बढ़ सकी।

उस समय एक दिन देवदासने कहा—चन्द्रमुखी, तुम्हारा नाम बहुत बड़ा है। सर्वदा पुकारनेमें दिक्कत होती है। मैं उसे जरा छोटा कर लेना चाहता हूँ।

चन्द्रमुखीने कहा—अच्छा बात है।

देवदासने कहा—अच्छा तो फिर आजसे मैं तुम्हें 'बहू' कहकर पुकारा करूँगा।

चन्द्रमुखी हँस पड़ी। बोली—माना कि इस नामसे पुकारोगे, लेकिन इसका कुछ मतलब भी तो होना चाहिए?

"क्या सभी बातोंका मतलब हुआ करता है? यह मेरी साध है।"

"अगर साध है तो पुकारा करो। लेकिन क्या यह न बतलाओगे कि यह साध क्यों हुई?"

"नहीं, तुम कभी इसका कारण पूछ भी न सकोगी।"

चन्द्रमुखीने सिर हिलाकर कहा—अच्छा, ऐसा ही सही।

देवदास बहुत देर तक चुप रहा। फिर सहसा गम्भीर भावसे पूछ बैठा—अच्छा बहू, तुम मेरी कौन हो जो इतने जी-जानसे सेवा कर रही हो?

चन्द्रमुखी लज्जावनत वधू भी नहीं और अ-वाक्पटु बालिका भी नहीं है। उसने देवदासके मुखकी ओर स्थिर और शान्त दृष्टि रखकर स्नेहपूर्ण स्वरमें कहा—क्या अब भी यह न समझ सके कि तुम मेरे सर्वस्व हो?

देवदास दीवारकी तरफ देख रहा था। उसी ओर दृष्टि रखते हुए धीरेसे कहने लगा—सो तो समझ सका हूँ; लेकिन, इससे वैसा आनन्द नहीं पाता। मैं पार्वतीको कितना चाहता हूँ; वह भी मुझे कितना चाहती है, लेकिन फिर भी उसे कितना कष्ट है! बहुत-सा दुःख पाकर सोचा था कि फिर कभी इन सब फन्दोंमें नहीं फँसूँगा और अपनी इच्छासे फँसा भी नहीं। लेकिन तुमने ऐसा क्यों किया! मुझे जबरदस्ती क्यों बाँध लिया? इसके बाद कुछ देर तक फिर चुप रहकर कहा—

बहू, शायद तुम भी पार्वतीकी ही तरह कष्ट पाओगी।

चन्द्रमुखी आँचलसे मुँह ढँककर पलंगके एक किनारे चुपचाप बैठी रही।

देवदासने फिर कोमल स्वरसे कहना आरम्भ किया—तुम दोनोंमें परस्पर कितना अन्तर है, फिर भी, कितनी समानता है! एक आत्माभिमानिनी और उद्धत है; और दूसरी कितनी शान्त और कितनी संयत है! वह कुछ भी सहन नहीं कर सकती और तुम कितना सहन करती हो! उसका कितना यश और कितना सुनाम है और तुमपर कितना कलंक है! उससे सभी प्रेम करते हैं और तुमसे कोई प्रेम नहीं करता! तो भी मैं तुमसे प्रेम करता हूँ,—करता तो हूँ ही।

इसके बाद देवदासने एक ठंढी साँस लेकर कहा—मैं यह तो नहीं जानता कि पाप और पुण्यके विचारकर्ता तुम्हारा क्या विचार करेंगे; लेकिन, यदि मृत्युके उपरान्त फिर मिलना हो तो मैं कभी तुमसे दूर न रह सकूँगा।

चन्द्रमुखीने चुपचाप रोते रोते अपनी छाती आसुओंसे भिगो डाली। वह मन ही मन प्रार्थना करने लगी—भगवन्, यदि किसी समय किसी जन्ममें इस पापिष्ठाके पापोंका प्रायश्चित्त हो तो मुझे यही पुरस्कार देना!

* * * *

प्रायः दो मास बीत गये हैं। देवदास आरोग्य लाभ कर चुका है, लेकिन उसका शरीर पूरी तरहसे अच्छा नहीं हुआ है, वायु-परिवर्तन आवश्यक है। वह कल पश्चिमकी ओर घूमने जायगा। उसके साथ केवल धर्मदास रहेगा।

चन्द्रमुखी पकड़कर बैठ गई—आखिर तुम्हें एक दासीकी भी तो आवश्यकता होगी, मुझे भी साथ चलने दो।

देवदासने कहा—छीः, यह नहीं हो सकता। और चाहे जो करूँ, इतना अधिक निर्लज्ज नहीं हो सकता।

चन्द्रमुखी बिलकुल चुप हो गई। वह नादान नहीं थी, इसीलिए सहजमें समझ गई। और चाहे जो हो, लेकिन इस संसारमें उसका सम्मान नहीं है। उसके संस्पर्शसे देवदास सुख पावेगा, सेवा पावेगा, लेकिन कभी सम्मान नहीं पा सकता। उसने आँसू पोंछकर पूछा—अब कब दर्शन पाऊँगी?

देवदासने कहा—कुछ कह नहीं सकता। लेकिन, अगर जीता रहूँगा तो तुम्हें कभी न भुलूँगा। तुम्हें देखनेकी तृष्णा कभी न मिटेगी।

प्रणाम करके चन्द्रमुखी हटकर खड़ी हो गई और बोली—मेरे लिए वही बहुत है। मैं इससे अधिककी आशा नहीं करती।

चलते समय देवदासने और भी दो हजार रुपये चन्द्रमुखीके हाथमें देकर कहा—इन्हें रक्खो। मनुष्यके शरीरका तो विश्वास नहीं, अन्तमें क्या तुम मँझधारमें डूबोगी ?

चन्द्रमुखीने यह भी समझा, इसीलिए हाथ बढ़ाकर रुपये ले लिये। फिर उसने आँखें पोछकर कहा—तुम एक बात मुझे बतलाते जाओ—

देवदासने उसके मुँहकी ओर देखकर पूछा—क्या ?

चन्द्रमुखीने कहा—बड़ी बहूने कहा था कि तुम्हारे शरीरमें बुरा रोग लग गया है, सो क्या ठीक है ?

प्रश्न सुनकर देवदास दुखी हुआ। उसने कहा—बड़ी बहू सब-कुछ कह सकती हैं; लेकिन, यदि वह होता तो क्या तुम्हें पता नहीं लगता ? मेरी ऐसी कौन-सी बात है जो तुम नहीं जानतीं ? एक बातमें तो तुम पार्वतीसे भी बढ़कर हो।

चन्द्रमुखीने फिर आँखें पोंछकर कहा—चलो खैरियत हुई, जान बची। लेकिन फिर भी बहुत सावधानीसे रहना। एक तो तुम्हारा शरीर यों ही खराब है। तिसपर देखो, किसी दिन कहीं भूल न कर बैठना।

इसके उत्तरमें देवदास केवल हँस पड़ा; कुछ बोला नहीं।

चन्द्रमुखीने कहा—एक भिक्षा और माँगती हूँ। यदि तुम्हारा शरीर जरा भी खराब हो तो मुझे खबर दोगे न ?

देवदासने उसके मुँहकी ओर देखकर और सिर हिलाकर कहा—दूँगा क्यों नहीं बहू !

फिर एक बार प्रणाम करके चन्द्रमुखी रोती हुई दूसरे कमरेमें चली गई।

---

## सोलहवाँ परिच्छेद

कलकत्ता छोड़नेके बाद जब देवदासने कुछ दिनों तक इलाहाबादमें निवास किया था तब उसने अचानक एक दिन चन्द्रमुखीको पत्र लिखा था—"बहू, मैंने सोचा था कि अब मैं कभी प्रेम न करूँगा। एक तो प्रेम करके खाली हाथ लौट आना ही बहुत कष्टदायक होता है, तिसपर किसीको अपनाकर प्रेम करनेके प्रयत्नके समान विडम्बना इस संसारमें और कोई नहीं है।"

इसके उत्तरमें चन्द्रमुखीने क्या लिखा था, यह जानना आवश्यक नहीं है। लेकिन उन दिनों देवदासको बार बार खयाल होता था कि अगर वह एक बार आ जाय, तो कैसा हो ? पर तुरन्त ही डरता हुआ सोचता कि नहीं, नहीं, जरूरत

नहीं,—अगर कहीं पार्वतीको पता लग गया! इस तरह एक बार पार्वती और एक बार चन्द्रमुखी उसके हृदय-राज्यमें निवास करतीं। कभी कभी उसके हृदय-पटपर इन दोनोंके ही मुख पास पास चित्रित हो जाते,—मानों दोनोंमें परस्पर बहुत स्नेह हो गया है।

उसके मनमें दोनों ही पास पास विराजतीं। कभी कभी तो बिलकुल अचानक ही उसे ऐसा जान पड़ता कि वे दोनों ही सो गई हैं। उस समय उसका मन इतना अधिक अन्तःसार शून्य हो जाता कि केवल एक निर्जीव अतृप्ति ही उसके मनमें मिथ्या प्रतिध्वनिकी तरह घूमती फिरती। उसके बाद देवदास लाहौर चला गया। वहाँ चुन्नीलाल काम-काज करता था, खबर पानेपर वह मिलनेके लिए आया। बहुत दिनोंके बाद दोनों मित्र एक दूसरेको देखकर लज्जित हुए और सुखी भी हुए। अब फिर देवदासने सुराका स्पर्श किया। उसे चन्द्रमुखीका ध्यान आता कि उसने शराब पीनेके लिए मना कर दिया था। उसे ध्यान आता कि उसमें कितनी अधिक बुद्धि है! वह कितनी शान्त और धीर है! और वह कितना स्नेह करती है! पार्वती इस समय सो गई है,—केवल बुझती हुई दीप-शिखाकी तरह कभी कभी जल जल उठती है। लेकिन, लाहौरका जलवायु देवदासको सहन नहीं हुआ। बीच-बीचमें तबीयत खराब हो जाती। पेटके पास फिर मानों कुछ दर्द-सा जान पड़ता। धर्मदासने एक दिन रोते हुए कहा—देवता, तुम्हारा शरीर फिर खराब हो रहा है, और कहीं चलो।

देवदासने अन्यमनस्क भावसे उत्तर दिया—अच्छा चलो।

देवदास प्रायः अपने डेरेपर शराब नहीं पीता था। चुन्नीलालके आनेपर किसी दिन पीता था, किसी दिन बाहर चला जाता था। जब रात बीतनेको होती थी तब घर लौट आता था और किसी किसी रोज बिलकुल ही नहीं आता था। आज अचानक दो दिनसे उसकी शकल नहीं दिखाई दी। रो-रोकर धर्मदासने अन्न-जल तकका स्पर्श नहीं किया। तीसरे दिन वह बुखार लेकर घर लौटा। बिस्तरपर पड़ गया और उठ न सका। तीन-चार डाक्टर आकर उसकी चिकित्सा करने लगे।

धर्मदासने कहा—देवता, काशीमें माँके पास खबर भेजे देता हूँ—

देवदासने जल्दीसे बीचमें ही रोककर कहा—छीः छीः, भला माँको मैं यह मुँह दिखला सकता हूँ!

धर्मदासने प्रतिवाद किया—रोग-शोक तो सभीके साथ लगे हैं। लेकिन क्या इसीलिए इतनी बड़ी विपत्तिके समय माँसे भी मुँह छिपाना चाहिए? देवता,

तुम्हारे लिए कोई लज्जाकी बात नहीं है, काशी चलो।

देवदासने मुँह फेरकर कहा—नहीं धर्मदास, मैं ऐसे समय उनके पास नहीं जा सकूँगा। पहले अच्छा हो लूँ, तब चलूँगा।

धर्मदासने एक बार सोचा कि चन्द्रमुखीका जिक्र करूँ। लेकिन वह स्वयं ही उससे इतनी अधिक घृणा करता था कि उसके मुखका ध्यान आते ही वह चुप हो गया।

स्वयं देवदासको भी प्रायः उसकी याद आती थी, लेकिन उसे कुछ कहनेकी इच्छा नहीं होती थी। इसलिए कोई भी न आया। इसके बाद कुछ दिनोंमें वह धीरे धीरे अच्छा होने लगा। एक दिन वह उठकर बैठ गया और बोला—चलो धर्मदास, अब और कहीं चलें।

"भइया, और कहीं चलनेकी जरूरत नहीं। अब या तो घर चलो और या माँके पास चलो।"

सब सामान बाँधकर और चुन्नीलालसे बिदा होकर देवदास फिर इलाहाबाद आ पहुँचा। शरीर बहुत कुछ अच्छा था। कुछ दिनोंतक वहाँ रहनेके बाद एक दिन उसने धर्मदाससे कहा—धर्म, किसी नई जगह क्यों न चला जाय? कभी बम्बई नहीं देखी, चलोगे?

देवदासका आग्रह देखकर इच्छा न होनेपर पर भी धर्मदासने चलनेकी राय दे दी। जेठका महीना था। बम्बईमें उतनी ज्यादा गरमी नहीं पड़ती। वहाँ पहुँचकर देवदासका शरीर और भी अच्छा हो गया।

धर्मदासने पूछा—अब घर क्यों न चला जाय?

देवदासेन कहा—नहीं, बहुत मजेमें हूँ। यहीं और कुछ दिन तक रहूँगा।

* * * *

एक बरस बीत गया। भादोंके महीनेमें एक दिन सवेरे धर्मदासके कन्धेका सहारा लेकर देवदास बम्बईके एक अस्पतालसे निकला और अपने डेरेपर आकर बैठा। धर्मदासने कहा—देवता, मैं तो कहता हूँ कि अब माँके पास चलना ही ठीक है।

देवदासकी आँखोंमें जल भर आया। आज कई दिनोंसे उसे केवल माँ ही याद आ रही है। अस्पतालमें पड़े पड़े वह प्रायः यही सोचता रहा है कि इस 'संसार'में मेरे सभी हैं, फिर भी कोई नहीं है। मेरी माँ हैं, बड़े भाई हैं, बहनसे भी बढ़कर पार्वती है,—चन्द्रमुखी भी है। उसके सभी हैं लेकिन वह किसीका नहीं है! धर्मदास मी उस समय रो रहा था, बोला—तो फिर क्यों भइया, माँके पास

चलना ही ठीक हुआ न ?

देवदासने मुँह फेरकर आँसू पोंछे और कहा—नहीं धर्मदास, माँको मुँह दिखलानेकी इच्छा नहीं होती। मुझे अब भी जान पड़ता है कि वह समय नहीं आया है।

वृद्ध धर्मदास बिलख बिलख कर रोने लगा और बोला—भइया, माँ तो अब भी जीती हैं !

इस बातने कितना भाव प्रकाशित किया, अन्तरमें दोनोंने ही उसका अनुभव किया। देवदासकी अवस्था बहुत ही खराब हो गई है। सारा पेट तिल्ली और जिगरसे भर गया है। और उसपर बुखार और खाँसी भी है। रंग गहरा काला हो गया है। शरीर अस्थि-चर्म-सार हो गया है। आँखें बिलकुल धँस गई हैं,—केवल एक प्रकारकी अस्वाभाविक उज्ज्वलतासे चमक रही हैं। सिरके बाल बिलकुल रूखे और सीधे हो गये हैं,—जो प्रयत्न करनेपर शायद गिने भी जा सकें। हाथोंकी उँगलियोंकी तरफ देखनेसे घृणा होती है,—एक तो शीर्ण, तिसपर कुत्सित व्याधिके दागोंसे दूषित। स्टेशन पहुँचनेपर धर्मदासने पूछा—देवता, कहाँका टिकट लूँ ?

देवदासने कुछ सोच-समझकर कहा–चलो, घर चलें। उसके बाद देखा जायगा।

गाड़ीका समय आनेपर वे हुगलीका टिकट खरीदकर सवार हो गये। धर्मदास देवदासके पास ही रहा। सन्ध्यासे कुछ पहले ही देवदासकी आँखें जलने लगीं और उसे फिर ज्वर हो आया। उसने धर्मदासको बुलाकर कहा—धर्मदास, घर पहुँचना भी शायद कठिन होगा।

धर्मदासने डरते डरते पूछा—क्यों भइया ?

देवदासने हँसनेकी चेष्टा करते हुए इतना ही कहा—धर्मदास, मुझे फिर ज्वर हो आया है।

गाड़ी जिस समय काशीके रास्तेसे आगे बढ़ी, उस समय देवदास ज्वरमें बेहोश पड़ा था। पटनेके पास पहुँचनेपर उसे कुछ होश हुआ। उसने कहा—देखो धर्मदास, माँके पास पहुँचना तो सचमुच ही न हो सका।

धर्मदासने कहा—चलो भइया, हम लोग पटनेमें उतर कर किसी डॉक्टरको दिखला लेवें।

उत्तरमें देवदासने कहा—नहीं, रहने दो, चलो, हम लोग घर ही चलें।

गाड़ी जिस समय पांडुआ स्टेशनपर पहुँची, उस समय तड़का हो गया था।

सारी रात पानी बरसकर अब बन्द हो गया है। देवदास उठकर खड़ा हो गया। नीचे धर्मदास सोया हुआ है। उसने धीरेसे एक बार उसका ललाट स्पर्श किया; लेकिन, मारे लज्जाके जगा न सका। इसके बाद दरवाजा खोलकर वह धीरेसे बाहर निकल आया। गाड़ी सोये हुए धर्मदासको लेकर आगे बढ़ गई। देवदास काँपता काँपता स्टेशनके बाहर निकला। एक घोड़ा-गाड़ीके गाड़ीवानको बुलाकर बोला—क्यों भाई, हाथीपोता ले चलोगे ?

गाड़ीवानने एक बार मुँहकी ओर देखा और एक बार इधर-उधर देखा। इसके बाद कहा—नहीं बाबूजी, रास्ता अच्छा नहीं है। इस बरसातमें घोड़ागाड़ी वहाँ न जा सकेगी।

देवदासने उद्विग्न होकर पूछा—पालकी मिलेगी ?

गाड़ीवानने कहा—नहीं।

आशंकाके कारण देवदास वहीं बैठ गया—तो क्या वहाँ जाना न हो सकेगा ? उसके मुखपर ही उसकी अन्तिम अवस्था गाढ़ रूपसे अंकित थी जिसे एक अन्धा भी पढ़ सकता था।

गाड़ीवानने आर्द्र होकर पूछा—बाबूजी, कोई बैल-गाड़ी ठीक कर दूँ ?

देवदासने पूछा—कितनी देरमें पहुँचेगी।

गाड़ीवानने कहा—बाबूजी, रास्ता ठीक नहीं है। शायद दो दिन लग जायँगे।

देवदास मन ही मन हिसाब करने लगा, क्या दो दिन तक मैं जीता रहूँगा ? लेकिन पार्वतीके पास तो जाना ही होगा। उसे बहुत दिनोंकी अनेक मिथ्या बातें और अनेक मिथ्या आचरण स्मरण हो आये। लेकिन अन्तिम दिनकी वह प्रतिश्रुति तो सच करनी ही होगी। चाहे जिस तरह हो, एक बार उससे अन्तिम भेंट करनी ही होगी। लेकिन इस जीवनकी मियाद तो और अधिक बाकी नहीं है ! यही तो बड़े भारी डरकी बात है !

जिस समय देवदास बैल-गाड़ीपर बैठा, उस समय माँका स्मरण हो आनेपर उसकी आँखोंसे आँसू फूट निकले और स्नेहसे कोमल एक और मुख आज जीवनके इस अन्तिम क्षणमें अत्यन्त पवित्र होकर दिख पड़ा—वह मुख था चन्द्रमुखीका। पापिष्ठा समझकर जिससे हमेशा घृणा की है, आज उसीको अपनी माताके पास ही गौरवके साथ स्पष्ट होते देखकर उसकी आँखोंसे झर झर आँसू बहने लगे। इस जन्ममें उससे भेंट न होगी; और, शायद, बहुत दिनों तक तो वह खबर भी न पा सकेगी। फिर भी पार्वतीके पास ही चलना होगा। देवदासने

शपथ की थी कि एक बार अवश्य भेंट करूँगा। आज वह प्रतिज्ञा पूरी करनी ही होगी। रास्ता अच्छा नहीं है। रास्तेमें कहीं बरसातका जल जमा है और कहीं रास्ता ही टूट गया है। कीचड़से सारा रास्ता भरा हुआ है। बैल-गाड़ी धीरे धीरे चलने लगी। कहीं गाड़ीवानको उतरकर पहिया ढकेलना पड़ता है और कहीं दोनों बैलोंपर निर्दयतापूर्वक प्रहार करना पड़ता है। चाहे जिस तरह हो, यह सोलह कोस रास्ता तै करना ही होगा। हू हू करती हुई ठंढी हवा चल रही है। आज भी उसे सन्ध्याके बाद बहुत जोरसे बुखार चढ़ आया। उसने डरते हुए पूछा—गाड़ीवान, अभी और कितना रास्ता बाकी है?

गाड़ीवानने कहा—बाबूजी, अब भी आठ-दस कोस है।

"जल्दी चलो भइया, तुम्हें बहुत इनाम दूँगा।"

जेबमें सौ रुपयाका एक नोट था। उसे ही दिखाकर कहा—एक सौ रुपये दूँगा। जल्दी ले चलो।

इसके बाद देवदासको इस बातका पता भी न चल सका कि वह सारी रात कैसे और किधरसे होकर बीती। वह बिल्कुल बेसुध और बेहोश पड़ा रहा। सवेरे होश आनेपर पूछा—अरे, अभी और कितनी दूर है? क्या यह खतम ही न होगा?

गाड़ीवानने कहा—अभी छः कोस और है।

देवदासने ठंढी साँस लेकर कहा—जरा जल्दी चलो भइया, अब समय नहीं है।

गाड़ीवान कुछ भी न समझ सका; लेकिन नये उत्साहसे बैलोंको मारता और गाली-गलौज करता हुआ बढ़ने लगा। गाड़ी जी जानसे चल रही थी और अन्दर देवदास छटपटा रहा था। वह केवल यही सोचता था कि भेंट होगी तो? मैं पहुँच जाऊँगा? दोपहरके समय गाड़ी रोककर गाड़ीवानने बैलोंको कुछ चारा दिया और खुद भी कुछ खाकर फिर बैठ गया। उसने पूछा—बाबूजी, आप कुछ नहीं खायँगे?

"नहीं भाई, लेकिन मुझे प्यास बहुत लगी है। जरा पानी पिला सकते हो?"

उसने रास्तेके पासके एक तालसे थोड़ा-सा पानी ला दिया। आज सन्ध्याके बाद ज्वरके साथ देवदासकी नाकमेंसे बूँद बूँद करके खून गिरने लगा। उसने खूब जोरसे नाक दबा ली। इसके बाद जान पड़ा कि दाँतोंके पाससे खून बाहर निकल रहा है, निःश्वास-प्रश्वास भी शायद रुकने लगा है। उसने हाँफते हाँफते पूछा—अब और कितनी दूर है?

गाड़ीवानने कहा—अब दो कोस और होगा। रातके दस बजेतक पहुँच जायँगे।

देवदासने बहुत ही कष्टसे सिर उठाकर रास्तेकी ओर देखा—भगवन् !

गाड़ीवानने पूछा—बाबूजी, आप ऐसे क्यों कर रहे हैं ?

देवदास इस बातका उत्तर भी न दे सका। गाड़ी चलने लगी, लेकिन रातको दस बजे न पहुँचकर करीब बारह बजे हाथीपोताके जमींदारके मकानके सामने पीपलके तले पहुँचकर खड़ी हो गई।

गाड़ीवानने पुकार कहा—बाबूजी, उतर आइए !

कोई उत्तर नहीं। फिर पुकारा, लेकिन फिर भी कोई उत्तर नहीं। तब वह डरकर लालटेन मुँहके पास ले गया—बाबूजी, क्या सो गये ?

देवदास देख रहा है, उसने होंठ हिलाकर कुछ कहा, लेकिन कोई शब्द न निकला। गाड़ीवानने फिर पुकारा—ओ बाबूजी !

देवदासने हाथ उठाना चाहा, लेकिन वह न उठ सका। हाँ, उसकी आँखोंके कोनेसे दो बूँद आँसू गिर पड़े। गाड़ीवानने तब अक्ल खर्च करके पीपलके नीचे बने हुए पक्के थालेपर कुछ घात-पात बिछाकर एक बिछोना तैयार कर दिया, और इसके बाद बहुत कष्टसे देवदासको उठाकर उसीपर ला सुलाया। बाहर कोई नहीं है; जमींदारका मकान निस्तब्ध और निद्रित है। देवदासने बहुत कष्टसे जेबमेंसे सौ रुपयेका नोट निकालकर दे दिया। लालटैनकी रोशनीमें गाड़ीवानने देखा कि बाबू साहब उसकी तरफ देख रहे हैं, लेकिन कुछ कह नहीं सकते हैं। उसने अवस्थाका अनुमान करके नोट अपनी चादरके पल्लेमें बाँध लिया। देवदास छातीतक शालसे लिपटा हुआ है, सामने लालटेन जल रही है और नया मित्र पैरोंके पास बैठा हुआ सोच रहा है।

सवेरा हुआ। उस समय जमींदारके मकानसे कुछ लोग बाहर निकले ! उन्होंने एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा। पेड़के नीचे एक आदमी मर रहा है,—भला आदमी ! बदनपर शाल है, पैरोंमें बहुत बढ़िया चमचमाते जूते और हाथमें अँगूठी है। एक एक करके बहुत-से लोग जमा हो गये। धीरे धीरे भुवन बाबूके कानोंतक यह बात पहुँची। एक आदमीसे डाक्टरको बुला लानेके लिए कहकर वे स्वयं आ पहुँचे। देवदासने सभी लोगोंकी तरफ देखा, लेकिन उसका गला रुँध गया था। वह मुँहसे एक बात भी न कह सका। केवल उसकी आँखोंसे जल बहने लगा। गाड़ीवान जो कुछ जानता था, वह सब उसने कह सुनाया। लेकिन उससे किसी खास बातका पता न चला। डाक्टरने आकर देखा और कहा—ऊर्ध्व श्वास चल रहा है। अभी मर जायगा।

सभी लोगोंने कहा—हाय हाय !

ऊपर बैठी हुई पार्वतीने भी यह कहानी सुनकर कहा—हाय हाय !

एक आदमी दया करके उसके मुँहमें थोड़ा-सा जल दे गया। देवदासने एक बार करुण दृष्टिसे उसकी ओर देखा और उसके बाद आँखें बन्द कर लीं। कुछ देर तक और भी साँस लेता रहा। लेकिन उसके बाद सभी बातोंका अन्त हो गया। अब यह तर्क होने लगा कि इसका दाह कौन करेगा, इसे कौन छुएगा और यह कौन जात है ? भुवन बाबूने पासके थानेमें खबर भेजी। इन्स्पेक्टर आकर जाँच करने लगा। तिल्ली और जिगरके कारण मृत्यु हुई है, नाक और मुँहमें खूनके दाग हैं। जेबमेंसे दो पत्र निकले। एकमें तालसोनापुरके द्विजदास मुकर्जीने बम्बईके देवदासको लिखा था—अभी रुपये नहीं भेजे जा सकते।

दूसरे पत्रमें काशीकी हरिमती देवीने देवदास मुकर्जीको लिखा है—अब तुम्हारी तबीयत कैसी है ?

बाएँ हाथपर अँगरेजीमें नामका पहला अक्षर गुदा हुआ है। इन्स्पेक्टर साहबने जाँच करके कहा—हाँ, यह आदमी देवदास ही है।

हाथमें नीलमकी एक अँगूठी—दाम करीब डेढ़ सौ रुपया, बदनपर एक जोड़ी शाल, दाम करीब दो सौ रुपये। इसके सिवा कोट, धोती आदि सभी चीजें लिख लीं। चौधरी महाशय और महेन्द्रनाथ दोनों ही उपस्थित थे। ताल-सोनापुरका नाम सुनकर महेन्द्रनाथने कहा—यह तो छोटी माँके मैकेका आदमी है। वे अगर देखें—

चौधरी महाशयने बिगड़कर कहा—वह क्या यहाँ मुरदेको शनाख्त करने आवेंगी ?

दारोगाने हँसते हुए कहा—पागल और किसे कहते हैं !

एक ब्राह्मणका मृत शरीर होनेपर भी गाँव-देहातमें कोई उसे स्पर्श करनेको राजी नहीं हुआ। इसीलिए चाण्डाल आकर उसे उठा ले गये। उन लोगोंने किसी सूखे हुए तालके किनारे अध-जला करके फेंक दिया। कोए और गिद्ध आकर उसपर बैठ गये, गीदड़ और कुत्ते उस शवके लिए आपसमें लड़ाई-झगड़ा करने लगे। तो भी जिस किसीने सुना, यही कहा—हाय हाय ! दासियाँ और नौकर-चाकर भी आपसमें बातें करने लगे—हाय हाय ! भला आदमी था ! दो सौ रुपयेका शाल था ! डेढ़ सौ रुपयेकी अँगूठी थी ! वे सब चीजें अब दारोगाके पास हैं। दोनों चिट्ठियाँ भी उसीने अपने पास रख ली हैं।

यह खबर सवेरे ही पार्वतीके कानोंतक पहुँच गई; लेकिन आज-कल वह किसी बातपर अच्छी तरह ध्यान नहीं दे सकती, इसलिए इस मामलेको ठीक ठीक नहीं

समझ सकी। लेकिन जब सभी लोगोंके मुँहपर यह बात चढ़ गई तब पार्वतीने भी विशेष रूपसे सुनी और सन्ध्यासे कुछ पहले एक दासीको बुलाकर पूछा—क्या हुआ है री? कौन मरा है?

दासीने कहा—हाय हाय! बहूजी, कोई भी तो नहीं जानता। पूर्व जन्मकी मिट्टी खरीदी हुई थी, इसीलिए यहाँ केवल मरनेको आया था। इस जाड़े पालेमें रातसे ही पड़ा हुआ था। आज सवेरे नौ बजे मरा है।

पार्वतीने लम्बी साँस लेकर पूछा—हाय हाय! कुछ भी पता नहीं चला कि कौन था?

दासीने कहा—बहूजी, महेन्द्र बाबू सब जानते हैं, मैं इतना नहीं जानती।

महेन्द्र बुलाया गया। उसने आकर कहा—तुम्हारे ही यहाँके देवदास मुकर्जी थे!

पार्वतीने महेन्द्रके बहुत पास खिसककर उसे तीव्र दृष्टिसे देखते हुए पूछा—कौन, देव भइया? कैसे जाना?

"जेबमें दो चिट्ठियाँ थीं; एक द्विजदास मुकर्जीकी लिखी हुई थी—

पार्वतीने रोककर कहा—हाँ, उसके बड़े भाई।

"और एक काशीकी हरिमती देवीकी लिखी हुई थी—"

"हाँ, वे माँ हैं।"

"हाथमें गोदनेका नाम लिखा हुआ था—"

"हाँ, पहले कलकत्ते गये थे, तब वहाँ लिखवाया था।"

"नीलमकी एक अँगूठी थी—"

"हाँ, जनेऊके समय तायाजीने उन्हें दी थी। मैं जाती हूँ—"

यह कहती कहती पार्वती दौड़ी हुई नीचेकी तरफ बढ़ी।

महेन्द्रने हत-बुद्धि होकर पूछा—अरी माँ, कहाँ जा रही हो?

"देव भइयाके पास।"

"वह तो अब नहीं। उन्हें तो डोम उठा ले गये।"

"अरी, मइया री मइया!" कहती हुई पार्वती रोती हुई दौड़ी। महेन्द्रने दौड़कर सामने रास्ता रोककर कहा—तुम क्या पागल हो गई हो माँ, कहाँ जाओगी?

पार्वतीने महेन्द्रकी ओर तीव्र दृष्टिसे देखकर कहा—महेन्द्र, क्या सचमुच तुमने मुझे पागल समझ लिया है? रास्ता छोड़ो।

उसकी आँखोंकी ओर देखकर महेन्द्रने रास्ता छोड़ दिया और वह चुपचाप

पीछे पीछे चलने लगा। पार्वती बाहर निकल गई। उस समय बाहर नायब और गुमाश्ते काम कर रहे थे। उन्होंने देखा। चौधरी महाशयने चश्मेके ऊपरसे देखकर पूछा—कौन जा रहा है?

महेन्द्रने कहा—छोटी माँ।

"यह क्या? कहाँ जाती हैं?"

महेन्द्रने कहा—देवदासको देखने।

भुवन चौधरी चिल्ला उठे—क्या तुम सब लोग पागल हो गये हो! पकड़ो, पकड़ो, पकड़ लाओ। पागल हो गई हैं। ओ महेन्द्र! ओ छोटी बहू!

इसके बाद दासी-चाकरोंने मिलकर धर-पकड़ करके पार्वतीका मूर्च्छित शरीर खींचकर घरके अन्दर ला रक्खा। दूसरे दिन मूर्च्छा तो दूर हो गई, लेकिन वह बोली-चाली कुछ भी नहीं। एक दासीको बुलाकर सिर्फ इतना ही पूछा—रातको आये थे न? सारी रात!

इसके बाद पार्वती फिर चुप हो गई।

* * *

इधर इतने दिनोंमें पार्वतीका क्या हाल हुआ और वह किस तरह है, सो नहीं मालूम; जाननेकी इच्छा भी नहीं होती। केवल देवदासके लिए बहुत ही दुःख हो रहा है। तुम लोगोंमेंसे जो कोई यह कहानी पढ़ेगा, वह भी शायद हमारी ही तरह दुखी होगा। तो भी यदि कभी देवदास सरीखे किसी अभागे असंयमी और पापिष्ठके साथ तुम्हारा परिचय हो, तो उसके लिए कुछ प्रार्थना करना। प्रार्थना यह करना कि और चाहे जो हो, लेकिन उसकी तरह किसीकी मृत्यु न हो। मरनेमें तो कोई हर्ज नहीं है, लेकिन ऐसा हो कि उस समय एक स्नेहपूर्ण कर-स्पर्श उसके मस्तक तक पहुँचे और एक करुणार्द्र स्नेहपूर्ण मुख देखते देखते इस जीवनका अन्त हो। मरनेके समय वह किसीकी आँखोंका एक बूँद जल देखकर मर सके।

समाप्त

# बड़ी बहन

## पहला परिच्छेद

इस पृथ्वीपर एक खास तरहके आदमी हैं जो मानों फूसकी आग हैं। वे झटसे जल भी उठते हैं और फिर चटपट बुझ भी जाते हैं। उन लोगोंके पीछे सदा-सर्वदा एक ऐसा आदमी रहना चाहिए जो आवश्यकताके अनुसार उनके लिए फूस जुटा दिया करे।

जिस प्रकार गृहस्थ-कन्याएँ मिट्टीका दीपक जलानेके समय उसमें तेल और बत्ती डालती हैं, उसी प्रकार वे उसमें एक सलाई भी रख देती हैं। जिस समय प्रदीपकी शिखा कुछ कम होने लगती है उस समय उस छोटी-सी सलाईकी बहुत आवश्यकता होती है,—उससे बत्ती उकसा देनी पड़ती है। यदि वह न हो, तो तेल और बत्तीके रहते हुए भी दीपकका जलना जारी नहीं रह सकता।

सुरेन्द्रनाथकी प्रकृति भी बहुत कुछ इसी तरहकी है। उसमें बल, बुद्धि और आत्म-विश्वास सभी कुछ है; लेकिन, फिर भी वह कोई काम अकेला पूरा नहीं कर सकता। जिस तरह थोड़ा-सा काम वह उत्साहके साथ कर सकता है, उसी तरह बाकीका काम नीरव आलस्यपर छोड़कर चुपचाप बैठा रह सकता है। उस समय एक आदमीकी जरूरत होती है जो उसे उकसा दे।

सुरेन्द्रके पिता सुदूर पश्चिममें वकालत करते हैं। बंगालके साथ उनका कोई अधिक सम्बन्ध नहीं है। वहींपर सुरेन्द्रने बीस बरसकी उमरमें एम० ए० पास किया था,—कुछ तो उसने स्वयं अपने गुणोंसे और कुछ अपनी विमाताके गुणोंसे। यह विमाता ऐसे अध्यवसायके साथ उसके पीछे लगी रहती कि अनेक

अवसरोंपर वह यह नहीं समझ पाता कि स्वयं मेरी भी कोई स्वतन्त्र सत्ता है या नहीं। सुरेन्द्र नामका कोई स्वतन्त्र जीव इस संसारमें निवास नहीं करता,—इस विमाताकी इच्छा ही एक मनुष्यका आकार धारण करके सब काम-धन्धे, सोना-जागना, पढ़ना-लिखना, पास करना आदि करा लेती है। यह विमाता स्वयं अपनी सन्तानके प्रति बहुत कुछ उदासीन रहनेपर भी सुरेन्द्रकी इतनी हिफाजत करती है जिसकी कोई हद नहीं। उसका थूकना-खखारना तक उसकी निगाहोंसे नहीं बच सकता। इस कर्त्तव्य-परायण स्त्रीके शासनमें रहकर सुरेन्द्रने यों नामको पढ़ना लिखना तो सीख लिया, लेकिन, आत्म-निर्भरता बिलकुल नहीं सीखी। स्वयं अपने ऊपर उसे कुछ भी विश्वास नहीं। वह नहीं समझता कि कोई भी काम मेरे द्वारा सर्वांग-सुन्दर और पूरा पूरा हो सकता है। कब मुझे किस चीज़की जरूरत होगी और कब मुझे क्या करना होगा; इसके लिए वह पूरी तरहसे एक और आदमीपर निर्भर रहता है। अनेक अवसरोंपर तो वह ठीक तरहसे यह भी निश्चित नहीं कर सकता कि मुझे नींद आ रही है या भूख लग रही है। जबसे उसने होश सँभाला है, तबसे अब तकके पन्द्रह वर्ष उसने विमातापर निर्भर रहके ही बिताये हैं। अतः; विमाताको उसके लिए बहुत-से काम करने पड़ते हैं। चौबीस घण्टोंमेंसे बाईस घण्टे तिरस्कार, उलहने, फटकार, ताड़ना, मुँह-बिगाड़ना आदि तो था ही, इसके सिवा परीक्षाके साल-भर पहलेसे ही सारी रात जगाये रखनेके लिए उसे स्वयं अपना निद्रा-सुख तक विसर्जित कर देना पड़ता है! भला अपनी सौतके लड़केके लिए कौन और कब इतना करता है! मुहल्ले-टोलेके लोग एक मुखसे राय-गृहिणीकी प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते हैं।

सुरेन्द्रके प्रति उसके आन्तरिक यत्नमें कभी नामको भी त्रुटि नहीं होती थी। तिरस्कार और लांछनाके उपरान्त तुरत सुरेन्द्रकी आँखें और मुँह लाल हो जाते तो राय-गृहिणी उसे ज्वरका पूर्व-लक्षण समझकर तीन दिनके लिए साबूदानेकी व्यवस्था कर देतीं। मानसिक उन्नति और शिक्षा-दीक्षाके प्रति उनकी और भी अधिक तीव्र दृष्टि थी। सुरेन्द्रके शरीरपर साफ या आधुनिक रुचि-अनुमोदित वस्त्र आदि देखते ही वह साफ समझ लेती थी कि यह शौकीन है और बाबू बनकर रहना चाहता है; और उसी दम दो-तीन सप्ताहके लिए सुरेन्द्रके कपड़े आदि धोबीके घर जानेकी मनाही हो जाती थी!

बस इसी तरह सुरेन्द्रके दिन बीतते थे। इस प्रकारकी स्नेहपूर्ण सतर्कताके बीच कभी कभी उसके मनमें आता था कि यह जीवन बचा रखने योग्य नहीं है

और कभी कभी वह सोचता था कि शायद सभी लोगोंके जीवनका प्रभात इसी तरह बीतता है। लेकिन बीचमें कभी कभी आस-पासके लोग उसके पीछे पड़कर उसके दिमाग़में कुछ और ही प्रकारकी धारणाएँ भर जाते थे।

एक दिन वही हुआ। उसके एक मित्रने आकर उसे परामर्श दिया कि अगर तुम्हारे जैसा बुद्धिमान् लड़का विलायत जा सके तो भविष्यमें उन्नतिकी बहुत कुछ आशा हो सकती है और फिर स्वदेश लौटनेपर वह बहुतसे लोगोंका बहुत कुछ उपकार कर सकता है। यह बात सुरेन्द्रको कुछ बुरी नहीं मालूम हुई। जंगलमें रहनेवाले पक्षीकी अपेक्षा पिंजड़ेका पक्षी ही अधिक फड़फड़ाता है। सुरेन्द्रकी कल्पनाके नेत्रोंके सामने मानों एक स्वच्छन्द वायु और एक स्वाधीनताका प्रकाश दिखाई देने लगा। और इसीलिए उसके पराधीन प्राण उन्मत्तकी भाँति पिंजरेके चारों ओर फड़फड़ाकर घूमने लगे।

उसने पिताके पास पहुँचकर निवेदन किया कि चाहे जिस तरह हो, मेरे विलायत जानेका इन्तजाम कर दिया जाय। साथ ही उसने यह भी कह दिया कि इससे सब प्रकारकी उन्नतिकी आशा है। पिताने कहा कि अच्छा सोचूँगा। लेकिन घरकी मालिकिनकी इच्छा इसके बिलकुल विरुद्ध थी। वह पिता और पुत्रके बीचमें आँधीकी तरह आकर पहुँच गई और इस तरह ठठाकर हँस पड़ी कि दोनों ही आदमी स्तम्भित हो गये।

गृहिणीने कहा, " तो फिर मुझे भी विलायत भेज दो, नहीं तो सुरेन्द्रको वहाँ सँभालेगा कौन ? जो यही नहीं जानता कि कब क्या खाना होता है और कब क्या पहनना होता है, उसे अकेले विलायत भेज रहे हो ? घरके घोड़ेको विलायत भेजना जैसा है, इसे भेजना भी वैसा ही है। घोड़े और बैल इतना तो समझते हैं कि हमें भूख लगी है या नींद आ रही है, तुम्हारा सुरेन्द्र तो इतना भी नहीं समझ सकता। " और इसके बाद वह फिर हँस पड़ी।

हास्यका आधिक्य देखकर राय महाशय बहुत ही लज्जित हुए। सुरेन्द्रनाथने मनमें समझ लिया कि ऐसी अखंडनीय युक्तिके विरुद्ध किसी प्रकारका प्रतिवाद नहीं किया जा सकता। विलायत जानेकी आशा उसने छोड़ दी। उसका मित्र यह बात सुनकर बहुत दुःखित हुआ। लेकिन वह यह भी नहीं बतला सका कि विलायत जानेका और भी कोई उपाय है या नहीं। लेकिन, अन्तमें उसने कहा कि इस प्रकारकी पराधीनतामें पड़े रहनेकी अपेक्षा भीख माँगकर खा लेना कहीं अच्छा है। और यह निश्चित है कि जो आदमी इस प्रकार सम्मानपूर्वक एम०

ए० पास कर सकता है, उसे अपना पेट पालनेके लिए कभी लालायित नहीं होना पड़ता।

सुरेन्द्र घर आकर यही बात सोचने लगा। उसने जितना ही सोचा उतना ही वह देख सका कि मेरे मित्रने ठीक ही कहा है। अब भीख माँगकर खाना ही अच्छा है। सब लोग विलायत तो जा नहीं सकते। लेकिन, फिर भी, इस तरह जीवित और मृतके बीच रहकर भी सब लोगोंको दिन नहीं बिताने पड़ते।

एक दिन गम्भीर रात्रिके समय वह स्टेशनपर पहुँचकर और कलकत्तेका टिकट खरीदकर गाड़ीपर सवार हो गया, और डाकसे उसने पिताके पास पत्र भेज दिया कि मैं कुछ दिनोंके लिए घर छोड़ रहा हूँ। व्यर्थ ही ढूँढ़नेसे कोई विशेष लाभ नहीं होगा और यदि मेरा पता भी लग गया तो भी मेरे घर लौटकर आनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

राय महाशयने गृहिणीको वह पत्र दिखलाया। उन्होंने कहा—सुरेन्द्र अब बड़ा हो गया है। पढ़-लिख चुका है। अब उसके पंख निकले हैं। अगर अब भी वह उड़कर न भागेगा तो और कब भागेगा?

तो भी उन्होंने उसे तलाश किया। कलकत्तेमें उनके जो परिचित थे उन्हें पत्र लिख दिये। लेकिन कुछ भी फल न हुआ। सुरेन्द्रका कोई पता न चला।

## दूसरा परिच्छेद

कलकत्तेकी जन-कोलाहलपूर्ण सड़कोंपर पहुँचकर सुरेन्द्रनाथ घबरा गया। वहाँ डाँटने-फटकारनेवाला भी कोई नहीं था और कोई दिन-रात शासनमें भी नहीं रखना चाहता था। मुँह सूख जानेपर कोई उलटकर देखता नहीं; मुँह भारी होनेपर भी कोई लक्ष्य नहीं करता! यहाँ आप ही अपने आपको देखना पड़ता है। यहाँ भिक्षा भी मिल जाती है, करुणाके लिए भी स्थान है और आश्रय भी मिल जाता है। लेकिन अपना प्रयत्न चाहिए। यहाँ स्वयं अपनी इच्छासे कोई तुम्हारे बीचमें न आ पड़ेगा।

यहाँ आनेपर पहले पहल उसे यह शिक्षा मिली कि जानेकी चेष्टा अपने आपको करनी पड़ती है, आश्रयके लिए स्थान स्वयं ढूँढ़ना पड़ता है तथा निद्रा और क्षुधामें भी कुछ भेद है।

उसे घर छोड़े कई दिन हो गये हैं। गली गली घूमते रहनेके कारण शरीर

नितान्त शिथिल हो गया है और उसके पासके रुपये भी खतम हो चले हैं। वस्त्र आदि मलिन और जीर्ण होने लगे हैं। रातको सोने तकके लिए कहीं ठिकाना नहीं। सुरेन्द्रकी आँखोंमें जल भर आया। घरको पत्र भेजनेकी इच्छा नहीं होती,—बहुत लज्जा आती है। और सबसे बढ़कर यह कि जब उसे अपनी विमाताके उस स्नेहकठिन मुखका ध्यान हो आता है तब घर जानेकी इच्छा बिलकुल आकाश-कुसुम हो जाती है। उसे इस बातको सोचनेमें भी भय होता है कि मैं कभी वहाँ था।

एक दिन उसने अपनी ही तरहके एक दरिद्रको अपने पास देखकर कहा, "क्यों भाई, तुम लोग यहाँ खाते किस तरह हो?" वह आदमी भी एक तरहसे बेवकूफ-सा ही था,—नहीं तो वह सुरेन्द्रकी हँसी उड़ाता। उसने कहा—नौकरी करके कमाते-खाते हैं। कलकत्तेमें रोजगारकी क्या कमी है!

सुरेन्द्रने पूछा—मुझे भी कोई नौकरी दिलवा सकते हो?

उसने पूछा—तुम क्या काम जानते हो?

सुरेन्द्रनाथ कोई भी काम नहीं जानता था; इसलिए चुप होकर कुछ सोचने लगा।

"तुम भले घरके लड़के हो?"

सुरेन्द्रनाथने सिर हिला दिया।

"तो लिखना-पढ़ना क्यों नहीं सीखा?"

"सीखा है!"

उस आदमीने कुछ सोचकर कहा—तो फिर इस बड़े मकानमें चले जाओ। इसमें एक बहुत बड़े जमींदार रहते हैं, वे कुछ न कुछ इन्तज़ाम कर देंगे।

यह कहकर वह चला गया।

सुरेन्द्रनाथ फाटकके पास गया। कुछ देर वहाँ खड़ा रहा। फिर जरा पीछे हटा। फिर एक बार आगे बढ़ा और फिर पीछे हट आया। उस दिन कुछ भी न हुआ। दूसरा दिन भी इसी तरह बीत गया। दो दिनमें साहस संचित करके आखिर उसने भीतर प्रवेश किया। सामने एक नौकर खड़ा था। उसने पूछा—क्या चाहते हैं?

"बाबू साहबसे—।"

"बाबू साहब घर नहीं हैं।"

सुरेन्द्रनाथका चेहरा आनन्दसे भर गया। एक बहुत ही मुश्किल कामसे उसने छुट्टी पाई। बाबू साहब मकानपर नहीं हैं। नौकरीकी बात,—दुःखकी कहानी कहनी नहीं पड़ी, यही उसके आनन्दका कारण था। तब दूने उत्साहसे लौटकर

उसने दूकानपर बैठकर भर-पेट भोजन किया। थोड़ी देर तक खूब प्रसन्नतासे वह इधर-उधर घूमता रहा और मन ही मन खूब अच्छी तरह इस बातकी आलोचना करने लगा कि कल किस तरहकी बातचीत करनेपर मेरा कुछ ठिकाना लग जायगा।

लेकिन दूसरे दिन वह उत्साह न रह गया। ज्यों ज्यों उस मकानके नज़दीक पहुँचने लगा, त्यों त्यों उसकी लौट पड़नेकी इच्छा बढ़ने लगी। अन्तमें फाटकके पास पहुँचकर वह बिलकुल हतोत्साह हो गया। अब उसके पैर किसी तरह अन्दर नहीं जाना चाहते। आज किसी तरह यह बात उसके ध्यानमें ही नहीं आती है कि मैं अपने ही लिए स्वयं यहाँ आया हूँ। ठीक यही मालूम होता था कि और किसीने उसे जबरदस्ती यहाँ भेज दिया है। लेकिन वह दरवाजेपर खड़ा होकर और ज्यादा उम्मेदवारी नहीं करेगा, इसलिए अन्दर जा पहुँचा। फिर उसी नौकरसे भेंट हुई। उसने कहा, " बाबू साहब घरपर हैं। आप उनसे भेंट करेंगे ? "

" हाँ। "

" अच्छा तो चलिए। "

लेकिन यह और भी कठिनाई हुई। जमींदार साहबका बहुत बड़ा मकान है। खूब कायदेसे साहबी ढंगके साज-समान सजे हुए हैं। कमेरपर कमरे, संगमरमरकी सीढ़ियाँ, हर कमरेमें झाड़-फानूस और उनपर लाल कपड़ेके गिलाफ शोभा पा रहे हैं। दीवारोंके साथ लगे हुए बड़े बड़े शीशे, न जाने कितनी तसवीरें और कितने ही फोटोग्राफ। दूसरोंके लिए ये सब चीजें चाहे जैसी हों, लेकिन सुरेन्द्रके लिए नई नहीं थीं। कारण, उसके पिताका घर भी कोई दरिद्रकी कुटिया नहीं है। और चाहे जो हो, लेकिन वह दरिद्र पिताके आश्रयमें इतना बड़ा नहीं हुआ है। सुरेन्द्र सोच रहा था उस आदमीकी बात जिसके साथ भेंट करनेके लिए और जिससे अनुनय-विनय करनेके लिए वह जा रहा है, कि वे क्या प्रश्न करेंगे और मैं क्या उत्तर दूँगा।

लेकिन इतनी बातें सोचनेका समय नहीं, मकानके मालिक सामने ही बैठे हुए थे, सुरेन्द्रनाथसे बोले—क्या काम है ?

आज तीन दिनसे सुरेन्द्र यही बात सोच रहा था; लेकिन, इस समय वह सभी बातें भूल गया, बोला—मैं—मैं—

व्रजनाथ लाहिड़ी पूर्व बंगालके जमींदार हैं। उनके सिरके दो-चार बाल भी पक गये हैं और वेसमयसे पहले नहीं बल्कि ठीक उमरमें ही पके हैं। बड़े आदमी हैं। इसीलिए उन्होंने चटसे सुरेन्द्रनाथको समझ लिया और पूछा, " क्या चाहते हो ? "

" मुझे कोई एक—"

" क्या ?"

" नौकरी—"

व्रजराज बाबूने कुछ मुस्कराकर कहा, " यह तुमसे किसने कहा कि मैं नौकरी दे सकता हूँ ?"

" रास्तेमें एक आदमीसे भेंट हुई; मैंने उससे पूछा और उसने आपके बारेमें—"

" अच्छी बात है। तुम्हारा मकान कहाँ है ?"

" पश्चिममें।"

" वहाँ तुम्हारे कौन हैं ?" सुरेन्द्रनाथने सब बातें बतला दीं।

" तुम्हारे पिता क्या करते हैं ?"

अवस्थाके दोषसे सुरेन्द्रनाथने एक नया ढंग सीख लिया था। उसने कुछ अटकते अटकते कहा, " मामूली नौकरी करते हैं।"

" लेकिन चूँकि उससे काम नहीं चलता, इसीलिए तुम भी कुछ कमाना चाहते हो ?"

" जी हाँ।"

" यहाँ कहाँ रहते हो ?"

" कोई जगह निश्चित नहीं है,—जहाँ तहाँ।"

व्रज बाबूको दया आ गई। सुरेन्द्रको बैठाकर उन्होंने कहा—तुम अभी तक बच्चे ही हो। इसी अवस्थामें तुम घर छोड़नेके लिए विवश हुए हो, यह जानकर दुःख होता है। यद्यपि मैं स्वयं तुम्हें कोई नौकरी नहीं दे सकता, लेकिन फिर भी कुछ ऐसा उपाय कर सकता हूँ जिसमें तुम्हारा कुछ बन्दोबस्त हो जाय !

जब व्रज बाबूने देखा कि सुरेन्द्र " अच्छा " कहकर चला जा रहा है, तब उन्होंने फिर बुलाकर कहा—तुम्हें और कुछ नहीं पूछना है ?

" जी नहीं।"

" बस इतनेसे ही तुम्हारा काम हो गया ? यह सब जानने-समझनेकी कुछ भी जरूरत नहीं समझी कि मैं तुम्हारे लिए क्या उपाय कर सकता हूँ और कब कर सकता हूँ ?"

सुरेन्द्र अप्रतिभ होकर लौटकर खड़ा हो गया। व्रज बाबूने हँसते हुए पूछा, " अब कहाँ जाओगे ?"

" किसी दूकानपर।"

" वहीं भोजन करोगे ? "

" हाँ, रोज ऐसा ही करता हूँ । "

" तुमने लिखना-पढ़ना कहाँ तक सीखा है ? "

" यों ही थोड़ा-सा सीखा हैं । "

" मेरे लड़केको पढ़ा सकते हो ? "

सुरेन्द्रने प्रसन्न होकर कहा, " हाँ, पढ़ा सकता हूँ । "

व्रज बाबू फिर हँस पड़े । उन्होंने समझ लिया कि दुःख और दरिद्रताके कारण इसका दिमाग ठिकाने नहीं है । क्योंकि बिना यह जाने-समझे ही कि किसे पढ़ाना होगा और क्या पढ़ाना होगा, इस प्रकार आनन्दित होना उन्हें निरा पागलपन ही जान पड़ा । उन्होंने पूछा—अगर वह कहे कि मैं बी० ए० में पढ़ता हूँ तो तुम किस तरह पढ़ा सकोगे ?

सुरेन्द्रने कुछ गम्भीर होकर और सोचकर कहा—सो एक तरहसे काम चला ही लूँगा ।

इसपर व्रज बाबूने और कुछ भी नहीं कहा । नौकरको बुलाकर कहा, " बंकू, इनके रहनेके लिए जगहका इन्तजाम कर दो और स्थान तथा भोजन आदिका प्रबन्ध कर दो । " इसके बाद सुरेन्द्रकी ओर देखकर कहा, " सन्ध्याके बाद मैं तुम्हें फिर बुला भेजूँगा । तुम मेरे ही मकानमें रहो । जब तक किसी नौकरीका इन्तजाम न हो, तब तक मजेमें यहाँ रह सकते हो । "

दोपहरको भोजन करनेके लिए जाकर उन्होंने अपनी बड़ी लड़की माधवीको बुलाकर कहा—बेटी, एक गरीब आदमीको घरमें रहनेकी जगह दी है ।

" वह कौन है बाबूजी ? "

" गरीब आदमी है इसके सिवाय और कुछ नहीं जानता । लिखना-पढ़ना शायद कुछ जानता है । क्योंकि जब तुम्हारे बड़े भाईको पढ़ानेको लिए कहा गया, तब उसने वह भी स्वीकार कर लिया ! जो बी० ए० क्लास तकके लड़केको पढ़ानेका साहस कर सकता है, वह कमसे कम तुम्हारी छोटी बहनको तो जरूर ही पढ़ा सकेगा । मैं सोचता हूँ कि वही प्रमीलाका मास्टर रहे । "

माधवीने इसपर कोई आपत्ति नहीं की ।

सन्ध्याके बाद उसे बुलवाकर व्रज बाबूने यही बात कह दी । दूसरे दिनसे सुरेन्द्रनाथ प्रमीलाको पढ़ाने लगा ।

प्रमीलाकी अवस्था सात वर्षकी है । वह ' बोधोदय ' पढ़ती है । अपनी बड़ी

बहन माधवीसे अँगरेजीकी पहली पुस्तक 'मेंढककी कहानी' तक पढ़ी थी। वह कापी, पुस्तक, स्लेट, पेन्सिल, तसवीर, लोजेंजेस आदि सब कुछ लाकर पढ़ने बैठ गई।

"Do not move" सुरेन्द्रनाथने कह दिया, "Do not move माने हिलो मत।"

प्रमीला पढ़ने लगी, "Do not move—हिलो मत।"

इसके बाद सुरेन्द्रनाथ अन्यमनस्क होकर स्लेट खींचकर और पेन्सिल हाथमें लेकर उसपर कुछ अंक लिखने लगा। प्राबलेमपर प्राबलेम साल्व होने लगे। उधर घड़ीमें सातके बाद आठ और आठके बाद नौ बजने लगे। प्रमीला कभी इस करवट और कभी उस करवट होकर किताबके तसबीरोंवाले पन्ने उलटती, कभी लेट जाती, कभी उठकर बैठ जाती, कभी मुँहमें लोजेंजेस रखकर चूसती और कभी बेचारे मेंढ़कके सारे शरीरपर स्याही पोतती हुई पढ़ती—Do not move—हिलो मत।

"मास्टर साहब, हम अन्दर जायँ?"

"जाओ।"

उसका सवेरेका समय इसी प्रकार कट जाता। लेकिन दोपहरका काम कुछ और तरहका था। व्रजबाबूने अनुग्रह करके सुरेन्द्रनाथकी नौकरीका बन्दोबस्त करनेके लिए कुछ भले आदमियोंके नाम पत्र लिख दिये थे। सुरेन्द्रनाथ वही पत्र जेबमें रखकर घरसे बाहर निकल पड़ता। पता लगाकर उन लोगोंके मकानोंके सामने जा पहुँचता। वहाँ देखता कि मकान कितना बड़ा है, उसमें कितनी खिड़कियाँ और दरवाजे हैं, बाहरकी तरफ कितने कमरे हैं, मकान दो-मंजिला है या ति-मंजिला, सामने कोई रोशनीका खम्भा है या नहीं, आदि। इसके बाद सन्ध्याके पहले ही घर लौट आया करता।

कलकत्ते आनेपर सुरेन्द्रनाथने कुछ पुस्तकें खरीदी थीं। इसके सिवा वह अपने घरसे भी कुछ पुस्तकें लेता आया था। अब गैसके प्रकाशमें वही पुस्तकें पढ़ा करता। व्रजबाबू यदि कभी उससे काम-धन्धेकी बात पूछते तो या तो चुप रह जाता और या कह दिया करता कि उन सज्जनसे मुलाकात नहीं हुई।

# तीसरा परिच्छेद

कोई चार बरस हुए, व्रजराज बाबूका पत्नी-वियोग हो गया है। वृद्धावस्थाका यह दुःख बूढ़े ही समझ सकते हैं। लेकिन यह बात जाने दो। उनकी लाड़ली लड़की माधवीदेवी इस सोलह वर्षकी ही अवस्थामें अपना पति गवाँ बैठी है, इससे व्रजराज बाबूके शरीरका आधा खून सूख गया है। उन्होंने बहुत ही शौकसे और खूब धूमधामसे अपनी कन्याका विवाह किया था। वे स्वयं धनी हैं, इसीलिए उन्होंने धनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, लड़केके धन-सम्पत्ति है या नहीं, इसकी खोज नहीं की, सिर्फ यही देखा कि लड़का लिख-पढ़ रहा है, रूपवान् है, सुशील है और साधु-चरित्र है। इसी बातका ख्याल रखकर उन्होंने माधवीको ब्याह दिया था।

ग्यारह वर्षकी अवस्थामें माधवीका विवाह हुआ था। तीन बरस तक वह अपने स्वामीके यहाँ रही। यत्न, स्नेह और प्रेम आदि सभी कुछ उसने पाया था। लेकिन योगेन्द्रनाथ जीवित न रहे। माधवीके इस जीवनकी सारी साधपर पानी फेरकर और व्रजराजके कलेजेमें बरछी मारकर वे स्वर्ग सिधार गये। मरनेके समय जब माधवी बहुत रोने लगी तब उन्होंने बहुत ही कोमल स्वरमें कहा था, "माधवी, मुझे इसी बातका सबसे अधिक दुःख है कि मैं तुम्हें छोड़े जा रहा हूँ। मैं मर जाऊँ, इसमें कुछ हर्जकी बात नहीं है;—लेकिन, यह बात मुझे बहुत ही व्याकुल कर रही है कि तुम आजीवन कष्ट भोगोगी, मैं तुम्हारा आदर-यत्न न कर सका—"

इसके बाद योगेन्द्रनाथके शीर्ण वक्षःस्थलपर आँसुओंकी धारा बह चली। माधवीने उनके आँसू पोंछते हुए कहा था, "मैं जब फिर तुम्हारे चरणोंमें आकर पड़ूँगी, तब आदर यत्न करना—"

योगेन्द्रनाथने कहा था, "माधवी, जो जीवन तुम मेरे सुखके लिए समर्पित करतीं, वही जीवन अब सबके सुखके लिए समर्पण करना। जिसका मुख कष्टपूर्ण और उदास देखना, उसीका मुख प्रफुल्लित करनेकी चेष्टा करना। और क्या कहूँ, माधवी,—" इसके बाद फिर उच्छ्वसित अश्रु झड़ पड़े। माधवीने उन्हें पोंछ दिया।

"तुम सत्पथपर रहना। तुम्हारे पुण्यसे मैं फिर तुम्हें पाऊँगा।"

तभीसे माधवी बिलकुल बदल गई है। क्रोध, हिंसा, द्वेष आदि जो कुछ उसके थे उन सबको उसने अपने स्वामीकी चिताकी भस्मके साथ साथ सदाके लिए

गंगा-जलमें बहा दिया है। इस जीवनमें कितनी साध और कितनी आकांक्षाएँ होती हैं ! विधवा होनेपर वे सब कहीं चली नहीं जातीं। माधवी तब अपने स्वामीकी बात सोचती है। जब वे नहीं हैं, तब फिर यह सब क्यों ? किसके लिए दूसरोंसे डाह करूँ ? किसके लिए दूसरोंकी आँखोंका जल बहाऊँ ? और ये सब हीन प्रकृतियाँ उसमें किसी समय थी भी नहीं; वह बड़े आदमीकी लड़की है,—हिंसा-द्वेष आदि करना उसने कभी सीखा भी नहीं था।

उसके बागमें बहुतसे फूल फूलते हैं। पहले वह उन फूलोंकी माला पिरोकर अपने स्वामीके गलेमें पहनाती थी। लेकिन अब स्वामी नहीं हैं, इसलिए उसने फूलोंके वे सब पेड़ कटवा नहीं डाले हैं। अब भी उनमें उसी प्रकार फूल खिलते हैं। लेकिन वे जमीनपर गिरकर मुरझा जाते हैं। अब वह उन फूलोंकी माला पिरोने नहीं बैठती, लेकिन फिर भी उन सबको एकत्र करके और उन्हें अँजुलीमें भर भर दीन-दुखियोंको बाँट देती है। जिसके पास नहीं हैं उन्हींको देती है। इसमें जरा भी कृपणता नहीं करती,—जरा भी मुँह भारी नहीं करती।

जिस दिन व्रज बाबूकी गृहिणीने परलोक-गमन किया, उसी दिनसे इस गृहस्थीमें कोई शृंखला नहीं रह गई थी। सभी लोग अपनी अपनी फिक्रमें रहते, कोई किसीका ख्याल नहीं करता,—कोई किसीकी तरफ नहीं देखता। सभीके लिए एक एक नौकर मुकर्रर था और वे सब नौकर अपने अपने मालिकका काम करते थे। रसोइघरमें रसोईया भोजन बनाता और एक बड़े अन्न-सत्रकी भाँति सब लोग अपनी अपनी पत्तल फैलाकर बैठ जाते। कोई खाना पाता, कोई नहीं पाता। यह कष्ट कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता।

लेकिन जिस दिन माधवी भादों महीनेकी भरी हुई गंगाकी तरह अपना रूप, स्नेह और ममता लेकर अपने पिताके घर लौट आई, उस दिनसे मानों सारी गृहस्थीमें एक नया वसन्त लौट आया है। अब सभी कहते हैं 'बड़ी बहन,' सभी कहते हैं 'माधवी'। घरका पाला हुआ कुत्ता तक सन्ध्याको एक बार बड़ी बहनको देखना चाहता है। मानों इतने आदमियोंमें उसने भी एकको स्नेहमयी और सर्वमयी समझकर चुन रक्खा है। घरके मालिकसे लेकर नायब, गुमाश्ते और दास-दासियाँ सभी बड़ी बहनकी बातें सोचती हैं और सभी उसपर निर्भर रहती हैं। चाहे जिस कारणसे हो, परन्तु सभीके मनमें यह धारणा है कि 'बड़ी बहन' पर हमारा कुछ खास दावा है।

स्वर्गका कल्पतरु हमने कभी नहीं देखा। यह भी नहीं जानते कि कभी देख

पावेंगे या नहीं। इसीलिए उसकी बात नहीं कह सकते। लेकिन व्रजराज बाबूकी गृहस्थीके सभी लोगोंने एक कल्पवृक्ष पा लिया है। उसी कल्पवृक्षके नीचे जाकर वे हाथ फैलाते हैं और हँसते हुए लौट आते हैं।

इस प्रकारके परिवारके बीच सुरेन्द्रनाथने एक नये ढंगका जीवन व्यतीत करनेका रास्ता देखा। जब सभीने सारा भार एक ही आदमीके ऊपर रख छोड़ा है, तब वह भी उन्हीं लोगोंकी तरह करने लगा। लेकिन औरोंकी अपेक्षा उसकी धारणा कुछ और ही तरहकी थी। वह सोचता था कि 'बड़ी बहन' नामका एक जीवित पदार्थ घरमें रहता है, सबको देखता-सुनता है, सबके नखरे बरदाश्त करता है;—और जिसे जिस चीज़की जरूरत होती है, वह उसे मिल जाती है। कलकत्तेकी सड़कोंपर घूम घूमकर अपने लिए आप ही चिन्ता करनेकी आवश्यकता उसने थोड़ी-सी समझी थी; लेकिन यहाँ आनेपर वह उस बातको फिर बिलकुल भूल गया कि कोई ऐसा दिन भी था जब कि अपने विगत जीवनमें मुझे स्वयं ही अपनी चिन्ता करनी पड़ी थी; या आगे फिर करनी पड़ेगी।

कुरता, धोती, जूता, छाता, छड़ी,—जो कुछ चाहिए, सभी उसके लिए हाजिर है। रूमालतक उसके लिए मानों कोई अच्छी तरह सजाकर रख गया है। पहले कुतूहल होता और वह पूछता, "ये सब चीजें कहाँसे आईं?" उत्तर मिलता, "बड़ी बहनने भेज दी हैं।" आज-कल जल-पानकी रकाबीतक देखकर वह समझ लेता है कि उससे बड़ी बहनका स-यत्न स्पर्श हुआ है।

गणित करनेपर बैठनेपर एक दिन उसे कम्पासका खयाल आया। उसने प्रमीलासे कहा—प्रमीला, बड़ी बहनके यहाँसे कम्पास ले आओ।

बड़ी बहनको कम्पाससे कोई काम नहीं करना पड़ता, वह उसके पास नहीं था। लेकिन उसने तुरन्त ही बाजारको आदमी भेज दिया। सन्ध्याको सुरेन्द्रनाथ टहलकर घर लौटा तो उसने देखा कि टेबुलपर प्रार्थित वस्तु रक्खी हुई है। दूसरे दिन सवेरे प्रमीलाने कहा—मास्टर साहब, कल बड़ी बहनने यह भेज दिया है।

इसके बाद वह बीच-बीचमें एकाध ऐसी चीज़ माँग बैठता जिसके लिए माधवी बड़ी आफतमें पड़ जाती। बहुत कुछ अनुसन्धान करती तब कहीं जाकर प्रार्थना पूरी की जाती। लेकिन फिर भी कभी नहीं कहती कि मैं यह चीज़ नहीं दे सकूँगी।

अथवा कभी हठात् वह प्रमीलासे कहता, "बड़ी बहनसे पाँच पुरानी धोतियाँ ले आओ; भिखमंगोंको देनी हैं।" नई और पुरानी धोतियाँ छाँटनेकी फुरसत माधवीको हमेशा रहती नहीं; इसलिए, वह अपने पहननेकी ही पाँच धोतियाँ

भेजकर ऊपरकी खिड़कीमेंसे देखती कि चार-पाँच गरीब कल-रव करते हुएं चले जा रहे हैं,—उन लोगोंने कपड़े पाये हैं।

सुरेन्द्रनाथके इस प्रकारके छोटे-मोटे आवेदन-अत्याचार नित्य ही माधवीको सहने पड़ते। लेकिन धीरे धीरे माधवीको इन सब बातोंका ऐसा अभ्यास हो गया कि अब उसे कभी खयाल ही नहीं होता कि हमारे घरमें कोई नया आदमी आकर नित्य-प्रतिके कार्य-कलापमें नई तरहके छोटे-मोटे उपद्रव मचा रहा है।

केवल यही नहीं। इस नये व्यक्तिके लिए आज-कल माधवीको बहुत ही सतर्क रहना होता है,—बहुत खोज-खबर लेनी पड़ती है। यदि वह अपनी जरूरतकी सब चीजें खुद ही माँग लिया करता तो माधवीका प्रायः आधा परिश्रम कम हो जाता। लेकिन, सबसे बड़ी चिन्ताकी बात यह है कि वह अपने लिए कभी कोइ चीज़ माँगता ही नहीं। पहले माधवी यह नहीं समझ सकी कि सुरेन्द्रनाथ अन्यमनस्क प्रकृतिका आदमी है। प्रातःकालकी चाय ठंढी हो जाती और वह पीता ही नहीं। जल-पानको स्पर्श करने तकका उसे ध्यान नहीं रहता, कभी कभी कुत्तेके ही मुँहमें देकर चला जाता। खाने बैठता तो खाद्य-पदार्थोंकी कोई इज्जत ही नहीं करता,—एक तरफ हटाकर, नीचे डालकर, छुपाकर रख जाता। मानों कोई भी चीज उसे नहीं रुचती, नौकर-चाकर आकर कहते, "मास्टर साहब तो पागल हैं। न कुछ देखते हैं और न कुछ जानते हैं, किताब लिये ही बैठे रहते हैं।"

व्रज बाबू बीच-बीचमें पूछते कि नौकरीका कोई सुभीता हुआ या नहीं? सुरेन्द्र इस बातका कुछ यों ही सा उत्तर दे दिया करता। माधवी ये सब बातें अपने पितासे सुनती और केवल यही बात समझ पाती कि नौकरीका मास्टर साहब रत्ती-भर भी प्रयत्न नहीं करते,—इच्छा भी नहीं है। जो कुछ मिल गया है, उसीसे परम संतुष्ट हैं।

सबेरे दस बजते ही बड़ी बहनके यहाँसे स्नान और भोजनका तकाजा आ जाता, अच्छी तरह भोजन नहीं करनेपर बड़ी बहनके तरफसे प्रमीला आकर शिकायत कर जाती। अधिक रात तक किताब लिये हुए बैठे रहनेपर नौकर आकर गैसकी चाबी बन्द कर दिया करता। मना करनेपर सुनता नहीं, कहता, "बड़ी बहनका हुक्म है।"

एक दिन माधवीने अपने पितासे हँसते हुए कहा—बाबूजी, जैसी प्रमीला है; उसके मास्टर साहब भी ठीक वैसे ही हैं।

"क्या बेटी?"

"दोनों ही बच्चे हैं। जिस तरह प्रमीला नहीं समझती कि उसे कब किस

चीज़की ज़रूरत है, कब क्या खाना चाहिए, कब सोना चाहिए, कब क्या करना उचित है, उसके मास्टर भी वैसे ही हैं। अपना कुछ भी नहीं समझते,—फिर भी असमयमें ऐसी चीज़ माँग बैठते हैं कि होश-हवास ठीक रहनेकी हालतमें कोई भी उसे नहीं माँग सकता।"

व्रज बाबू कुछ समझ नहीं सके, मुँहकी ओर देखते रहे।

माधवीने हँसते हुए पूछा—तुम्हारी लड़की समझती है कि उसे कब किस चीज़की जरूरत है?

"नहीं समझती?"

"और असमयमें उत्पात करती है?"

"हाँ, सो करती है।"

"मास्टर साहब भी ऐसा ही करते हैं?"

व्रज बाबूने हँसते हुए कहा—मालूम होता है कि लड़का कुछ पागल है।

"पागल नहीं है। मालूम होता है कि बड़े आदमीका लड़का है।"

व्रज बाबूने चकित होकर पूछा—कैसे जाना?

माधवी जानती नहीं थी, लेकिन ऐसा ही समझती थी। सुरेन्द्र अपना एक भी काम स्वयं नहीं कर सकता था, सदा दूसरोंपर निर्भर करता था; अगर दूसरा कोई कर देता है तो हो जाता है; और अगर नहीं करता तो नहीं होता। इसी अक्षमताने ही उसे माधवीके निकट पकड़ा दिया था। वह सोचती कि यह उसका पुराना अभ्यास है। विशेषतः उसकी इस नये ढंगकी भोजन-प्रणालीने माधवीको और भी अधिक चकित कर दिया है। कोई भी खाद्य पदार्थ उसका मनोयोग आकर्षित नहीं कर सकता, कोई भी चीज वह तृप्तिपूर्वक नहीं खाता, किसी चीजपर उसकी रुचि नहीं होती। उसका यह वृद्धोंका-सा वैराग्य, बालकोंकी-सी सरलता, पागलोंकी-सी उपेक्षा,—कोई खानेको दे देता है तो खा लेता है और नहीं देता तो नहीं खाता,—यह सब माधवीको बहुत ही रहस्यमय जान पड़ता, एक अज्ञात करुणा-दृष्टि भी उसकी इसीलिए इस अज्ञात मास्टर साहबपर पड़ी थी। वह मारे लज्जाके कहीं देखता नहीं था सो बात नहीं, उसे जरूरत ही नहीं होती, इसलिए वह नहीं देखता। लेकिन, जब उसे जरूरत होती तब समय और असमय कुछ भी नहीं देखता,—एकदमसे बड़ी बहनके पास उसका निवेदन आ पहुँचता। माधवी मुस्कराती और सोचती कि यह आदमी बिलकुल बालकोंकी तरह सरल है।

---

# चौथा परिच्छेद

मनोरमा माधवीकी सखी है। बहुत दिनोंसे उसे कोई पत्र नहीं लिखा गया है,—उत्तर न पाकर वह बहुत ही चिढ़ गई थी। आज दोपहरके बाद कुछ समय निकालकर माधवी उसे पत्र लिखने बैठी थी। उसी समय प्रमीलाने आकर पुकारा—बड़ी बहन !

माधवीने सिर उठाकर पूछा—क्या है री ?

" मास्टर साहबका चश्मा कहीं खो गया है, एक चश्मा दो। "

माधवी हँस पड़ी, " जाकर अपने मास्टर साहबसे कह दे कि क्या मैंने चश्मेकी कोई दूकान खोल रक्खी है ? "

प्रमीला दौड़कर जा रही थी। माधवीने उसे पुकारकर कहा, "कहाँ जा रही है ?"

" उनसे कहने। "

" इसकी अपेक्षा तो गुमाश्ताजीको जाकर बुला ला। "

प्रमीला जाकर गुमाश्ताजीको बुला लाई। माधवीने उनसे कह दिया—मास्टर साहबका चश्मा खो गया है। उन्हें एक अच्छा सा चश्मा दिलवा दो।

गुमाश्ताजीके चले जानेपर वह फिर मनोरमाको पत्र लिखने लगी। उसके अन्तमें लिख दिया—

" प्रमीलाके लिए बाबूजीने एक शिक्षक नियुक्त किया है। उसे आदमी भी कह सकते हैं और छोटा बच्चा भी कह सकते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि इससे पहले वह कभी घरसे बाहर नहीं हुआ है। संसारका कुछ भी नहीं जानता। अगर ध्यान न रक्खा जाय और उसकी देख-रेख न की जाय तो दमभर भी उसका काम नहीं चल सकता। मेरा आधा-सा समय उसीने छीन लिया है,—तुम्हें पत्र कब लिखूँ ? इधर तुम जल्दी आई तो मैं इस अकर्मण्य आदमीको दिखला दूँगी। ऐसा निकम्मा और अन्यमनस्क आदमी तुमने जन्म-भरमें देखा न होगा। खानेको दिया जाता है तो खा लेता है और नहीं तो चुपचाप उपवास करके रह जाता है। शायद दिन-भरमें उसे कभी इस बातका ध्यान ही नहीं होता कि उसने भोजन किया है या नहीं। एक दिन भी वह अपना काम आप नहीं चला सकता। इसीलिए सोचती हूँ कि ऐसे आदमी घरसे बाहर होते ही क्यों हैं ? सुना है कि उसके माता-पिता हैं। लेकिन मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि उनके प्राण पत्थरकी तरह सख्त हैं। मैं तो शायद ऐसे आदमीको कभी आँखोंकी ओट न

कर सकती।"

मनोरमाने मज़ाक़ करते हुए उत्तर दिया—" तुम्हारे पत्रसे और और समाचारोंके साथ यह भी मालूम हुआ कि तुमने अपने घर एक बन्दर पाला है; और तुम उसकी सीतादेवी बनी हो। लेकिन फिर भी सावधान किये देती हूँ। इति—मनोरमा।"

पत्र पढ़नेपर माधवीका मुख कुछ रंजित हो गया। उसने उत्तरमें लिख दिया कि तुम मुँह-जली हो, इसीलिए यह नहीं जानतीं कि किसके साथ कैसा मज़ाक़ करना चाहिए।

माधवीने प्रेमीलासे पूछा—तुम्हारे मास्टर साहबका चश्मा कैसा रहा ?

प्रमीलाने कहा—ठीक रहा।

" कैसे जाना ?"

" मास्टर साहब वह चश्मा लगाकर खूब मजेमें पढ़ते हैं, इसीसे मालूम हुआ !"

माधवीने पूछा—उन्होंने खुद कुछ नहीं कहा ?

" नहीं, कुछ भी नहीं।"

" बिलकुल कुछ भी नहीं कहा ? अच्छा हुआ या बुरा हुआ, कुछ भी नहीं ?"

" नहीं, कुछ नहीं।"

माधवीका सदा प्रफुल्लित रहनेवाला मुख क्षण-भरके लिए मलिन हो गया। लेकिन फिर तुरन्त ही उसने हँसते हुए कहा—अपने मास्टर साहबसे कह देना कि कहीं फिर चश्मा न खो दें।

" अच्छा कह दूँगी।"

" दुत पगली, भला ऐसा कहना होता है ! शायद वह अपने मनमें कुछ खयाल करें।"

" तो फिर कुछ भी न कहूँ ?"

" नहीं।"

शिवचन्द्र माधवीका भाई है। माधवीने एक दिन उससे पूछा—क्यों भइया, प्रमीलाके मास्टर दिन-रात क्या पढ़ा करते हैं, जानते हो ?

शिवचन्द्र बी० ए० में पढ़ता था। क्षुद्र प्रमीलाके शिक्षक जैसोंको वह कुछ समझता ही नहीं था। उसने उपेक्षा दिखलाते हुए कहा—कुछ नाटक-उपन्यास पढ़ते होंगे और क्या पढ़ेंगे ?

लेकिन माधवीको इस बातपर विश्वास नहीं हुआ। उसने प्रमीलाके द्वारा

सुरेन्द्रनाथकी एक पुस्तक चोरीसे मँगवा ली और अपने भाईके हाथमें देकर कहा—मुझे तो यह नाटक या उपन्यास नहीं जान पड़ता।

शिवचन्द्रने सारी किताब उलट-पुलटकर देखी, लेकिन उसकी समझमें कुछ भी नहीं आया। सिर्फ इतना ही आया कि इसका एक अक्षर भी मैं नहीं जानता और यह कोई गणितकी पुस्तक है।

लेकिन बहनके सामने अपना सम्मान नष्ट करनेकी उसकी प्रवृत्ति नहीं हुई। उसने कहा—यह गणितकी किताब है। स्कूलमें छोटे दरजोंमें पढ़ाई जाती है।

दुःखी होकर माधवीने पूछा—यह कोई ऊँचे दरजेकी किताब नहीं है, कालेजकी पढ़ाईकी किताब नहीं है?

शुष्क होकर शिवचन्द्रने उत्तर दिया—नहीं, बिलकुल नहीं।

लेकिन उस दिनसे शिवचन्द्र इच्छापूर्वक कभी सुरेन्द्रनाथके सामने नहीं आता। उसके मनमें यह डर बैठ गया है कि कहीं ऐसा न हो कि वह कोई बात पूछ बैठे जिससे सब बातें खुल जायँ और तब पिताकी आज्ञासे उसे भी सवेरे प्रमीलाके साथ मास्टर साहबके पास कापी और पेन्सिल लेकर बैठना पड़े!

कुछ दिन बाद माधवीने पितासे कहा—बाबूजी, मैं कुछ दिनोंके लिए काशी जाऊँगी।

व्रज बाबू बहुत चिन्तित हो उठे—यह क्यों बेटी? तुम काशी जाओगी तो इस गृहस्थीका क्या होगा?

माधवीने हँसकर कहा—मैं फिर लौट आऊँगी, एकदमसे तो जा नहीं रही हूँ।

माधवी तो हँस पड़ी, लेकिन पिताकी आँखोंमें जल भरा आ रहा था। माधवीने समझ लिया कि मेरा ऐसा कहना अनुचित हुआ है और बात सँभालनेके लिए कह दिया—सिर्फ कुछ दिन घूम आऊँगी।

"तो जाओ। लेकिन बेटी, गृहस्थी नहीं चलेगी।"

"मेरे बिना गृहस्थी नहीं चलेगी?"

"चलेगी क्यों नहीं बेटी, चलेगी! लेकिन पतवार टूट जानेपर जिस तरह नाव बहावकी तरफ चलती है, उसी तरह यह भी चलेगी।

लेकिन काशी जाना उसके लिए नितान्त आवश्यक था। वहाँ उसकी विधवा ननद अपने एक-मात्र पुत्रको लेकर रहती है और उसे एक बार देखना जरूरी है।

काशी जानेके दिन उसने हर एकको बुलाकर गृहस्थीका भार सौंप दिया। वृद्धा

दासीको बुलाकर पिता, भाई और प्रमीलाको विशेष रूपसे देखनेके लिए अनुरोध और उपदेश दिया। लेकिन, मास्टर साहबके बारेमें किसीसे कुछ नहीं कहा। भूलकर नहीं, जान-बूझकर ही नहीं कहा। इस समय उनपर उसे क्रोध हो आया था। माधवीने उसके लिए बहुत कुछ किया है, लेकिन, इस समय उसने मुँहसे एक शब्द कहकर भी कृतज्ञता नहीं प्रकट की, इसीलिए माधवी विदेश जाकर इस अकर्मण्य, संसारसे अनभिज्ञ और उदासीन मास्टरको जतलाना चाहती है कि मैं भी कोई चीज़ हूँ। जरा-सा मज़ाक करनेमें हर्ज क्या है? यह देख लेनेमें क्या हानि है कि उसके न रहनेपर मास्टरके दिन किस तरह कटते हैं? इसीलिए वह चलते समय सुरेन्द्रके सम्बन्धमें किसीसे कुछ भी नहीं कह गई।

सुरेन्द्रनाथ उस समय प्राबलेम साल्व कर रहा था। प्रमीलाने कहा—कल रातको बड़ी बहन काशी गई हैं।

यह बात उसके कानोंमें नहीं पहुँची। उसने उसपर कोई ध्यान न दिया। लेकिन तीन दिन बाद जब उसने देखा कि अब दस बजे भोजनके लिए कोई आग्रह नहीं करता, किसी किसी दिन एक और दो भी बज जाते हैं, स्नानके उपरान्त धोती उतारनेके समय मालूम होता है कि धोती पहलेकी तरह साफ नहीं है, जल-पानकी रकाबी पहलेकी तरह यत्नपूर्वक सजाई हुई नहीं है, रातको गैसकी चाबी बन्द करनेके लिए कोई नहीं आता, पढ़नेकी झोंकमें रातके दो दो और तीन तीन बज जाते हैं, सवेरे जल्दी नींद नहीं खुलती, उठनेमें देर हो जाती है, दिन-भर नींद आँखोंकी पलकें छोड़कर जाना ही नहीं चाहती और शरीर मानों बहुत ही शिथिल हो गया है। तब उसे मालूम हुआ कि इस गृहस्थीमें कुछ परिवर्तन हुआ है। जब आदमीको गरमी मालूम होती है तब वह पंखेकी तलाश करता है। सुरेन्द्रनाथने पुस्तकपरसे दृष्टि हटाकर कहा—क्यों प्रमीला, बड़ी बहन यहाँ नहीं हैं?

उसने कहा, "वह काशी गई हैं।"

"हाँ, तभी तो!"

दो दिन बाद उसने अचानक प्रमीलाकी ओर देखकर पूछा—बड़ी बहन कब आवेंगी?

"एक महीने बाद।"

सुरेन्द्रनाथने फिर पुस्तककी ओर मन लगाया। और भी पाँच दिन बीत गये। सुरेन्द्रनाथने पेन्सिलको पुस्तकके ऊपर रखकर कहा—प्रमीला, एक महीनेमें अभी

और कितने दिन बाकी हैं ?

" बहुत दिन ।"

पेन्सिल उठाकर सुरेन्द्रनाथने चश्मा उतारा और उसके दोनों शीशे साफ किये। इसके बाद वह खाली आँखोंसे पुस्तककी ओर देखता रहा ।

दूसरे दिन उसने पूछा—प्रमीला, तुम बड़ी बहनको चिट्ठी नहीं लिखतीं ?

" लिखती क्यों नहीं !"

" जल्दी आनेके लिए नहीं लिखा ?"

" नहीं "

सुरेन्द्रनाथने एक क्षुद्र निःश्वास डालकर धीरेसे कहा—तभी तो !

प्रमीलाने कहा—मास्टर साहब, अगर बड़ी बहन आ जायँ तो अच्छा हो न ?

" हाँ, अच्छा हो ।"

" आनेके लिए लिख दूँ ?"

सुरेन्द्रनाथने प्रफुल्लित होकर कहा—हाँ, लिख दो ।

" आपके बारेमें भी लिख दूँ ?"

" लिख दो ।"

" लिख दो " कहनेमें उसे किसी तरहकी दुबिधा नहीं जान पड़ी । कारण, वह दुनियाका कोई अदब-कायदा नहीं जानता है । उसकी समझमें यह बात बिलकुल नहीं आई कि बड़ी बहनसे आनेके लिए अनुरोध करना उसे शोभा नहीं देता; सुननेमें अच्छा नहीं लगता । जिसके न रहनेसे उसे बहुत कष्ट होता है और जिसकी अनुपस्थितिसे उसका काम नहीं चलता, उसे आनेके लिए कहना उसे जरा भी असंगत नहीं मालूम हुआ । इस संसारमें जिन लोगोंमें कुतूहल कम होता है वे साधारण मनुष्य-समाजके कुछ बाहर होते हैं । जिस दलमें साधारण लोग विचरण करते हैं, उस दलसे उन लोगोंका मेल नहीं बैठता । साधारण लोगोंके मतामतसे उन लोगोंका मतामत नहीं मिलता । कुतूहली होना सुरेन्द्रनाथका स्वभाव नहीं है । जितना उसका प्रयोजन है उतना ही वह जानना चाहता है, उससे बाहर अपनी इच्छासे एक कदम भी रखना नहीं चाहता, समय भी नहीं पाता । इसीलिए वह बड़ी बहनके सम्बन्धमें नितान्त अनभिज्ञ था । इस गृहस्थीमें इतने दिन उसके बीते,—ये तीन महीने अपना सारा भार बड़ी बहनपर छोड़कर उसने परम सुखपूर्वक बिता दिये, लेकिन, उसके मनमें यह जाननेकी जिज्ञासा ही नहीं हुई कि वह जीव कैसा है, वह कितना बड़ा है, कितनी उमरका है, देखनेमें

कैसा है, उसमें क्या क्या गुण हैं,—कुछ भी वह नहीं जानता। जाननेकी कभ
वासना भी नहीं हुई और कभी ध्यान ही नहीं आया।—इसके बारेमें भी को
बात जानने-पूछनेकी लोगोंमें इच्छा होती है! सब लोग कहते हैं 'बड़ी बहन',—
वह भी कहता है 'बड़ी बहन'। सभी उससे स्नेह और यत्न प्राप्त करते हैं, व
भी प्राप्त करता है। उसके पास सारे संसारका भांडार भरा पड़ा है; जो माँगत
है उसे मिल जाता है और यदि सुरेन्द्रने भी लिया है, तो इसमें आश्चर्यक
कौन-सी बात है! मेघका काम है पानी बरसाना; बड़ी बहनका काम है स्ने
करना और सबकी खोज-खबर रखना। जिस समय वर्षा होती है उस समय ज
हाथ बढ़ाता है उसीको जल मिल जाता है; बड़ी बहनके आगे हाथ फैलानेसे भ
अभीष्ट वस्तु मिल जाती है। मानो मेघकी तरह वह भी अन्ध और कामना तथ
आकांक्षासे रहित है! सब कुछ विचार कर उसने अपने मनमें इसी तरहकी ए
धारणा बना रक्खी थी,—आज भी वही है। सिर्फ इस काशी-गमनवाली घटना
बादसे ही इतना उसने अधिक जाना है कि बड़ी बहनके बिना एक क्षण भी मे
नहीं चल सकता।

वह जब अपने घर था तब अपने पिताको जानता था और अपनी विमाताको
यह भी समझता था कि उनके कर्त्तव्य क्या हैं, लेकिन, किसी बड़ी बहनके सा
कभी उसका परिचय नहीं हुआ था और जबसे परिचय हुआ तबसे उसने उ
ऐसा ही समझा है। लेकिन, मनुष्यको न तो वह जानता है और न पहचानत
है, वह तो सिर्फ नामको जानता है, नामको ही पहचानता है। आदमी उसक
कोई नहीं हैं, नाम ही सर्वस्व है!

लोग जिस प्रकार अपने इष्ट देवताको नहीं देख पाते, केवल नाम लिख रख
हैं; दुःख और कष्टके समय उसी नामके सामने अपना सारा हृदय खोल देते है
घुटने टेककर करुणाकी भिक्षा माँगते हैं; नेत्रोंमें जल आ जाता है तो उसे पोंछक
शून्य दृष्टिसे मानों किसीको देखना चाहते हैं, लेकिन, कुछ भी दिखाई नहीं देत
अस्पष्ट जिह्वा केवल दो एक अस्फुट बातोंका ही उच्चारण करके रुक जाती है,
ठीक उसी प्रकार सुरेन्द्रनाथने भी दुःख पानेपर अस्फुटरूपसे उच्चारण किया—
बड़ी बहन!

## पाँचवाँ परिच्छेद

तब तक सूर्योदय नहीं हुआ था, केवल पूर्वदिशा रंजित हुई थी। प्रमीलाने आकर सोये हुए सुरेन्द्रनाथका गला पकड़ लिया—मास्टर साहब !

सुरेन्द्रनाथके दोनों अलस नेत्र कुछ खुल गये—क्या है प्रमीला ?

"बड़ी बहन आई हैं।"

सुरेन्द्रनाथ उठकर बैठ गया। प्रमीलाका हाथ पकड़कर बोला—चलो, देख आवें।

नहीं कहा जा सकता कि यह देखनेकी वासना उसके मनमें किस प्रकार उत्पन्न हुई और यह भी समझमें नहीं आता कि इतने दिनोंके बाद वह क्यों आज आँखें मलता हुआ प्रमीलाका हाथ पकड़कर अन्दर चला। लेकिन वह अन्दर जा पहुँचा और उसके बाद सीढ़ियोंपरसे ऊपर चढ़ गया ! माधवीके कमरेके सामने खड़े होकर उसने पुकारा—बड़ी बहन !

बड़ी बहन अन्यमनस्क होकर काम कर रही थी। उसने कहा—क्या है बहन ?

"मास्टर साहब—"

उस समय दोनों कमरेमें प्रवेश कर चुके थे। माधवी हड़बड़ाकर खड़ी हो गई और सिरपर एक हाथका घूँघट खींचकर एक कोनेमें खिसक गई। सुरेन्द्रनाथ कह रहा था—बड़ी बहन, तुम्हारे लिए मैं बहुत कष्ट—

माधवीने घूँघटकी आड़में अत्यन्त लज्जाके कारण अपनी जीभ काटकर मन ही मन कहा—छीः छीः।

"तुम्हारे चले जानेपर—"

माधवीने मन ही मन कहा—कैसी लज्जाकी बात है ! फिर प्रकाशरूपसे कोमल स्वरमें कहा—प्रमीला, मास्टरसाहबसे बाहर जानेके लिए कह दे।

प्रमीला छोटी होनेपर भी अपनी बड़ी बहनका आचरण देखकर समझ रही थी कि यह काम अच्छा नहीं हुआ। बोली—चलिए मास्टर साहब,—

पहले तो कुछ देरतक सुरेन्द्र अप्रतिभ-सा होकर खड़ा रहा और तब बोला, "चलो।" वह अधिक बातें करना जानता नहीं था और अधिक बातें कहना भी नहीं चाहता था। लेकिन दिन-भरके बादलोंके बाद जब सूर्य निकलता है तब जिस प्रकार हठात् सब लोग उसकी ओर देखने लगते हैं, और क्षण भरके लिए उन्हें यह ध्यान नहीं रहता कि सूर्यकी ओर देखना नहीं चाहिए अथवा उसकी

और देखनेसे आँखोंमें पीड़ा होती है, ठीक उसी प्रकार एक मास तक मेघाच्छन्न आकाशके नीचे रहनेके उपरान्त पहले पहल सूर्योदय होनेपर सुरेन्द्रनाथ परम प्रसन्नताके साथ उसे देखनेके लिए चला गया था। लेकिन, वह नहीं जानता था कि उसका यह परिणाम होगा।

उसी दिनसे उसके यत्नमें,—देखरेखमें, कुछ कमी होने लगी। माधवी मानों कुछ लजाने लगी, क्योंकि बिन्दुमती मौसी इस बातको लेकर कुछ हँसी थी। सुरेन्द्रनाथ भी कुछ संकुचित हो गया था। आज-कल मानों वह देखता था कि बड़ी बहनका अ-सीम भांडार स-सीम हो गया है। अब मानों बहनका यत्न और माताका स्नेह-स्पर्श उसके शरीरमें नहीं लगता,—कुछ दूर ही दूर रहकर हट जाता है।

एक दिन उसने प्रमीलासे कहा—बड़ी बहन मुझसे कुछ नाराज हैं ?

"हाँ।"

"क्यों भला ?"

"आप उस दिन इस तरह घरके अन्दर क्यों चले गये थे ?"

"जाना नहीं चाहिए था, क्यों ?"

"ऐसे कहीं जाना होता है ? बहन बहुत नाराज हुई थीं !"

सुरेन्द्रनाथने पुस्तक बन्द करके कहा—यही तो—

इसके बाद एक दिन दोपहरको बहुत बादल हो आये और खूब पानी बरसा। ब्रजराज बाबू आज दो दिनसे मकानपर नहीं हैं; अपनी जमींदारी देखने गये हैं। माधवीके हाथमें कोई काम नहीं था। प्रमीला भी खूब उपद्रव कर रही थी। माधवीने कहा—प्रमीला, तू अपनी किताब ले आ। देखूँ तो कहाँ तक पढ़ा है।

प्रमीला बिलकुल काठ हो गई। माधवीने कहा—ले आ।

"रातको लाऊँगी।"

"नहीं, अभी ला।"

नितान्त दुःखित मनसे वह किताब लानेके लिए गई और लाकर बोली—मास्टर साहब कुछ भी नहीं पढ़ाते, खाली आप ही पढ़ते हैं।

माधवी उससे पूछने लगी। शुरूसे अन्ततक सब कुछ पूछनेपर उसने यही समझा कि सचमुच मास्टर साहबने कुछ भी नहीं पढ़ाया है। बल्कि पहले जो कुछ पढ़ा था, मास्टर मुकर्रर होनेके बाद इधर तीन-चार महीनेमें वह उस सबको भी धीरे धीरे भूल गई है। माधवीने नाराज होकर बिन्दुको बुलाकर कहा—बिंदु, मास्टर

साहबसे पूछकर आ कि प्रमीलाको इतने दिनों तक क्यों कुछ भी नहीं पढ़ाया।

बिन्दु जिस समय पूछनेके लिए गई, उस समय मास्टर साहब किसी प्राबलेमपर गौर कर रहे थे। बिन्दुने कहा—मास्टर साहब, बड़ी बहन पूछ रही हैं कि आपने प्रमीलाको कुछ पढ़ाया क्यों नहीं ?

लेकिन मास्टर साहबको कुछ सुनाई नहीं दिया। बिन्दुने फिर जोरसे पुकारा—मास्टर साहब !

" क्या ? "

" बड़ी बहन कहती हैं—"

" क्या कहती हैं ? "

" प्रमीलाको पढ़ाया क्यों नहीं ? "

अन्यमनस्क होकर उसने उत्तर दिया—अच्छा नहीं लगता।

बिन्दुने सोचा कि बात तो कुछ बुरी नहीं है और जाकर यही बात माधवीसे कह दी। माधवीको और भी क्रोध हुआ। उसने नीचे आकर और दरवाजेकी आड़में खड़े होकर बिन्दुके द्वारा पुछवाया, " प्रमीलाको बिलकुल ही पढ़ाया क्यों नहीं ? " दो-तीन बार पूछे जानेपर सुरेन्द्रनाथने कहा—मैं नहीं पढ़ा सकूँगा।

माधवी सोचने लगी कि यह कैसी बात है !

बिन्दुने कहा—तो फिर आप किस लिए रहते हैं ?

" न रहूँ तो और कहाँ जाऊँ ? "

" तो फिर पढ़ाया क्यों नहीं ? "

सुरेन्द्रनाथको अब होश आया। वह घूमकर बैठ गया और बोला—क्या कहती हो ?

बिन्दुने जो कुछ कहा था, उसीकी फिरसे आवृत्ति कर दी। तब सुरेन्द्रनाथने कहा—वह तो रोज पढ़ती है।

" वह पढ़ती तो है, लेकिन आप भी कुछ देखते हैं ? "

" नहीं, मुझे समय नहीं मिलता। "

" तो फिर किस लिए इस मकानमें रहते हैं ? "

सुरेन्द्रनाथ चुप होकर यही बात सोचने लगा।

" तो फिर आप उसे नहीं पढ़ा सकेंगे ? "

" नहीं, मुझे पढ़ाना अच्छा नहीं मालूम होता। "

माधवीने अन्दरसे कहा—अच्छा तो बिन्दु, पूछो कि फिर वे क्यों इतने

दिनोंसे रह रहे हैं ?

बिन्दुने कह दिया। सुनते ही सुरेन्द्रनाथका प्राबलेमवाला जाल एकदमसे छिन्न भिन्न हो गया। वह कुछ दुःखित हुआ, कुछ सोचकर बोला—यही तो, मुझसे बड़ी भूल हो गई है।

" इस तरह लगातार चार महीने तक भूल ? "

" हाँ, मैं वही तो हुई देखता हूँ। लेकिन इस बातका मुझे इतना खयाल नहीं था। "

दूसरे दिन प्रमीला पढ़ने नहीं आई। सुरेन्द्रनाथने भी कोई ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। फिर तीसरे दिन भी वह नहीं आई। वह दिन भी यों ही बीत गया।

जब चौथे दिन भी सुरेन्द्रनाथने प्रमीलाको नहीं देखा, तब एक नौकरसे कहा—प्रमीलाको बुला लाओ।

नौकरने अन्दरसे वापस आकर उत्तर दिया—वह अब आपसे नहीं पढ़ेगी।

" तो फिर किससे पढ़ेगी ? "

नौकरने कुछ अक्ल खर्च करके कहा—दूसरा मास्टर आवेगा।

उस समय कोई नौ बजे थे। सुरेन्द्रनाथने कुछ देर तक सोच-विचारकर दो-तीन किताबें बगलमें दबाई और वह उठकर खड़ा हो गया। चश्मा खानेमें बन्द करके टेबुलपर रख दिया और धीरे धीरे वहाँसे चल पड़ा।

नौकरने पूछा—मास्टर साहब, इस समय कहाँ जा रहे हैं ? "

" बड़ी बहनसे कह देना कि मैं चला जाता हूँ। "

" क्या अब नहीं आवेंगे ? "

लेकिन सुरेन्द्रनाथ यह बात न सुन सका। बिना कोई उत्तर दिये ही वह फाटकके बाहर निकल गया। दो बज गये, लेकिन सुरेन्द्रनाथ लौटकर नहीं आया। उस समय नौकरने जाकर माधवीको समाचार दिया कि मास्टर साहब चले गये हैं।

" कहाँ गये हैं ? "

" यह तो मैं नहीं जानता। नौ ही बजे चले गये हैं। चलनेके समय मुझसे कह गये हैं कि बड़ी बहनसे कह देना कि मैं चला जाता हूँ। "

" यह क्या रे ? बिना खाये-पीये चले गये ? "

माधवी उद्विग्न हो गई। इसके बाद उसने स्वयं सुरेन्द्रनाथके कमरेमें आकर देखा कि सब चीजें ज्योंकी त्यों हैं। टेबुलके ऊपर खानेमें बन्द किया हुआ चश्मा पड़ा है। सिर्फ कुछ किताबें नहीं हैं।

सन्ध्या हो गई, रात हो गई, लेकिन सुरेन्द्र नहीं आया। दूसरे दिन माधवीने दो नौकरोंको बुलाकर कहा—अगर मास्टर साहबका पता लगाकर ले आओगे तो दस रुपये इनाम पाओगे।

इनामके लालचसे वे लोग चारों तरफ दौड़ पड़े। लेकिन सन्ध्याके बाद लौट आकर बोले—कहीं पता नहीं चला।

प्रमीलाने रोते हुए पूछा—बड़ी बहन, वे चले क्यों गये ?

माधवीने उसे हटाकर कहा—बाहर जा, रो मत !

दो दिन, तीन दिन करके ज्यों ज्यों दिन बीतने लगे त्यों त्यों माधवी और भी अधिक उद्विग्न होने लगी। बिन्दुने कहा—बड़ी बहन, भला उसके लिए इतनी खोज और तलाश क्यों ? क्या कलकत्ते शहरमें और कोई मास्टर नहीं मिलेगा ?

माधवीने क्रुद्ध होकर कहा—चल दूर हो ! एक आदमी हाथमें बिना एक पैसा लिये चला गया है और तू कहती है कि तलाश क्यों हो रही है ?

"यह कैसे मालूम हुआ कि उसके पास एक भी पैसा नहीं है ?"

"मैं जानती हूँ। लेकिन तुझे इन सब बातोंसे क्या मतलब ?"

बिन्दु चुप हो गई। धीरे धीरे जब सात दिन बीत गये और कोई लौटकर न आया तब माधवीने एक तरहसे अन्न-जलका मानों परित्याग ही कर दिया। उसे ऐसा मालूम होता कि सुरेन्द्रनाथ भूखा है। जो घरकी चीज माँगकर नहीं खा सकता, वह क्या कभी किसी दूसरेसे कुछ माँग सकता है ? उसकी यह दृढ़ धारणा थी कि सुरेन्द्रनाथके पास कुछ खरीदकर खानेके लिए पैसे नहीं हैं, भीख माँगनेका सामर्थ्य नहीं है और इसीलिए वह या तो छोटे बालकोंकी-सी असहाय अवस्थामें किसी पटरीपर बैठा हुआ रो रहा है और या किसी पेड़के नीचे किताबपर सिर रक्खे हुए सो रहा है।

जब व्रज बाबू लौटकर आये और उन्होंने सारा हाल सुना, तब माधवीसे बोले—बेटी, यह काम अच्छा नहीं हुआ।

मारे कष्टके माधवी अपने आँसू न रोक सकी।

उधर सुरेन्द्रनाथ सड़कोंपर घूमा करता। तीन दिन तो उसने बिना भोजनके ही बिता दिये। कलके पानीमें पैसे नहीं लगते, इसीलिए जब भूख लगती तब भर-पेट पानी पी लिया करता।

एक रोज रातको वह नितान्त अवसन्न होकर कालीघाटकी ओर जा रहा था,—कहीं सुन लिया था कि वहाँ खानेको मिलता है। अँधेरी रात थी और तिसपर

बादल भी घिरे हुए थे। चौरंगीके मोड़पर एक गाड़ी उसके ऊपर आ गई। गाड़ीवानने किसी तरह घोड़ेका वेग रोक लिया था इसलिए सुरेन्द्रके प्राण तो नहीं गये, लेकिन छाती और बगलमें बहुत तेज चोट लग जानेसे वह बेहोश होकर गिर पड़ा। पुलिस उसे गाड़ीपर बैठाकर अस्पताल ले गई। चार-पाँच दिन बेहोशीकी हालतमें बीतनेके बाद एक रोज रातको उसने आँखें खोलकर कहा—बड़ी बहन !

उस रोज रातको मेडिकल कालेजका एक छात्र ड्यूटीपर था। सुनकर पास आ खड़ा हुआ। सुरेन्द्रने पूछा—बड़ी बहन आई हैं ?

"कल सवेरे आवेंगी।"

दूसरे दिन सुरेन्द्रनाथको होश तो आ गया, लेकिन उसने बड़ी बहनकी बात नहीं की। बहुत तेज बुखारके कारण दिन-भर छटपटाते रहनेके बाद सन्ध्याको उसने एक आदमीसे पूछा—मैं अस्पतालमें हूँ ?

"हाँ।"

"क्यों ?"

"आप गाड़ीके नीचे दब गये थे।"

"बचनेकी आशा तो है ?"

"अवश्य।"

दूसरे दिन उसी छात्रने पास आकर पूछा—यहाँ आपके कोई आत्मीय हैं ?

"कोई नहीं।"

"तब उस रोज रातको आप 'बड़ी बहन' कहकर किसे पुकार रहे थे ? क्या वे यहाँ हैं ?"

"हैं, लेकिन वे आ नहीं सकेंगीं। मेरे पिताजीको समाचार भेज सकते हैं ?"

"हाँ, भेज सकता हूँ।"

सुरेन्द्रनाथने अपने पिताका पता बतला दिया। उस छात्रने उसी दिन उन्हें पत्र लिख दिया। इसके बाद 'बड़ी बहन'का पता लगानेके लिए पूछा,—यदि स्त्रियाँ यहाँ आना चाहें तो मजेमें आ सकती हैं। हम लोग उसका बन्दोबस्त कर सकते हैं। आपकी बड़ी बहनका पता मालूम हो जाय तो उनके पास भी खबर भेज सकते हैं।

सुरेन्द्रनाथने कुछ देर तक सोचनेके बाद व्रज बाबूका पता बतला दिया।

"मेरा मकान व्रज बाबूके मकानके पास ही है। आज मैं उन्हें आपकी

हालत बतला दूँगा। अगर वह चाहेंगे तो देखनेके लिए आ सकेंगे।"

सुरेन्द्रनाथने कुछ भी नहीं कहा। उसने मन ही मन समझ लिया था कि बड़ी बहनका आना असम्भव है। लेकिन छात्रने दयाके वश होकर व्रज बाबूके पास समाचार पहुँचा दिया। व्रज बाबूने चौंककर पूछा—बच तो जायगा?

"हाँ, पूरी आशा है।"

घरके अन्दर जाकर अपनी कन्यासे कहा—माधवी, जो सोचा था वही हुआ। सुरेन्द्र गाड़ीके नीचे दब जानेके कारण अस्पतालमें है।

माधवीका अंग-प्रत्यंग सिहर उठा।

"उसने तुम्हारा नाम लेकर 'बड़ी बहन' कहकर पुकारा था। तुम देखने चलेगी?"

उसी समय पासके कमरेमें प्रमीलाने न जाने क्या गिरा दिया जिससे खूब झनझनाहटकी आवाज़ हुई। माधवी उसी ओर दौड़ी गई। बहुत देर बाद लौटकर बोली—तुम देख आओ, मैं नहीं जा सकूँगी।

व्रज बाबू दुःखित भावसे कुछ मुस्कराते हुए बोले—अरे वह जंगलका जानवर है, उसके ऊपर भी क्या गुस्सा करना चाहिए?

माधवीने कोई उत्तर नहीं दिया। तब व्रज बाबू अकेले ही सुरेन्द्रको देखने गये। देखकर बहुत दुखी हुए, बोले, "सुरेन्द्र, अगर तुम्हारे माता-पिताके पास खबर भेज दी जाय तो कैसा?"

"खबर भेज दी है।"

"कोई डरकी बात नहीं है। उनके आते ही मैं सब बन्दोबस्त कर दूँगा।"

रुपये-पैसेकी बात सोचकर व्रज बाबूने कहा—बल्कि, मुझे ही उन लोगोंका पता बतला दो जिससे मैं ऐसा प्रबन्ध कर दूँ कि उन लोगोंको यहाँ आनेमें कोई असुविधा न हो।

लेकिन सुरेन्द्र इस बातको अच्छी तरह न समझ सका और बोला—बाबूजी आ जायँगे। इसमें असुविधा और क्या है?

व्रज बाबूने घर लौटकर माधवीको सारा हाल सुना दिया।

तबसे व्रज बाबू नित्य सुरेन्द्रको देखनेके लिए अस्पताल जाने लगे। उसके प्रति उनके मनमें एक प्रकारका स्नेह उत्पन्न हो गया था। एक दिन लौटकर बोले—माधवी, तुमने ठीक समझा था। सुरेन्द्रके पिता बड़े धनवान् हैं।

माधवीने आग्रहपूर्वक पूछा—कैसे मालूम हुआ?

" उसके पिता बहुत बड़े वकील हैं। वे कल रातको आये हैं। "

माधवी चुप हो रही। उसके पिताने कहा—सुरेन्द्र घरसे भाग आया था।

" क्यों ? "

व्रज बाबूने कहा—उसके पिताके साथ आज बातचीत हुई थी। उन्होंने सब बातें बतलाईं। इसी वर्ष उसने पश्चिमके एक विश्व-विद्यालयमें सर्वोच्च सम्मानके सहित एम्० ए० पास किया है। वह विलायत जाना चाहता था, लेकिन नितान्त अन्यमनस्क प्रकृतिका आदमी है, इसलिए, पिताको विलायत भेजनेका साहस नहीं हुआ। इसीलिए, नाराज होकर घरसे भाग आया था। अच्छा हो जानेपर वे उसे घर ले जायँगे।

निःश्वास रोककर और उच्छ्वसित आँसुओंको संवरण करके माधवीने कहा—यही अच्छा है।

---

## छट्ठा परिच्छेद

छः मास हुए, सुरेन्द्रनाथ अपने घर चला गया है। इस बीच माधवीने केवल एक ही बार मनोरमाको पत्र लिखा था, फिर नहीं लिखा।

दुर्गा-पूजाके समय मनोरमा अपने मैके आई और माधवीके पीछे पड़ गई कि तू अपना बन्दर दिखला।

माधवीने हँसकर कहा—भला मैं बन्दर कहा पाऊँगी ?

मनोरमाने उसकी ठोढ़ीपर हाथ रखकर कोमल कंठसे खूब लय-स्वरमें कहा—

बन्दर अपना दिखला दे तू मेरा मन ललचाता है।
तेरे रंजित चरणोंमें वह कैसी शोभा पाता है॥

" वही जो तूने पाला था ? "

" कब ? "

मनोरमाने मुस्कराते हुए कहा—याद नहीं है ? जो तेरे सिवा और किसीको जानता ही नहीं ?

माधवी समझ तो पहले ही गई थी और इसलिए उसका मुँह थोड़ा थोड़ा विवर्ण होता जाता था, तो भी उसने आत्म-संवरण करके कहा—ओह, उनका जिक्र करती हो ? वह तो खुद ही चले गये।

" ऐसे रंगीन पद-कमल उसे पसन्द नहीं आये ? "

माधवीने मुँह फेर लिया, कोई उत्तर नहीं दिया। मनोरमाने हाथसे बहुत आदरपूर्वक उसका मुँह अपनी ओर फेरा। वह तो मज़ाक करने चली थी पर उसने देखा कि माधवीकी दोनों आँखोंमें जल भर आया है। उसने चकित होकर पूछा—माधवी, यह क्या ?

अब माधवी अपने आपको न सँभाल सकी। वह आँखोंपर आँचल रखकर रोने लगी।

मनोरमाके आश्चर्यकी सीमा न रही,—कोई उपयुक्त बात भी उसे ढूँढ़े न मिली। कुछ देर तक रोने दिया। इसके बाद जबरदस्ती और मुँहपरसे आँचल हटाकर बहुत ही दुःखित भावसे पूछा—क्यों बहन, एक मामूली हँसी भी बरदाश्त नहीं कर सकीं ?

माधवीने आँसू पोंछते हुए कहा—बहन, मैं विधवा जो हूँ !

इसके बाद दोनों ही बहुत देर तक चुप रहीं। दोनों ही चुपचाप रोने लगीं। मनोरमा रो रही थी माधवीके दुःखसे,—वह विधवा थी इसलिए। लेकिन, माधवीके रोनेका कुछ और ही कारण था। मनोरमाने बिना समझे-बूझे जो मज़ाक किया था कि 'वह तेरे सिवा और किसीको जानता ही नहीं।' माधवी वही सोच रही थी। वह जानती थी कि बात बिलकुल ठीक है। बहुत देरके बाद मनोरमाने कहा—लेकिन काम अच्छा नहीं हुआ !

"कौन-सा काम ?"

"बहन, वह भी क्या बतलाना होगा ? मैंने सब समझ लिया है !"

इधर छः माससे जिस बातको माधवी प्राण-पणसे छिपाती चली आ रही थी, मनोरमासे उसे और छिपा न सकी। जब पकड़ी गई तब मुँह छिपाकर रोने लगी और बिलकुल बच्चेकी तरह रोई।

अन्तमें मनोरमाने पूछा—लेकिन चले क्यों गये ?

"मैंने ही जानेके लिए कहा था।"

"अच्छा किया था,—बुद्धिमानीका काम किया था।"

माधवीने समझा कि मनोरमाने कुछ भी नहीं समझा है; इसलिए, उसने धीरे धीरे सब बातें समझाकर कह दीं। उसके बाद कहा—लेकिन अगर वे बच न जाते तो शायद मैं पागल हो जाती।

मनोरमाने मन ही मन कहा—और अब भी पागल होनेमें क्या कसर है !

उस दिन बहुत ही दुःखित होकर वह घर लौट गई और उसी रातको

कागज-कलम लेकर अपने पतिको पत्र लिखने बैठी—

" तुम ठीक कहते थे,—स्त्रियोंका कोई विश्वास नहीं। मैं भी अब यही कहती हूँ, क्योंकि, माधवीने आज मुझे यह सिखला दिया है। मैं उसे बाल्यावस्थासे ही जानती हूँ, इसलिए, उसे दोष देनेको जी नहीं चाहता,—साहस नहीं होता; समस्त स्त्री-जातिको दोष देती हूँ,—विधाताको दोष देती हूँ कि उन्होंने क्यों इतने कोमल और जलके समान तरल पदार्थसे नारीका हृदय गढ़ा था। उनके चरणोंमें प्रार्थना है कि वे हृदयोंको कुछ और कठोर बनाया करें। और तुम्हारे चरणोंमें प्रार्थना है कि तुम्हारे इन्हीं चरणोंपर सिर रखकर तुम्हारे मुँहकी ओर देखती हुई मर सकूँ। माधवीको देखकर बहुत ही डर लगता है,—उसने मेरी जन्म-भरकी धारणाएँ उलट-पलट दी हैं। मेरा भी अधिक विश्वास न करना और जल्दी आकर ले जाना। "

उसके स्वामीने उत्तर लिखा—

" जिसके पास रूप है, वह दिखावेगा ही। जिसके पास गुण हैं, वह प्रकाश करेगा ही। जिसके हृदयमें प्रेम है, जो करना जानता है, वह प्रेम करेगा ही। माधवीलता रसाल-वृक्षका अवलम्बन करती है, संसारकी यह रीति ही है, इसमें तुम और हम क्या कर सकते हैं ? मैं तुमपर यथेष्ट विश्वास करता हूँ,—इसके लिए तुम चिन्तित न होना। "

मनोरमाने अपने स्वामीका पत्र अपने माथेसे लगाकर और उनके चरणोंमें प्रणाम करके लिखा—

" मुँहजली माधवी !—विधवाको जो नहीं करना चाहिए उसने वही किया है। उसने मन ही मन एक और आदमीके साथ प्रेम किया है ! "

पत्र पाकर मनोरमाके स्वामी मन ही मन हँसे। इसके बाद उन्होंने मज़ाक करते हुए लिखा—

" इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि माधवी मुँहजली है; क्योंकि, उसने विधवा होकर मन ही मन एक और आदमीके साथ प्रेम किया है। यह तुम लोगोंके लिए नाराज़ होनेकी बात है कि वह विधवा होकर क्यों तुम सधवाओंके अधिकारमें हाथ डालने गई ! मैं जब तक जीता रहूँगा, तब तक तुम्हारे लिए कोई चिन्ताकी बात नहीं है,—ऐसा सुभीता तुम किसी तरह न छोड़ना। इस थोड़ेसे अवसरमें खूब मज़ेसे और एक आदमीके साथ प्रेम कर लो। लेकिन मनोरमा, तुम क्या जानो कि तुम मुझे चकित नहीं कर सकी हो। मैंने एक बार

एक लता देखी थी। वह कोई आध कोस तक लगातार जमीनपर रेंगती रेंगती एक वृक्षपर चढ़ गई थी। अब उसमें न जाने कितने पत्ते और कितनी पुष्प-मंजरियाँ हैं। जब तुम यहाँ आओगी, तब हम दोनों उसे देखने चलेंगे।"

मनोरमाने नाराज़ होकर इस पत्रका कोई उत्तर नहीं दिया।

लेकिन माधवीकी आँखोंके कोनेमें कालिमा छा गई थी, उसका प्रफुल्लित मुख कुछ गम्भीर हो गया था, काम-धन्धेमें उतना जी नहीं लगता था,—एक प्रकारकी शिथिलता आ गई थी। अब भी उसमें उसी प्रकार सबकी खबरदारी रखने और सबके साथ आत्मीयता दिखलानेकी इच्छा पहले जितनी ही है; बल्कि, पहलेसे और भी बढ़ गई है। लेकिन, अब सब बातें पहलेकी तरह याद नहीं रहतीं,—बीच बीचमें भूल हो जाती है।

अब भी सब लोग उसे 'बड़ी बहन' कहते हैं अब भी सब लोग उस कल्पतरुकी ओर ही देखते रहते हैं। उसीके सामने हाथ फैलाते हैं और अभीष्ट फल प्राप्त करते हैं। लेकिन वह तरु अब वैसा सरस नहीं है। पुराने आदमियोंको बीच-बीचमें आशंका होती है कि कहीं आगे चलकर यह सूख न जाय।

मनोरमा नित्य आती है। और और बातें तो होती हैं, केवल यही बात नहीं होती। मनोरमा समझती है कि माधवी इससे दुःखित होती है। अब इन सब बातोंकी आलोचना जितनी ही न हो, उतना ही अच्छा। मनोरमा यह भी सोचती है कि यदि अभागी यह सब भूल सके!

सुरेन्द्रनाथ अच्छा होकर अपने पिताके साथ घर चला गया है। विमाताने उसकी खबरदारी रखना कुछ कम करना शुरू कर दिया है। इसीसे सुरेन्द्रके शरीरने कुछ आराम पाया है। लेकिन वह पूरी तरहसे ठीक नहीं होने पाता,—उसके अन्तरमें एक व्यथा है। रूप तथा यौवनकी आकांक्षा-पिपासाका अभी तक उसके मनमें उदय नहीं हुआ है,—ये सब बातें वह नहीं सोचता। अब भी वह पहलेकी तरह अन्यमनस्क और आत्मनिर्भरतासे शून्य है, लेकिन, किसके ऊपर निर्भर करना चाहिए, यह भी वह नहीं खोज पाता। खोज नहीं पाता इसलिए वह अपना काम आप देख सकता हो सो भी नहीं है; अब भी अपने कामके लिए वह दूसरोंके ही मुखकी ओर देखता रहता है। लेकिन, अब पहलेकी तरह उसका मन नहीं लगता, सभी कामोंमें मानों वह कुछ त्रुटि देखता है,—कुछ असन्तोष प्रकाश करता है। उसकी विमाता यह सब देख-सुनकर कहती है,—सुरेन्द्र आज कल बदल गया है।

बीचमें एक दिन उसे ज्वर हो आया था। बहुत कष्ट हुआ। उसकी आँखोंसे

जल बहने लगा। विमाता पास ही बैठी थीं। उन्होंने एक नई बात देखी। क्षण भरमें ही उनकी आँखोंसे भी जल बहने लगा। उन्होंने प्रेमपूर्वक उसके आँसू पोंछकर पूछा—क्या हुआ बेटा सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र चुप रहा। इसके बाद उसने एक पोस्ट कार्ड माँगा और उसपर टेढ़े मेढ़े अक्षरोंमें लिखा—बड़ी बहन, मुझे बुखार चढ़ा है। बहुत कष्ट हो रहा है

लेकिन, वह पत्र डाकघरमें नहीं पहुँचा। पहले उसके पलंगपरसे जमीनपर गिर पड़ा। इसके बाद जो उस कमरेमें झाड़ू देने आया, उसने बेदानेके छिलकों, बिस्कुटके टुकड़ों और अंगूरके डंठलोंके साथ वह पत्र भी बुहारकर फेंक दिया सुरेन्द्रके हृदयकी आकांक्षा धूलमें मिलकर, हवामें उड़कर, ओसमें भीगकर और धूप खाकर अन्तमें एक बबूलके पेड़के नीचे पड़ी रह गई।

पहले तो वह एक उत्तरकी मूर्तिमती आशाकी ओर टक लगाये रहा और उसके बाद हस्ताक्षरोंकी। लेकिन बहुत दिन बीत गये, कुछ भी न आया। धीरे धीरे उसका ज्वर उतर गया और वह पथ्य लेकर उठ बैठा। इसके बाद उसके जीवनमें एक नई घटना हुई। घटना यद्यपि नई थी, फिर भी थी नितान्त स्वाभाविक। सुरेन्द्रके पिता राय महाशय बहुत दिन पहलेसे इसे जानते थे और इसकी आशा कर रहे थे। सुरेन्द्रके नाना पबना जिलेके मध्यम श्रेणीके एक जमींदार थे। बीस-पचीस गाँवोंमें जमींदारी थी। सालाना आमदनी करीब पचास हजार रुपया होगी। एक तो उनका कोई लड़का-बाला नहीं था,— स्वभावतः खर्च वगैरह कम था, तिसपर वे एक प्रसिद्ध कृपण थे। इसीलिए वे अपने सुदीर्घ जीवनमें बहुत-सा धन एकत्र कर सके थे। राय महाशय यह बात निश्चित रूपसे जानते थे कि उनके न रहनेपर उनका सारा वैभव उनके एक मात्र दौहित्र सुरेन्द्रनाथको ही मिलेगा। हुआ भी यही। राय महाशयको समाचार मिला कि श्वसुर महाशय आसन्न-मृत्यु-शय्यापर पड़े हैं। उन्होंने जल्दीसे लड़केको लेकर पबनाकी ओर प्रस्थान किया। लेकिन उनके पँहुचनेके पहले ही श्वशुर महाशय स्वर्गकी ओर प्रस्थान कर गये थे।

बहुत समारोहपूर्वक उनका श्राद्ध आदि हुआ। शृंखलित जमींदारी और भी अधिक शृंखलामें बँध गई। परिपक्व-बुद्धि पुराने वकील राय महाशके कड़े बन्दो-बस्तसे प्रजा और भी अधिक परेशान हो गई। अब सुरेन्द्रका विवाह होना भी आवश्यक हो गया। विवाह करानेवाले नाइयोंके आने-जानेसे गाँव-भरमें एक आन्दोलन-सा मच गया। पचास कोसके बीच जिस घरमें एक भी सुन्दरी कन्या थी,

उस घरमें नाइयोंके दल बार बार अपनी पदधूलि पहुँचाकर पिता-माताको सम्मानित और आशान्वित करने लगे। इसी प्रकार चार-छः महीने बीत गये।

अन्तमें विमाता आई और उसके रिश्ते-नातेके और जो लोग थे, वे भी आये। बन्धु-बान्धवोंसे सारा घर भर गया।

इसके बाद एक दिन सवेरे तुरुही बजाकर, ढोल-ढक्केके प्रचण्ड शब्द करके और करतालोंकी खनखनाहटसे सारा गाँव परिपूर्ण करके सुरेन्द्रनाथ अपना ब्याह कर लाया।

## सातवाँ परिच्छेद

प्रायः पाँच बरस बीत गये हैं। राय महाशय भी अब नहीं हैं और ब्रजलाल लाहिड़ी भी स्वर्ग सिधार चुके हैं। सुरेन्द्रकी विमाता अपने स्वामीकी दी हुई सारी सम्पत्ति और रुपये-पैसे लेकर अपने पिताके घर निवास करती है।

आज-कल सुरेन्द्रनाथकी जैसी सुख्याति है, अख्याति भी वैसी ही है। कुछ लोग तो कहते हैं कि ऐसा बन्धु-वत्सल, उदार, सरल और मित्र-प्रतिपालक जमींदार और कोई नहीं है। और कुछ लोग कहते हैं कि ऐसा उत्पीड़क और अत्याचारी जमींदार आज तक इस प्रदेशमें कभी पैदा नहीं हुआ।

हम जानते हैं कि ये दोनों ही बातें ठीक हैं। पहली बातें सुरेन्द्रनाथके लिए ठीक हैं और दूसरी उनके मैनेजर बाबू मथुरानाथके लिए ठीक हैं।

सुरेन्द्रनाथकी बैठकमें आजकल दोस्तोंका खूब जमाव रहता है। वे लोग बहुत ही सुखपूर्वक अपने दुनियाके शौक पूरे करते हैं। पान-तमाकू, शराब-कबाब,—किसीकी भी उन्हें चिन्ता नहीं करनी पड़ती। सब चीजें आपसे आप मुँहमें आ जाती हैं। मैनेजर मथुरा बाबूका इन बातोंमें खूब उत्साह है। खर्चके लिए रुपये जुटानेमें वे मुक्त-हस्त हैं, लेकिन उसके लिए जमींदारको क्षतिग्रस्त नहीं होना पड़ता। उनके शासनके गुणसे प्रजाको ही सारा व्यय-भार वहन करना पड़ता है। मथुरा बाबूका किसीके यहाँ एक पैसा भी बाकी नहीं रह सकता। घर जलाने, किसीको उजाड़कर गाँवसे निकाल देने या कचहरीकी छोटी-सी कोठरीमें बन्द कर देने आदिमें उनके साहस और उत्साहकी सीमा नहीं है।

प्रजाका आकुल क्रन्दन बीच-बीचमें शान्तिदेवीके कानोंमें भी प्रवेश करता है। वह अपने स्वामीसे उलहना देती हुई कहती है—तुम स्वयं अपनी जमींदारी नहीं

देखोगे तो सब कुछ जलकर राख हो जायगा।

सुरेन्द्रनाथ मानों चौंक पड़ता है और कहता है—यही तो! क्या ये सब बातें ठीक हैं?

"ठीक नहीं हैं? निन्दासे सारा देश भर गया है। सिर्फ तुम्हारे ही कानोंतक ये सब बातें नहीं पहुँचतीं। चौबीसों घण्टे दोस्तोंको लेकर बैठे रहनेसे कहीं ये सब बातें सुनाई देतीं हैं? ऐसे मैनेजरकी जरूरत नहीं। उसे निकाल बाहर करो।"

सुरेन्द्रनाथ दुःखित और अप्रतिभ होकर कहता है—ठीक है। अब कलसे मैं खुद ही सब देखा करूँगा।

इसके बाद कुछ दिनोंतक जमींदारी देखनेकी धूम मच जाती। मथुरानाथ घबरा उठते और कभी कभी गम्भीर होकर कह बैठते—सुरेन्द्र बाबू, क्या इस तरहसे जमींदारी रक्खी जा सकती है?

सुरेन्द्रनाथ सूखी हँसी हँसकर कहते—मथुरा बाबू, दुखियोंका रक्त चूसकर जमींदारी रखनेकी जरूरत ही क्या है!

"अच्छा तो फिर आप मुझे छुट्टी दीजिए। मैं चला जाऊँ।"

सुरेन्द्र तुरन्त नरम हो जाता। इसके बाद जो कुछ होता था वही फिर होने लगता। सुरेन्द्रनाथ फिर बैठकसे बाहर नहीं निकलते।

इधर हालमें एक और नया उपसर्ग आ जुटा है। एक बाग बनकर तैयार हुआ है जिसमें एक बंगला भी है। उसमें कलकत्तेसे एलोकेशी नामकी एक वेश्या आकर ठहरी है। नाचने-गानेमें बहुत अच्छी है और देखने-सुननेमें भी बुरी नहीं है। भग्न छत्तेकी मधु-मक्खियोंकी तरह यार लोग सुरेन्द्रकी बैठक छोड़कर उसी तरफ दौड़ पड़े हैं। उन लोगोंके आनन्द और उत्साहकी कोई सीमा नहीं। सुरेन्द्रनाथको भी वे लोग उसी तरफ खींच ले गये हैं। आज तीन दिन हो गये, शान्तिको अपने पति-देवके दर्शन नहीं हुए। चौथे दिन अपने स्वामीको पाकर वह दरवाजेपर पीठ लगाकर बैठ गई, "इतने दिन थे कहाँ?"

"बागमें था।"

"वहाँ कौन है जिसके लिए तीन दिन तक वहीं पड़े रहे?"

"यही तो—"

"सब बातोंमें 'यही तो'। मैंने सब बातें सुन ली हैं।" इतना कहते कहते शान्ति रो पड़ी, "मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है जिसके लिए तुम इस तरह मुझे पैरोंसे ठुकराते हो?"

" कहाँ ? मैं तो—"

" और किस तरह पैरोंसे ठुकराना होता है ? हम लोगोंके लिए इससे बढ़कर और कौन-सा अपमान हो सकता है ? "

" यही तो,—वे सब लोग—"

शान्तिने मानों वह बात सुनी ही नहीं। उसने और भी अधिक रोते हुए कहा—तुम स्वामी हो, मेरे देवता हो। मेरे इह-काल भी तुम्हीं हो और पर-काल भी तुम्हीं हो। मैं क्या तुम्हें नहीं पहचानती ? मैं जानती हूँ कि मैं तुम्हारी कोई नहीं हूँ। एक दिनके लिए भी मैंने तुम्हारा मन नहीं पाया। मेरी यह यातना तुम्हें कौन बतलावे ? तुम लज्जित होगे और तुम्हें क्लेश होगा, इसीलिए मैं कोई बात नहीं कहती।

" शान्ति तुम रोती क्यों हो ? "

" क्यों रोती हूँ, यह तो अन्तर्यामी ही जानते हैं। यह भी समझती हूँ कि तुम ला-पर्वाही नहीं करते। तुम्हारे मनमें भी क्लेश है। तुम और क्या करोगे ! " इसके बाद उसने अपनी आँखें पोंछकर कहा, " यदि मैं जन्मभर यातना भोगूँ तो भी कोई हर्ज नहीं। लेकिन तुम्हें क्या कष्ट है, यदि जान सकूँ—"

सुरेन्द्रनाथने उसे अपने पास खींचकर और अपने हाथसे उसकी आँखें पोंछकर स्नेहपूर्वक कहा—तो फिर क्या करोगी शान्ति ?

भला इस बातका भी कोई उत्तर है ? शान्ति फूट फूटकर रोने लगी।

बहुत देरके बाद शान्तिने कहा—तुम्हारा शरीर भी आज-कल अच्छा नहीं है।

" आज ही क्यों, पाँच बरससे अच्छा नहीं है। जिस दिन कलकत्तेमें गाड़ीके नीचे दबा था,—छाती और पीठमें चोट लगनेके कारण एक महीने तक बिस्तरपर पड़ा रहा था, तभीसे शरीर अच्छा नहीं है। वह दर्द आजतक किसी तरह नहीं गया। बीच-बीचमें स्वयं ही आश्चर्य करता हूँ कि किस तरह जी रहा हूँ। "

शान्तिने जल्दीसे स्वामीकी छातीपर हाथ रखकर कहा—चलो, हम लोग देश छोड़कर कलकत्ते चलें। वहाँ अच्छे अच्छे डाक्टर हैं—

सुरेन्द्रने सहसा प्रसन्न होकर कहा—अच्छी बात है, चलो। वहाँ बड़ी बहन भी हैं।

शान्तिने कहा—तुम्हारी बड़ी बहनको देखनेको मेरा भी बहुत जी चाहता है। उन्हें लाओगे न ?

" लाऊँगा क्यों नहीं ! " इसके बाद उसने कुछ सोचकर कहा—वह जरूर आवेंगी, जब सुनेंगीं कि मैं मर रहा हूँ—

शान्तिने सुरेन्द्रका मुँह बन्द करते हुए कहा—मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, इस

तरहकी बातें न करो।

" अगर वह आ जायँ तो फिर मुझे कोई दुःख ही न रह जाय।"

अभिमानसे शान्तिका हृदय परिपूर्ण हो गया। अभी अभी उसने कहा था कि स्वामी उसके कोई नहीं हैं। लेकिन सुरेन्द्रने इतना नहीं समझा, इतना नहीं देखा, वह जो कुछ कह रहा था उसीमें उसे बहुत आनन्द आ रहा था। कहा—तुम स्वयं ही जाकर बड़ी बहनको बुला लाना। क्यों ठीक होगा न?

शान्तिने सिर हिलाकर सम्मति दे दी।

" जब वह आवेंगीं तब तुम खुद ही देखोगी कि मुझे कुछ भी कष्ट न रह जायगा!"

शान्तिकी आँखोंमेंसे जल बहने लगा।

दूसरे दिन उसने दासीके द्वारा मथुरा बाबूसे कहला दिया कि बागमें जिसे लाकर रक्खा गया है उसे अगर इसी समय न निकाल दिया जायगा तो फिर उनके भी मैनेजरका काम करनेकी जरूरत न रह जायगी। अपने स्वामीसे भी उसने बिगड़कर कहा—और चाहे जो हो, लेकिन अगर तुमने घरके बाहर पैर रक्खा तो मैं अपना सिर पटककर और खूनकी नदी बहाकर मर जाऊँगी।

" ठीक है,—लेकिन वे लोग—"

" मैं 'लेकिन'की भी व्यवस्था किये देती हूँ।"

इतना कहकर शान्तिने फिर दासीको बुलाकर आज्ञा दी कि दरबानसे कह दो कि वे सब कम्बख्त अब मकानमें न घुसने पावें।

और कोई उपाय न देखकर मथुरा बाबूने एलोकेशीको बिदा कर दिया। यार लोग भी चंपत हो गये। इसके बाद मथुरा बाबूने जमींदारीकी देख-रेखमें मन लगाया।

सुरेन्द्रनाथका भी सम्प्रति कलकत्ते जाना न हो सका। छातीका दर्द अब कुछ कम मालूम होता है। शान्तिका भी कलकत्ते जानेका वैसा उत्साह नहीं रहा। वहीं रहकर वह यथासंभव अपने स्वामीकी सेवा-शुश्रूषाका प्रबन्ध करने लगी। कलकत्तेसे एक अच्छा डाक्टर बुलवाया गया और उसे दिखलाया गया। विज्ञ चिकित्सकने सब-कुछ देख सुनकर एक औषधकी व्यवस्था कर दी और विशेष रूपसे सावधान कर दिया कि छातीकी इस समय जो अवस्था है, उसे देखते हुए किसी तरहका शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करना उचित नहीं है।

अवसर देखकर मैनेजर साहब जिस तरह काम देख रहे थे उससे गाँव-गाँवमें दूना हा-हाकार मच गया। शान्ति भी बीच-बीचमें सुनती, लेकिन, अपने स्वामीको बतलानेका साहस नहीं करती।

---

# आठवाँ परिच्छेद

कलकत्तेके मकानमें अब व्रज बाबूकी जगह शिवचन्द्र मालिक है। माधवीके बदले अब नई बहू घरकी मालिकिन है। माधवी अब भी यहीं है। भाई शिवचन्द्र स्नेह और आदर करता है, लेकिन अब माधवीका यहाँ रहनेको जी नहीं चाहता। घरके दास-दासी, मुन्शी, गुमास्ते अब भी 'बड़ी बहन' कहते हैं, लेकिन सभी जानते हैं कि सन्दूककी चाबी अब किसी औरके ही हाथ चली गई है। लेकिन यह बात नहीं है कि इसीलिए शिवचन्द्रकी स्त्री किसी बातमें माधवीकी अवज्ञा या अमर्यादा करती हो; फिर भी, वह कुछ ऐसा भाव दिखला देती है कि जिससे माधवी अच्छी तरह समझ सके कि अब बिना इस नई स्त्रीकी अनुमति और परामर्शके कोई काम करना उसे शोभा नहीं देता।

उस समय पिताका राज्य था, अब भाईका राज्य हो गया है। इसलिए कुछ भेद भी हो गया है। पहले उसका आदर भी होता था और जिद भी चलती थी। अब आदर तो है लेकिन जिद नहीं है। पहले पिताके आदरके कारण सब कुछ वही थी, लेकिन, अब वह सिर्फ आत्मीयों और कुटुम्बियोंके दलमें आ गई है।

इसपर यदि कोई यह कहे कि हम शिवचन्द्रको अथवा उसकी स्त्रीको दोषी ठहरा रहे हैं और सीधी तरहसे न कहते हुए घुमा-फिराकर उनकी निन्दा कर रहे हैं, तो वे हमारा ठीक ठीक अभिप्राय नहीं समझ रहे हैं। संसारका जो नियम है और जो रीति-नीति आज तक बराबर चली आई है, हम केवल उसीका उल्लेख कर रहे हैं। माधवीकी किस्मत फूट गई है और उसके लिए कोई ऐसा स्थान नहीं रह गया है जिसे वह अपना कह सके,—केवल इसीसे कोई अपना अधिकार क्यों छोड़ने लगा? यह बात कौन नहीं जानता कि पतिकी चीज़पर स्त्रीका अधिकार है। क्या शिवचन्द्रकी स्त्री यह बात नहीं समझती? शिवचन्द्र तो माधवीका भाई है; लेकिन, वह माधवीकी कौन होती है? दूसरेके लिए वह स्वयं अपना अधिकार क्यों छोड़ने लगी? माधवी सब समझती है। बहू जिस समय छोटी थी और जिस समय व्रज बाबू जीते थे, उस समय माधवीकी दृष्टिमें प्रमीला और बहूमें कोई भेद नहीं था। परन्तु, अब सब बातोंमें अनैक्य होता है। वह सदासे आत्माभिमानिनी है, इसीलिए, वह सबसे नीचे है! उसमें बात सहनेका सामर्थ्य नहीं है, इसीलिए, वह कोई बात नहीं कहती! जहाँ उसका कोई ज़ोर नहीं है वहाँ सिर ऊँचा करके खड़े होनेसे उसका सिर कट जाता है।

जब उसके मनमें दुःख होता है तब वह चुपचाप सह लेती है,—शिवचन्द्रसे कुछ भी नहीं कहती। स्नेहकी दुहाई देना उसके अभ्यासके बाहर है,—केवल इसी आत्मीयताके भरोसे अपना अधिकार प्रतिष्ठित करते हुए उसके सारे शरीर और मनमें धिक्कार उठता है। साधारण स्त्रियोंकी तरह लड़ाई-झगड़ा करनेसे उसे कितनी अधिक घृणा है, यह केवल वही जानती है।

एक दिन उसने शिवचन्द्रको बुलाकर कहा—भइया, मैं ससुराल जाऊँगी।

शिवचन्द्र चकित हो गया—यह क्या माधवी ? वहाँ तो कोई नहीं है !

माधवीने मृत स्वामीको उद्देश्य करके कहा—उनका छोटा भानजा काशीमें ननदके पास है। उसको लेकर मैं गोलागाँवमें मजेमें रहूँगी।

पबना जिलेके गोलागाँवमें माधवीकी ससुराल थी। शिवचन्द्रने कुछ हँसकर कहा—भला यह भी कहीं हो सकता है ? वहाँ तुम्हें बहुत कष्ट होगा !

"भइया, कष्ट क्यों होने लगा ? वहाँका मकान तो अभी तक गिरा नहीं है। दस-पाँच बीघे जमीन भी है। क्या इतनेमें एक विधवाका काम नहीं चल सकता ?"

"चलनेकी बात नहीं है। रुपयेकी भी कोई चिन्ता नहीं है। लेकिन माधवी, वहाँ तुम्हें बहुत ही कष्ट होगा।"!

"कष्ट कुछ भी नहीं।"

शिवचन्द्रने कुछ सोचकर कहा—बहन, आखिर तुम क्यों जा रही हो ? मुझे सब बातें साफ साफ बतला दो। मैं सब झगड़ा मिटाये देता हूँ।

जान पड़ता है इससे पहले शिवचन्द्रने अपनी स्त्रीसे अपनी बहनके विरुद्ध कुछ बातें सुनी होंगीं। सम्भवतः वही बातें इस समय उसे याद हो आईं। तब मारे लज्जाके माधवीका सारा मुख लाल हो गया। उससे कहा—भइया, क्या तुम यह समझ रहे हो कि मैं लड़ाई-झगड़ा करके तुम्हारे घरसे जा रही हूँ ?

शिवचन्द्र स्वयं भी लज्जित हो गया। उसने जल्दीसे कहा—नहीं, नहीं। यह बात नहीं है। मैं यह बात नहीं कहता। लेकिन यह घर सदा ही तुम्हारा है, तब फिर आज क्यों जाना चाहती हो ?

उस समय एक साथ दोनोंको अपने स्नेहमय पिताकी याद हो आई। दोनोंकी ही आँखोंमें जल दिखाई देने लगा। आँखें पोंछकर माधवीने कहा—मैं फिर आऊँगी। जब तुम्हारे लड़केका यज्ञोपवीत हो तब ले आना। इस समय मैं जाती हूँ।

"वह तो आठ-दस बरस बादकी बात है।"

" अगर मैं तब तक जीती रही तो आऊँगी। "

माधवी किसी तरह वहाँ रहनेके लिए राजी नहीं हुई और जानेका उद्योग करने लगी। उसने नई बहूको घर-गृहस्थीका सारा हाल समझा दिया, दास-दासियोंको बुलाकर उन्हें आशीर्वाद दिया। चलनेके दिन शिवचन्द्र अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे अपनी बहनके पास आकर बोला—माधवी, तुम्हारे भइयाने तो कभी तुमसे कोई बात नहीं कही?

माधवीने कहा—भइया, यह कैसी बात कहते हो?

" सो नहीं, यदि किसी अशुभ क्षणमें किसी दिन मुँहसे असावधानतामें कोई बात—"

" नहीं भइया, ऐसी कोई बात नहीं है। "

" सच कहती हो?"

" हाँ, सच कहती हूँ। "

" तो फिर जाओ। तुम्हें अपने घर जानेसे मना नहीं करूँगा। जहाँ तुम्हें अच्छा जान पड़े, वहीं रहो। लेकिन सदा समाचार भेजना मत भूलना। "

पहले माधवीने काशी जाकर अपने भानजेको साथ लिया और उसके बाद उसका हाथ पकड़कर गोलागाँवमें जाकर लम्बे सात वर्षोंके उपरान्त अपने स्वामीके घरमें प्रवेश किया।

उस समय गोलागाँवके चटर्जी महाशय भारी विपत्तिमें पड़े। उनमें और योगेन्द्रनाथके पितामें बहुत ही घनिष्ठ मित्रता थी। इसीलिए मरनेके समय योगेन्द्रनाथ अपनी कई बीघे जमीन उन्हींको सौंप गये थे। योगेन्द्रनाथके जीवन-कालमें वही उस जमीनकी देख-रेख करते थे; योगेन्द्र उसकी कुछ ज्यादा खोज-खबर नहीं लेते थे। उनके ससुरके पास बहुत रुपये थे, इसीलिए पितासे मिली हुई यह क्षुद्र सम्पत्ति उनकी दृष्टिके बाहर थी। इसके उपरान्त उनके मरनेके बाद चटर्जी महाशय बहुत ही न्यायपूर्ण अधिकारसे बिना किसी प्रकारकी बाधाके उस सम्पत्तिका भोग कर रहे थे। अब इतने दिनोंके बाद विधवा माधवीने आकर उनकी सुशृंखल, नियमबद्ध और बनी-बनाई गृहस्थीमें बड़ा भारी बखेड़ा खड़ा कर दिया। इसीलिए चटर्जी महाशयने माधवीका यह हस्तक्षेप बहुत ही अनुचित समझा और यह बात भी साफ साफ उनकी समझमें आ गई कि माधवीने केवल ईर्ष्या और द्वेषके वश होकर ही ऐसा किया है! वे बहुत ही नाराज़ होकर आये और बोले, " देखो बहू, तुम्हारी जो दो बीघे जमीन थी, उसकी दस बरसकी

मालगुजारी मय सूदके एक सौ रुपये बाकी पड़ी है। उसके न देनेसे तुम्हारी जमीनके नीलाम होनेकी नौबत आ गई है।"

माधवीने अपने भानजे सन्तोषकुमारके द्वारा कहला दिया कि रुपयोंके लिए चिन्ता नहीं और साथ ही उसने सौ रुपये बिना विलम्बके भेज भी दिये। अवश्य ही वे रुपये चटर्जी महाशयके और काममें लगे।

लेकिन माधवी इस तरह सहजमें छोड़ देनेवाली नहीं थी। उसने सन्तोषको भेजकर कहलाया कि केवल दो बीघे जमीनपर ही निर्भर करके मेरे स्वर्गीय ससुर महाशयका जीवन-निर्वाह नहीं होता था, इसीलिए बाकीकी जो जमीन जायदाद है, वह कहाँ और किसके पास है ?

चटर्जी महाशयने बहुत अधिक क्रुद्ध होकर स्वयं ही आकर कहा—वह सब जमीन बिक-बिका गई और उसमेंसे कुछका बन्दोबस्त किया हुआ है। आठ आठ दस दस बरस तक जमींदारकी मालगुजारी न चुकानेसे जमीन भला किस तरह रह सकती है ?

माधवीने कहा—क्या जमीनसे कोई आमदनी नहीं होती थी जो मालगुजारीके इतने रुपये नहीं दिये जा सके ? और अगर सचमुच ही बिक गई हो तो यह बतलाइए कि उसे किसने बेचा है और अब वह किसके पास है ? यह सब बातें मालूम होनेपर उसके निकालनेका इन्तजाम किया जाय। और फिर उसके कागज-पत्र कहाँ हैं ?

चटर्जी महाशयने अवश्य ही इन बातोंका कुछ उत्तर दिया, लेकिन माधवी उसे नहीं समझ सकी। पहले ब्राह्मण-देवता बहुत देर तक न जाने क्या क्या बकते रहे और तब सिरपर छाता लगाकर, कमरमें रामनामी बाँधकर और अँगोछेमें एक धोती बाँधकर जमींदार साहबकी लालता गाँववाली कचहरीकी तरफ चल पड़े। इसी लालता गाँवमें सुरेन्द्रनाथका मकान और मैनेजर मथुरा बाबूका दफ्तर था। ब्राह्मण देवता बराबर आठ-दस कोस तक पैदल चलकर सीधे मथुरा बाबूके पास जा पहुँचे और रोते हुए उनसे कहने लगे—दोहाई सरकारकी, गरीब ब्राह्मणको अब गली गली भीख माँगकर ही शायद खाना पड़ेगा।

"ऐसे तो बहुतेरे आया करते हैं!" मथुरा बाबूने मुँह फेरकर पूछा, "क्या हुआ ?"

"भइया, मेरी रक्षा करो।"

"आखिर क्या हुआ है ?"

तब विधु चटर्जीने माधवीसे जो एक सौ रुपये मिले थे वही दक्षिणाके रूपमें मथुरा बाबूके हाथमें रखकर कहा—आप धर्मावतार हैं ! अगर आप मेरी रक्षा न करेंगे तो मेरा सर्वस्व चला जायगा।

" अच्छा साफ़ साफ़ बतलाओ, क्या हुआ है ? "

" गोलागाँवके रामतनु सान्यालकी विधवा पुत्रवधू न जाने कहाँसे इतने दिनों बाद आकर मेरी सारी जमीनपर दखल करना चाहती है। "

इसपर ब्राह्मण देवताने हाथमें जनेऊ लेकर और मैनेजर साहबका हाथ जोरसे पकड़कर कहा—मैं तो बराबर दस बरससे सरकारी मालगुजारी देता चला आता हूँ।

" तुम जमीन जोतते बोते हो; मालगुजारी नहीं दोगे ? "

" दुहाई सरकारकी—"

मथुरा बाबूने उसका भाव अच्छी तरह समझ लिया—विधवाको चरका देना चाहते हो न ?

ब्राह्मण चुपचाप देखता रहा।

" कै बीघे जमीन है ? "

" पचीस बीघे। "

मथुरादासने हिसाब लगाकर कहा—कमसे कम तीन हज़ार रुपयेकी जमीन हुई। जमींदारी कचहरीमें कितनी सलामी दोगे ?

" जो हुकुम होगा वही दूँगा,—तीन सौ रुपये ! "

" तीन सौ रुपये देकर तीन हजार रुपये लोगे ! जाओ, हमसे कुछ नहीं होगा ! "

ब्राह्मणने सूखी आँखोंसे जल बहाकर पूछा—कितने रुपयेका हुकुम होता है ?

" एक हजार रुपये दे सकोगे ? "

इसके बाद बहुत देरतक दोनों आदमियोंमें गुपचुप परामर्श होता रहा और उसका फल यह हुआ कि योगेन्द्रनाथकी विधवापर बाकी मालगुजारी मद्धे दस बरसका असल और सूद सब मिलाकर डेढ़ हजार रुपयोंकी नालिश कर दी गई। समन्स निकला तो सही, लेकिन वह माधवीके पास नहीं पहुँचा। इसके बाद एक-तरफा डिगरी हो गई और डेढ़ महीने बाद माधवीको समाचार मिला कि बाकी मालगुजारीके लिए जमींदारके यहाँसे नीलामका इश्तहार निकला है और उसकी सारी जमीन-जायदाद कुर्क हो गई है।

माधवीने अपनी एक पड़ोसिनको बुलाकर कहा—यह क्या बिलकुल लुटेरोंका ही देश है ?

" क्यों, क्या हुआ ? "

" और नहीं तो क्या ! एक आदमी धोखा देकर मेरा सर्वस्व हड़प लेन चाहता है और तुम लोगोंमेंसे कोई देखता तक नहीं ? "

उसने कहा—भला हम लोग क्या कर सकते हैं ? अगर जमींदार नीलाम करावे तो हम गरीब आदमी उसमें क्या कर सकते हैं ?

" खैर, वह तो जो हुआ सो हुआ। लेकिन मेरा घर नीलाम हो और मुझे खबर तक न हो ? कैसे हैं तुम लोगोंके जमींदार ? "

तब उस स्त्रीने सब बातें विस्तारपूर्वक बतलाकर कहा, " ऐसा उत्पीडक जमींदार और ऐसा अत्याचार इस देशमें पहले और कभी देखा नहीं गया। " इसके सिवा उसने न जाने और भी कितनी बातें बतलाईं। अब तक जितनी बातें लोक-परम्परासे उसे मालूम हुई थीं वे सब एक एक करके उसने खोल दीं। माधवीने डरते डरते पूछा—क्या जमींदार साहबके साथ स्वयं भेंट करनेसे काम नहीं निकल सकता ?

अपने भानजे सन्तोषकुमारके लिए माधवी यह करनेके लिए भी तैयार थी। वह स्त्री उस समय तो कुछ भी नहीं कह सकी, लेकिन, वचन दे गई कि कल अपने लड़केसे सब बातें अच्छी तरह समझकर तुमसे कहूँगी। उसका बहनौता दो-तीन बार लालता गाँवमें गया था। जमींदारकी बहुत-सी बातें वह जानता था। यहाँतक कि उस दिन वह बागमेंकी एलोकेशी तकका हाल सुन आया था। इसके बाद मौसीने जब जमींदारके साहबके साथ रामतनु बाबूकी विधवा पुत्र-वधूके भेंट करनेके सम्बन्धमें प्रश्न किया, तब उसने अपना मुख यथासम्भव गम्भीर बनाकर कहा—इस विधवा पुत्र-वधूकी अवस्था कितनी है ?

मौसीने कहा—यही कोई बीस-इक्कीस बरस होगी।

उसने सिर हिलाकर पूछा—देखनेमें कैसी है ?

मौसीने कहा—बिलकुल परीकी तरह।

इसपर उसने एक विशेष प्रकारकी मुखभंगीके साथ कहा—हाँ, उनसे भेंट करनेसे काम तो हो सकता है; लेकिन, मैं तो कहता हूँ कि वह आज रातको ही यहाँसे एक नाव किराये करके अपने पिताके घर चली जाय।

" यह क्यों ? "

" इसीलिए कि तुम कह रही हो वह देखनेमें बिलकुल परीकी तरह है। "

" क्यों, इससे क्या ? "

" इसीसे तो सब कुछ होता है। देखनेमें परीकी तरह होनेसे ही जमींदार सुरेन्द्ररायके यहाँ उसकी ख़ैरियत नहीं। "

मौसीने अपने गालपर हाथ रखकर कहा—तू कैसी बातें करता है!

बहनौतेने कुछ मुस्कराकर कहा—हाँ, यही बात है! देश-भरके लोग यह बात जानते हैं।

" तब तो फिर उसका भेंट करना उचित नहीं है? "

" नहीं, किसी तरह नहीं। "

" लेकिन उसकी सारी सम्पत्ति जो चली जायगी? "

" जब चटर्जी महाशय इस मामलेमें हैं, तब सम्पत्ति मिलनेकी कोई आशा नहीं है। तिसपर वे एक गृहस्थ घरकी लड़की ठहरीं। क्या उनका धर्म भी चला जाय? "

दूसरे दिन उस स्त्रीने माधवीको सब बातें बतला दीं। सुनकर वह चकित हो गई। दिन-भर जमींदार सुरेन्द्ररायकी ही बात सोचती रही। माधवीने सोचा—सुरेन्द्रराय! यह नाम तो बहुत ही परिचित है। लेकिन उस आदमीके साथ तो मिलान नहीं खाता। यह नाम उसने कितने ही दिनोंतक मन ही मन याद किया है। उसे आज पाँच बरस हो गये! भूल गई थी; लेकिन, आज बहुत दिनोंके बाद फिर याद हो आया।

स्वप्न और निद्रामें माधवीकी वह रात बहुत ही कष्टसे बीती। अनेक बार उसे पुरानी बातें याद आती थीं और अनेक बार उसकी आँखोंमें जल भर आता था। सन्तोषकुमारने उसके मुखकी ओर देखकर डरते डरते कहा—बुआ, मैं अपनी माँके पास जाऊँगा। स्वयं माधवीने भी यह बात कई बार सोची थी। क्योंकि जब यहाँका डेरा उठ गया है, तब काशी-वास करनेके सिवा और कोई उपाय नहीं है। सन्तोषके लिए ही उसने सोचा था कि मैं जमींदारके साथ भेंट करूँगी, लेकिन वह नहीं हो सकती। महल्ले-टोलेके और अड़ोसी-पड़ोसी मना कर रहे हैं। इसके सिवा अब वह चाहे जहाँ जाकर रहे, उसके लिए एक नई चिन्ता और एक नया झगड़ा खड़ा हो गया है। वह है रूप और यौवन! माधवीने सोचा कि मेरी भी कैसी फूटी किस्मत है! ये सब उपद्रव क्यों अभी तक इस शरीरके साथ लगे हुए हैं! आज सात बरस हुए, ये सब उसके ध्यानमें ही नहीं थे और उसे इन सब बातोंका स्मरण करा देनेवाला भी कोई नहीं था। स्वामीके मरनेके उपरान्त जब वह अपने पिताके घर लौट आई, तब सभीने कहा 'बड़ी बहन,' सभीने पुकारा

" माँ । ' इन सम्मानपूर्ण सम्बोधनोंने उसके मनको और भी अधिक वृद्ध कर डाला था ! कहाँका रूप-यौवन ! जहाँ उसे बड़ी बहनका काम करना होता था और माताका-सा स्नेह-यत्न वितरण करना पड़ता था, वहाँ क्या ये सब बातें याद रह सकती हैं ? याद नहीं था । याद हो आया है,—इसी लिए चिन्ता भी हो गई है । विशेषतः इस यौवनका उल्लेख ! उसने लज्जासे मलिन हँसी हँसकर कहा—यहाँके लोग अन्धे हैं या पशु ? लेकिन माधवीने भूल की थी,—सबका मन उसकी तरह इक्कीस-बाईस बरसकी उमरमें बूढ़ा नहीं हो जाता ।

इसके तीन दिन बाद जमींदारका प्यादा उसके दरवाजेके ठीक सामने आसन लगाकर बैठ गया और पुकार पुकारकर लोगोंको बतलाने लगा कि सुरेन्द्र रायने एक और नई कीर्ति की है, तब माधवी सन्तोषका हाथ पकड़कर और दासीको आगे करके नावपर जा बैठी ।

घरके पास ही नदी थी; माझीसे कह दिया, "सोमरापुर चलना होगा । एक बार प्रमीलाको भी देखती चलूँ ।"

गोलागाँवसे पन्द्रह कोस दूर सोमरापुरमें प्रमीलाका विवाह हुआ था । आज एक बरससे वह ससुरालमें ही है । शायद वह फिर कलकत्ते जायगी । लेकिन माधवी उस समय वहाँ कहाँ रहेगी ? इसीलिए उससे मिल लेना जरूरी है ।

सवेरे सूर्योदयके साथ ही माझियोंने नाव खोल दी । बहावके रुखपर नाव बह चली । वायु अनुकूल नहीं थी, इसीलिए नाव धीरे धीरे बाँसोंके बीचसे होकर कँटीले वृक्षोंके काँटे आदि बचाती हुई और घास-पात आदिको ठेलती हुई चलने लगी । सन्तोषकुमारके आनन्दकी सीमा नहीं थी । वह नावकी छतपरसे हाथ बढ़ाकर वृक्षोंकी पत्तियाँ तोड़नेके लिए आतुर हो उठा । माझियोंने कहा—अगर हवा नहीं रुकी तो कल दोपहर तक नाव सोमरापुर नहीं पहुँच सकेगी ।

आज माधवीकी तो एकादशी है, लेकिन सन्तोषकुमारके लिए कहीं नाव बाँधकर खाना बनाकर खिलाना होगा । माझयोंने कहा—दिस्तेपाड़ाके बाजारमें अगर नाव बाँधी जायगी तो बहुत सुभीता होगा । वहाँ सब चीजें मिलती हैं ।

दासीने कहा—अच्छा भइया, ऐसा ही करो जिसमें दस-ग्यारह बजे तक लड़केको खाना मिल जाय ।

---

# नवाँ परिच्छेद

कार्तिक मास समाप्तिपर है। थोड़ी थोड़ी सरदी पड़ने लगी है। सुरेन्द्रनाथके ऊपरवाले कमरेमें खिड़कीके रास्ते प्रातःकालके सूर्यका जो प्रकाश प्रवेश कर रहा है, वह बहुत ही मधुर जान पड़ता है। खिड़कीके पास ही बहुतसे बही-खाते और कागज़-पत्र लेकर टेबुलके एक तरफ सुरेन्द्रनाथ बैठे थे। अदायगी-वसूली, बाकी-बकाया, जमा-खर्च, बंदोबस्त, मामला-मुकदमा, फाइल आदि सब एक एक करके उलटते और देखते थे। इन सब बातोंको देखना-सुनना उनके लिए एक तरहसे आवश्यक भी हो गया है;—न होनेसे समय भी नहीं कटता है। शान्तिके साथ इसके लिए बहुत-कुछ झगड़ा भी करना पड़ा है। बहुत मुश्किलोंसे वह उसे समझा सके हैं कि अक्षरोंकी ओर देखनेसे ही मनुष्यके कलेजेका दर्द बढ़ नहीं जाता अथवा तुरन्त ही धर-पकड़कर उसे बाहर ले जानेकी आवश्यकता नहीं होती। लाचार होकर शान्तिने स्वीकार कर लिया है और आवश्यकतानुसार वह सहायता भी देती है।

आज-कल स्वामीके ऊपर उसका पूरा अधिकार है। उसकी एक भी बात अमान्य नहीं होती,—किसी दिन भी नहीं हुई थी। सिर्फ दस-पाँच कम्बख्त यार-दोस्त मिलकर कुछ दिनोंसे शान्तिको बहुत दुःख दे रहे थे। स्त्रीकी आज्ञासे अब सुरेन्द्रनाथका बाहर निकलना तक बन्द है। शान्तिने डाक्टरके परामर्श और उपदेशको जी-जानसे पूरा करनेका आयोजन किया है।

अभी अभी वह पास ही बैठकर लाल फीतेसे कागज़ोंके बंडल बाँध रही थी। सुरेन्द्रनाथने एक काग़ज़परसे सिर उठाकर पुकारा—शान्ति!

शान्ति कहीं चली गई थी, थोड़ी देरमें लौटकर बोली—मुझे बुला रहे थे?

"हाँ, मैं जरा दफ्तर जाऊँगा।"

"नहीं। जो कुछ चाहिए हो, बतला दो। मैं ला देती हूँ।"

"कुछ चाहिए नहीं। सिर्फ मथुरा बाबूसे बातें करना चाहता हूँ।"

"उन्हें बुलवा भेजती हूँ,—तुम्हें जानेकी जरूरत नहीं। लेकिन इस समय उनकी क्या जरूरत है?"

"कह देना है कि अगहन महीनेसे उन्हें काम नहीं करना होगा।"

शान्ति चकित तो हुई, लेकिन सन्तुष्ट होकर उसने जिज्ञासा की—आखिर उनका अपराध क्या है?

" अपराध क्या है, सो तो अभी ठीक ठीक नहीं बतला सकता, लेकिन बहुत ज्यादती कर रहे हैं। "

इसके बाद अदालतका एक सर्टिफिकेट और कई कागज-पत्र दिखलाकर कहा—यह देखो, गोलागाँवकी एक विधवाका सारा घर-बार नीलाम कराके खरीद लिया है। मुझसे एक बार पूछा तक नहीं!

शान्तिने दुःखित होकर कहा—हाय हाय! विधवाका? तब तो यह काम अच्छा नहीं हुआ। लेकिन बिका कैसे?

" उसपर दस बरसकी मालगुजारी बाकी थी। सूद और असल मिलाकर डेढ़ हजार रुपयेकी नालिश हुई थी। "

रुपयोंकी बात सुनकर शान्ति मथुरानाथके प्रति कुछ नरम हो गई और मुस्कराकर बोली—लेकिन इसमें मैनेजरका क्या दोष है? वे इतने रुपये कैसे छोड़ देते?

सुरेन्द्रनाथ अन्यमनस्क होकर सोचने लगे। शान्तिने प्रश्न किया—इतने रुपये छोड़ दें?

" छोड़ेंगे नहीं, तो क्या एक असहाय विधवाको घरसे निकालेंगे? तुम क्या राय देती हो? "

इस बातके अन्दर जितनी ज्वाला छिपी हुई थी वह सभी शान्तिके शरीरमें लगी। उसने अप्रतिभ होकर दुःखित भावसे कहा—नहीं, घरसे निकाल देनेको नहीं कहती। और अगर तुम अपने रुपये दान करो तो मैं उसमें बाधा क्यों देने लगी?

सुरेन्द्रनाथने हँसते हुए कहा—शान्ति, यह बात नहीं है। मेरे रुपये क्या तुम्हारे नहीं है? लेकिन बतलाओ भला, जिस समय मैं न रहूँगा, उस समय तुम—

" वाह! यह कैसी बात करते हो? "

" मुझे जो अच्छा लगता है, वह तुम करोगी न? "

शान्तिकी आँखोंमें जल भर आया, क्योंकि, उसके स्वामीकी शारीरिक अवस्था अच्छी नहीं थी। बोली—इस तरहकी बातें क्यों करते हो?

" बहुत ही अच्छी लगती हैं, इसीलिए कहता हूँ। शान्ति, तुम मेरी साध, मेरी इच्छाएँ न जान रक्खोगी? "

शान्तिने अपनी आँखोंपर आँचल रखकर सिर हिला दिया।

कुछ देर बाद सुरेन्द्रने फिर कहा—यह तो मेरी बड़ी बहनका नाम है!

शान्तिने आँचल हटाकर सुरेन्द्रनाथके मुखकी ओर देखा।

सुरेन्द्रनाथने एक कागज दिखलाते हुए कहा—यह देखो, मेरी बड़ी बहनका नाम है।

"कहाँ?"

"यह देखो 'माधवी देवी',—जिसका मकान नीलाम हुआ है।"

क्षण-भरमें ही शान्तिने बहुत-सी बातें समझ लीं। उसने कहा—इसीसे शायद सब लौटा देना चाहते हो?

सुरेन्द्रनाथने कुछ हँसते हुए उत्तर दिया—हाँ, इसीलिए, अवश्य ही सब कुछ सब लौटा दूँगा। सब! सब!

माधवीकी बात सुनकर शान्ति कुछ दुःखित हुई। जान पड़ता है उसके अन्दर कुछ ईर्ष्याका भाव था। उसने कहा—हो सकता है कि वह तुम्हारी बड़ी बहन न हो। सिर्फ 'माधवी' नाम है! सिर्फ नामसे ही यह—

"क्या बड़ी बहनके नामका मैं कुछ सम्मान न करूँगा?"

"भले ही करो, लेकिन वे स्वयं तो कुछ जान न सकेंगीं।"

"वे न जान सकें, लेकिन मैं क्या असम्मान कर सकता हूँ?"

"नाम तो ऐसे बहुतोंके हैं!"

"तुम दुर्गाका नाम लिखकर उसपर पैर रख सकती हो?"

"छीः! यह कैसी बात कहते हो! देवताका नाम लेकर—"

सुरेन्द्रनाथ हँस पड़ा—अच्छा, देवताका नाम न सही। लेकिन मैं तुम्हें पाँच हजार रुपये दे सकता हूँ, यदि एक काम कर सको।

शान्तिने प्रसन्न होकर पूछा—कौन-सा काम?

दीवारपर सुरेन्द्रनाथकी एक तसवीर लटक रही थी। उस तसवीरकी तरफ उँगली दिखलाकर उन्होंने कहा—यह तसवीर अगर—

"क्या?"

"चार ब्राह्मणोंके द्वारा नदीके किनारे जला सको—"

कहीं पास ही बिजली पड़नेपर जैसे पहले सारा खून मुहूर्त-मात्रमें ही सूख जाता है, मुँह साँपके काटे हुए रोगीकी तरह बिलकुल नीला पड़ जाता है, पहले ठीक वैसी ही अवस्था शान्तिकी हुई। इसके बाद धीरे धीरे उसके मुख और आँखोंमें रक्त लौट आया। इसके बाद करुण दृष्टिसे अपने स्वामीके मुखकी ओर देखती

हुई वह चुपचाप नीचे उतर गई। पुरोहितको बुलाकर उसने यथोचित रू शान्ति और स्वस्त्ययनकी व्यवस्था की और राजाके आधे राजत्वकी मन्नतें मान मन ही मन प्रतिज्ञा की कि यह बड़ी बहन चाहे कोई हों, इनके बारेमें कोई ब न कहूँगी। इसके बाद वह बहुत देर तक कमरेका दरवाजा बन्द करके अ बहाती रही। इस जीवनमें ऐसी कड़वी बात उसने पहले कभी नहीं सुनी।

सुरेन्द्रनाथ पहले तो कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे फिर बाहर चले गये दफ्तरमें मथुरा बाबूसे भेंट हुई। पहले ही पूछा—गोलागाँवमें किसकी सम्प नीलाम हुई है ?

"मृत रामतनु सन्यालकी विधवा पुत्र-वधूकी।"

"क्यों ?"

"दस बरसकी मालगुजारी बाकी थी।"

"खाता कहाँ है ? देखूँ।"

मथुरानाथ पहले तो मानों बिलकुल हत-बुद्धि हो गये। इसके बाद बोले- खाता वगैरह तो अभी तक पबनासे मँगाया नहीं गया है।

"अच्छा, तो खाता लानेके लिए आदमी भेजो। विधवाके रहनेके लिए जरा स्थान तक नहीं छोड़ा गया ?"

"मालूम होता है कि नहीं।"

"तब वह रहेगी कहाँ ?"

मथुरानाथने साहस संचित करके उत्तर दिया—इतने दिनों तक जहाँ थी व रहेगी, जान पड़ता है।

"इतने दिनों तक कहाँ थी ?"

"कलकत्तेमें, अपने पिताके घर।"

"पिताका नाम जानते हो ?"

"हाँ, जानता हूँ। ब्रजलाल लाहिड़ी।"

"और विधवाका नाम ?"

"माधवी देवी।"

सिर झुकाकर सुरेन्द्रनाथ वहीं बैठ गये। रंग-ढंग देखकर मथुरानाथने घबरा पूछा—क्या हुआ ?

सुरेन्द्रनाथने इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दिया और एक नौकरको बुला कहा—एक अच्छे घोड़ेपर जल्दी जीन कसनेके लिए कह दो,—मैं इसी स

गोलागाँव जाऊँगा। यहाँसे गोलागाँव कितनी दूर है, जानते हो ?

" प्रायः दस कोस।"

" अभी नौ बजे हैं। एक बजते वहाँ पहुँच जायँगे ?"

घोड़ेके आनेपर उसपर सवार होकर पूछा—किस तरफ है ?

" उत्तरकी ओर, फिर आगे जाकर पश्चिमकी तरफ मुड़ना होगा।"

इसके बाद चाबुक खाकर घोड़ा दौड़ता हुआ निकल गया।

यह बात सुनकर शान्तिने ठाकुरजीवाले कमरेमें अपना सिर पटककर फोड़ लिया और कहा—ठाकुरजी, क्या यही तुम्हारे मनमें था ? अब क्या उन्हें फिर पाऊँगी ?

इसके बाद दो प्यादे घोड़ोंपर सवार होकर गोलागाँवकी तरफ तेजीसे दौड़े। खिड़कीमेंसे उन्हें देखकर शान्ति धीरे धीरे अपने आँसू पोंछने लगी। उसने कहा—माँ दुर्गे ! एक जोड़ा भैंसा चढ़ाऊँगी,—जो चाहो, वही दूँगी। बस उन्हें लौटा लाओ। मैं अपना कलेजा चीरकर रक्त चढ़ाऊँगी,—जितना चाहो माँ दुर्गे, उतना ही,—जब तक तुम्हारी प्यास न बुझे !

गोलागाँव पहुँचनेमें और दो कोस बाकी हैं। घोड़ेके खुर तक फेनसे भर गये हैं। प्राणपणसे धूल उड़ाता हुआ, खेतोंकी मेड़ें तोड़ता हुआ और नाले नाँघता हुआ घोड़ा भागा चला जा रहा है ! सिरके ऊपर प्रचंड सूर्य है !

घोड़ेपर सवार रहनेकी अवस्थामें ही सुरेन्द्रनाथको मितली मालूम होने लगी। मानों अन्दरकी प्रत्येक नाड़ी कटकर बाहर निकल पड़ेगी। इसके बाद टपसे दो-तीन बूँद खून भी खाँसीके साथ निकलकर धूल-धूसरित कुरतेपर टपक पड़ा। सुरेन्द्रनाथने हाथसे मुँह पोंछ लिया। एक बजेसे पहले ही वे गोलागाँवमें जा पहुँचे। रास्तेमें एक दूकानदारसे पूछा—यही गोलागाँव है ?

" हाँ।"

" रामतनु सान्यालका मकान कौन-सा है ?"

" इस तरफ है।"

फिर घोड़ा दौड़ने लगा और थोड़ी ही देरमें उस मकानके सामने आ खड़ा हुआ।

दरवाजेपर ही एक सिपाही बैठा हुआ था। अपने स्वामीको देखकर उसने प्रणाम किया।

" घरमें कौन है ?"

" कोई नहीं । "

" कोई नहीं ? कहाँ गये ? "

" सवेरे नाव करके चले गये हैं । "

" कहाँ ? किस रास्तेसे ? "

" दक्खिनकी तरफ । "

" नदीके किनारे किनारे रास्ता है ? घोड़ा दौड़ सकेगा ? "

" कह नहीं सकता । शायद रास्ता नहीं है । "

फिर घोड़ा तेजीके साथ चलने लगा । कोई दो कोस जानेपर रास्ता नहीं रहा । घोड़ा चल नहीं सकता । सुरेन्द्रनाथने घोड़ा छोड़ दिया और वे पैदल चलने लगे। रास्तेमें एक बार उन्होंने देखा कि कुरतेपर कई जगह खूनकी बूँदें गिरकर धूलमें जम गई हैं । उनके होंठोंपरसे उस समय भी खून बह रहा था। नदीमें उतरकर एक अँजुली जल पिया और फिर जी-जानसे चलना शुरू किया । पैरमें जूते तक नहीं, सारा शरीर कीचड़से भर गया है और बीच-बीचमें खूनके दाग हैं ! जैसे किसीने छातीपर खून छिड़क दिया है ।

दिन ढलने लगा । पैर अब नहीं बढ़ते थे । मानों अबकी बार लेट पाये तो सदाके लिए सो जायँगे । इसीलिए मानों अन्तिम शय्यापर इस जीवनका अन्तिम महा-विश्वास प्राप्त करनेकी आशासे उन्मत्तकी तरह दौड़े हुए चले जा रहे हैं । इस शरीरमें जितनी शक्ति है, वह सब अकातर भावसे व्यय करके अन्तमें शय्याका आश्रय ग्रहण करेंगे और फिर नहीं उठेंगे ।

नदीके मोड़के पास वह एक नाव है न ? केरमूँके झुरमुटको हटाती हुई वह रास्ता निकाल रही है । सुरेन्द्रनाथने पुकारा—बड़ी बहन !

लेकिन सूखे हुए कण्ठसे शब्द नहीं निकला,—सिर्फ दो बूँद खून बाहर निकल आया ।

" बड़ी बहन ! " फिर दो बूँद खून ।

केरमूँका झुरमुट नावकी गति रोक रहा है । सुरेन्द्रनाथ पास आ पहुँचे । उन्होंने फिर पुकारा—बड़ी बहन !

दिन भरके उपवास और मानसिक कष्टके कारण माधवी निर्जीवोंकी तरह सोये हुए सन्तोषकुमारके पास ही आँख बन्द किये लेटी थी । सहसा उसके कानोंमें शब्द पहुँचा । कोई पुराना परिचित स्वर बुला रहा है ! माधवी उठकर बैठ गई । अन्दरसे मुँह निकालकर देखा । सारा शरीर धूल और कीचड़से भरा हुआ है,—

अरे ! यह क्या मास्टर साहब हैं ?

"अरे नयनताराकी माँ, माझीसे जल्दी नाव लगानेके लिए कह दे।"

सुरेन्द्रनाथ तब धीरे धीरे किनारेपर गिरे जा रहे थे। सब लोगोंने मिलकर सुरेन्द्रनाथको उठाया और किसी तरह नावपर ले जाकर लेटा दिया। मुँह और आँखोंपर जल छिड़का। एक माझीने पहचानकर कहा—लालता गाँवके जमींदार हैं।

माधवीने इष्ट-कवचके सहित अपने गलेका सोनेका हार उतारकर उसके हाथमें दे दिया और कहा—आज रात तक लालता गाँवमें पहुँचा सकते हो ? मैं सबको एक एक हार इनाम दूँगी।

सोनेका हार देखकर उनमेंसे तीन माझी कन्धेपर रस्सी लेकर नीचे उतर पड़े।

सन्ध्याके बाद सुरेन्द्रनाथको होश आया। वे आँखें खोलकर माधवीके मुखकी ओर देखते रहे। उस समय माधवीके मुँहपर घूँघट नहीं था। सिर्फ माथेका कुछ अंश आँचलसे ढका हुआ था। वह अपनी गोदमें सुरेन्द्रनाथका सिर लेकर बैठी हुई थी।

कुछ देर तक देखते रहनेके बाद सुरेन्द्रनाथने पूछा—तुम बड़ी बहन हो न ?

माधवीने अपने आँचलसे पहले तो यत्नपूर्वक सुरेन्द्रनाथके होठोंपर लगी हुई खूनकी बूँदें पोंछीं और तब अपनी आँखें पोंछ लीं।

"तुम बड़ी बहन हो न ?"

"मैं माधवी हूँ।"

सुरेन्द्रनाथने आँखें बन्द करके कोमल स्वरसे कहा—हाँ, वही।

मानो सारे विश्वका सुख इसी गोदमें छिपा हुआ था। इतने दिनोंके बाद सुरेन्द्रनाथने आज वह सुख खोज निकाला है, इसीलिए अधरके कोनोंपर सरल मुस्कराहट भी प्रस्फुटित हो उठी है।—बड़ी बहन, बहुत कष्ट है !

तर-तर छल-छल करती हुई नाव दौड़ रही है। छप्परके भीतर सुरेन्द्रके मुखपर चन्द्रमाकी किरणें पड़ रही हैं। नयनताराकी माँ एक टूटा हुआ पंखा लेकर धीरे धीरे झल रही है। सुरेन्द्रनाथने धीरेसे पूछा—कहाँ जा रही थीं ?

माधवीने भग्न-कण्ठसे कहा—प्रमीलाकी ससुराल।

"छीः, बड़ी बहन, भला इस तरह समधीके घर जाना होता है ?"

## दसवाँ परिच्छेद

अपनी अट्टालिकाके सोनेके कमरेमें बड़ी बहनकी गोदमें सिर रखकर सुरेन्द्रन मृत्यु-शय्यापर पड़े हुए हैं। उनके दोनों पैर शान्ति अपनी गोदमें लिए हु आँसुओंसे धो रही है। पबनामें जितने डाक्टर और वैद्य हैं, उन सबकी सम्मिलि चेष्टा और परिश्रमसे भी रक्त बन्द नहीं हो रहा है, पाँच बरस पहलेकी वह चो अब रक्त वमन कर रही है।

माधवीके हृदयके अन्दरकी बात खोलकर न कह सकेंगे। हम स्वयं भी अच्छ तरह नहीं जानते। जान पड़ता है उसे पाँच बरस पहलेकी बात याद आ रही है उसने घरसे निकाल दिया था और लौटा नहीं सकी थी। लेकिन अब पाँच बर बाद सुरेन्द्रनाथ लौटके आया है।

सन्ध्याके उपरान्त उज्ज्वल दीपालोकमें सुरेन्द्रनाथने माधवीके मुखकी अ देखा। पैरोंके पास शान्ति बैठी हुई थी, वह सुन न सके, इसलिए अपने हाथ माधवीका मुख अपने मुखके पास खींचकर धीरेसे बोले—बड़ी बहन, उस दिन बात याद है जिस दिन तुमने मुझे निकाल दिया था? मैंने इसीलिए अब तुम बदला लिया है। तुम्हें भी निकाल दिया। क्यों, बदला चुक गया न?

क्षण-भरमें ही माधवीने अपने होश-हवास गवाँकर अपना लटका हुआ मस्त सुरेन्द्रके कन्धेके पास रख दिया। इसके बाद जब उसे होश हुआ तब सारे घ रोना-पीटना मचा हुआ था।

समाप्त